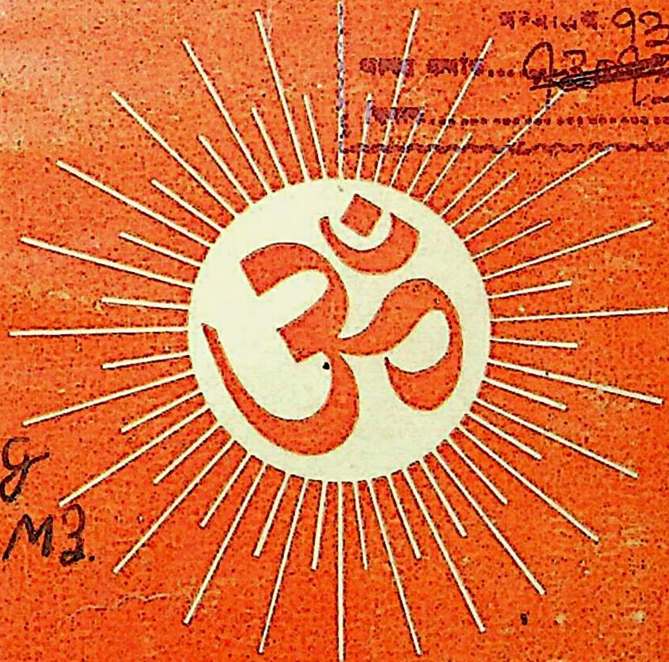
वेदामृतम्

सुखी गृहस्थ

[दाम्पत्य जीवन सुखी कैसे हो?]



डा० कपिलदेव द्विवेदी

कृपया यह ग्रन्थ नीचे निर्देशित तिथि के पूर्व अथवा उक्त तिथि तक वापस कर दें। विलम्ब से लौटाने पर प्रतिदिन दस पैसे विलम्ब शुल्क देना होगा।



ओ३म्

वेदामृतम्

भाग—२

सुखी गृहस्थ

[दाम्पत्य-जीवन सुखी कैसे हो ?]

(How to lead a Happy conjugal life ?)

लेखक

डॉ० कपिलदेव द्विवेदी आचार्य

कुलपति, गुरुकुल महाविद्यालय
ज्वालापुर (हरिद्वार)
एवं
निदेशक, विश्वभारती अनुसंधान परिषद्
ज्ञानपुर (वाराणसी)

विश्वभारती अनुसंधान परिषद्

शान्ति-निकेतन, ज्ञानपुर (वाराणसी)

VEDAMRITAM—Vol. II

(SUKHI GRIHASTHA)

HOW TO LEAD A HAPPY CONJUGAL LIFE ?

By : Dr. K. D. DVIVEDI

सन् १९८३ ई०

प्रथम संस्करण

मूल्य : सजिल्द २०.००
अजिल्द ८.००

वितरक—

विश्वभारती बुक एजेन्सी,

ज्ञानपुर (वाराणसी)

प्रकाशक—

विश्वभारती अनुसंधान परिषद्

शान्ति-निकेतन, ज्ञानपुर (वाराणसी)

मुद्रक—

रत्ना प्रिंटिंग वर्क्स

बी० २१/४२ ए, कमच्छा, वाराणसी

प्राक्कथन

पुस्तक-लेखन का उद्देश्य—वेद आर्य जाति का सर्वस्व है, मानव-मात्र का प्रकाश-स्तम्भ और शक्ति-स्रोत है। वेदों का प्रकाश संसार भर में फैल-कर मानव-जीवन में व्याप्त निराशा, अज्ञान, अन्धकार, दुर्विचार, अनाचार, दुर्गुण, आधि-व्याधि और दिशा-भ्रम को दूर करे, जिससे ज्ञान, आचार, संयम और सुसंस्कृति का आलोक सर्वत्र व्याप्त हो। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए चारों वेदों से विभिन्न विषयों पर मन्त्रों का संकलन किया गया है। वेदों के मन्त्र सरल संस्कृत के तुल्य सुबोध और हृदयंगम हो सकें, इसलिए प्रत्येक मन्त्र का अन्वय, शब्दार्थ, अनुशीलन, टिप्पणी आदि देकर उसे सुगम बनाया गया है। साधारण हिन्दी जानने वाला व्यक्ति भी इस प्रकार वेदों के अमृत का रसास्वाद कर सकता है।

योजना का स्वरूप—इस वेदामृतम् ग्रन्थमाला की योजना है कि वेदों में वर्णित सभी ज्ञान और विज्ञान के विषय पृथक्-पृथक् ग्रन्थों में विषया-नुसार वर्णित हों। इसलिए विषयानुसार वेदामृतम् ४० खण्डों में प्रकाशित करने की योजना है। इसका प्रथम भाग 'सुखी जीवन' नाम से प्रकाशित हो चुका है। 'सुखी गृहस्थ' पाठकों के हाथों में समर्पित है।

व्याख्या की पद्धति—प्रत्येक मन्त्र को अत्यन्त सरल ढंग से समझाने के लिए सर्वप्रथम मन्त्र का अन्वय दिया गया है। अन्वय के अनुसार ही प्रत्येक शब्द का हिन्दी में अर्थ दिया गया है। तदनुसार मंत्र का हिन्दी में अर्थ है और उसके पश्चात् मंत्र का अंग्रेजी अनुवाद भी अंग्रेजी जानने वालों की सुविधा के लिए दिया गया है। अनुशीलन में मन्त्र का भाव व्याख्या के ढंग से समझाया गया है। मंत्र में व्याकरण आदि की दृष्टि से व्याख्या के योग्य शब्दों का प्रकृति-प्रत्यय आदि टिप्पणी में दिया गया है। इससे पाठक मंत्रों का अर्थ आदि सूक्ष्मता के साथ समझ सकेंगे।

मंत्र-संख्या, क्रम और मन्त्रार्थ-विधि—प्रत्येक भाग में उस विषय से सम्बद्ध १०० मंत्र दिए गए हैं। चारों वेदों में उस विषय पर जो सरल और अत्यन्त उपयोगी मंत्र प्राप्त हुए हैं, उन्हें चुना गया है। वेद-प्रेमियों के

लिए चार मंत्र अवश्य स्मरणीय हैं, गायत्री मंत्र, विश्वानि देव०, ईशा वास्यमिदं सर्वम्, स्तुता मया वरदा वेदमाता, अतः ये चार मन्त्र बीज-मंत्र के रूप में सभी भागों में समाविष्ट किए गए हैं। चारों वेदों से सरलतम मंत्रों का ही इसमें संकलन है। मंत्रों को विषय और भाव की दृष्टि से क्रम-बद्ध किया गया है। मन्त्रार्थ के विषय में महर्षि पतंजलि के वैज्ञानिक मन्तव्य को अपनाया गया है कि **'यच्छब्द आह तदस्माकं प्रमाणम्'** जो शब्द कहता है, वह हमारे लिए प्रमाण है। मन्त्र के पाठ से जो अर्थ स्वयं निक-लता है, उस अर्थ को ही लिया गया है। एक परमात्मा के ही अग्नि, इन्द्र, वरुण आदि नाम हैं, अतः यथास्थान इन शब्दों का अर्थ परमात्मा दिया गया है। सभी उपलब्ध भाष्यों का सहयोग लिया गया है। मुख्यरूप से स्वामी दयानन्द जी और सायण के भाष्य उपयोगी रहे हैं।

अनुशीलन--प्रत्येक मन्त्र में कुछ उपयोगी शिक्षाएं हैं। उनको अनु-शीलन में स्पष्ट किया गया है। आवश्यकतानुसार अन्य ग्रन्थों से भी उप-योगी एवं भाव-साम्य वाले सुभाषितों को इसमें समाविष्ट किया गया है। नैतिक एवं जीवनोपयोगी शिक्षाओं का विवरण मुख्यरूप से दिया गया है। ज्ञानवृद्धि के लिए अनुशीलन की विशेष उपयोगिता है। विज्ञ पाठकों के लिए टिप्पणी में दिया गया व्याकरण आदि का निर्देश विशेष लाभकर सिद्ध होगा। प्रत्येक भाग में दिए मन्त्रों में प्राप्य १०० सुभाषित हिन्दी अर्थ के साथ ग्रंथ के अन्त में दिए गए हैं। ये सुभाषित कण्ठस्थ करने योग्य हैं।

पुस्तक के प्रकाशन-सम्बन्धी कार्यों में ज्येष्ठ पुत्र डा० भारतेन्दु द्विवेदी डी० फिल्० से विशेष सहयोग प्राप्त हुआ है, तदर्थ वह आशीर्वाद का पात्र है।

आशा है यह ग्रन्थ सभी वेद-प्रेमियों का आदर प्राप्त करेगा और उनकी वेदों में रुचि बढ़ाएगा।

शान्ति-निकेतन
ज्ञानपुर (वाराणसी)
२८-३-८३ ई० (होली, २०३९ वि०)

डा० कपिलदेव द्विवेदी

दाम्पत्य-जीवन सुखी कैसे हो ?

पूर्वजन्म के अनेक पुण्यों के फल-स्वरूप मानव-जीवन प्राप्त होता है। मानव-जीवन का कोई विशेष लक्ष्य या उद्देश्य होना चाहिए। संसार के सभी प्राणियों में मनुष्य ही सर्वोत्तम है। परमात्मा ने उसे सोचने, बोलने और विशिष्ट रूप से कार्य करने की क्षमता प्रदान की है। अन्य जीव-जन्तुओं में ज्ञान की न्यूनता है, वाक्-तत्त्व की अपूर्णता है, आत्मिक बोध का अभाव है। परमात्मा ने मनुष्य को अमृत-पुत्र के रूप में उत्पन्न किया है। उसे ज्ञान चेतनता, बुद्धि, मनोबल, आत्म-बल, चिन्तन और विकास की क्षमता प्रदान की है। उसे यह स्वतन्त्रता प्रदान की है कि वह मानव से उन्नत होकर देवत्व को प्राप्त करे या अपने दुष्कर्मों के फल-स्वरूप दानव बन जाए। मानव जीवन का लक्ष्य है--अपने जीवन को संयत करके निरन्तर उन्नति करते हुए देवत्व को प्राप्त करना। इस विकास की प्रक्रिया में दैवी गुणों के साथ उसे सुख और आनन्द की प्राप्ति होती है। जीवन की सार्थकता तभी है, जब वह इस संसार में अपने जीवन को विकसित कर लोककल्याण करते हुए संसार के सुखों का उपभोग करे और संसार में लिप्त न होता हुआ अपने अन्तिम लक्ष्य मोक्ष या अपवर्ग को प्राप्त करे। शास्त्रीय भाषा में भौतिक विकास, उन्नति और सुख-प्राप्ति को अभ्युदय कहा जाता है और आत्म-साक्षात्कार के द्वारा कर्मों के बन्धन से मुक्त होने को अपवर्ग या मोक्ष कहा जाता है। वैशेषिक दर्शन में इसे धर्म कहा गया है। जिससे लौकिक उन्नति हो और अन्त में मोक्ष की प्राप्ति हो, वही वास्तविक धर्म है। योगदर्शन ने इसको प्रकारान्तर से रखा है और कहा है कि यह संसार भोग और अपवर्ग के लिए है। संसार को इस प्रकार अनासक्ति-भाव से भोगा जाए कि वह इस जन्म में भी सुख दे और मृत्यु के पश्चात् मोक्ष का आनन्द दे।[1]

---

१. यतोऽभ्युदय-निःश्रेयससिद्धिः स धर्मः। वैशेषिक० १-१-२
भोगापवर्गार्थं दृश्यम्। योगदर्शन २-१८

जीवन का लक्ष्य सुख और आनन्द की प्राप्ति है। इस लक्ष्य को आधार मानकर प्राचीन ऋषियों ने आश्रमों की व्यवस्था की। इसका उद्देश्य था—जीवन को आयु के अनुसार चार भागों में बांटकर मानव-जीवन को लक्ष्य की ओर अग्रसर करना।

ब्रह्मचर्य-आश्रम का उद्देश्य था—२५ वर्ष की आयु तक विद्योपार्जन करना एवं सभी प्रकार की उन्नति की आधार-शिला रखना। गृहस्थ आश्रम में ५० वर्ष की आयु तक धनोपार्जन, कुटुम्ब-पालन तथा पुत्रादि के लाभ से परिवार की श्री-वृद्धि करना लक्ष्य था। वानप्रस्थ और संन्यास आश्रमों में आध्यात्मिक उन्नति ही अभिप्रेत थी।

इन चारों आश्रमों में सामाजिक दृष्टि से गृहस्थ आश्रम ही सर्वश्रेष्ठ माना गया है। शेष तीनों आश्रम वाले व्रती या तपस्वी होते थे, अतः उनकी जीविका का आधार गृहस्थ परिवार ही थे। अत एव मनु का कथन है कि जिस प्रकार सभी जीव वायु के सहारे जीवित रहते हैं, उसी प्रकार शेष तीनों आश्रम गृहस्थ-आश्रम पर ही निर्भर रहते हैं। वही ज्ञान और अन्न के द्वारा इन तीनों आश्रमों की रक्षा करता है।[२]

विवाह-संस्कार के साथ गृहस्थ आश्रम प्रारम्भ होता है। पति और पत्नी गृहस्थरूपी रथ के दो चक्र हैं। ये दोनों चक्र जितने सुपुष्ट, सुदृढ और सक्षम होंगे, उतना ही रथ सुखकर होगा। पति-पत्नी के जीवन में जितना सांमनस्य, सौमनस्य, तादात्म्य और आत्म-समर्पण का भाव होगा, उतना ही उन्हें अधिक सुख मिल सकेगा। दाम्पत्य जीवन को सुखी बनाने का सर्वोत्तम उपाय है—पति-पत्नी में सामंजस्य और एकत्व की अनुभूति। यदि वे जीवन में एक-दूसरे के हित की कामना करते हैं और तदनुसार आचरण करते हैं, तो अवश्य उनका जीवन सुखी रहेगा।

---

२. यथा वायुं समाश्रित्य, वर्तन्ते सर्वजन्तवः।
तथा गृहस्थमाश्रित्य वर्तन्ते सर्व आश्रमाः॥ मनु० ३-७७
यस्मात् त्रयोऽप्याश्रमिणो ज्ञानेनान्नेन चान्वहम्।
गृहस्थेनैव धार्यन्ते तस्माज्ज्येष्ठाश्रमो गृही॥ मनु० ३-७८

पाणिग्रहण के मंत्रों में पति और पत्नी के कुछ कर्तव्यों की ओर ध्यान आकृष्ट किया गया है। दाम्पत्य जीवन को सुखी बनाने के लिए आवश्यक है कि वर और वधू का पूर्व जीवन संयम-प्रधान रहा हो। अत एव वेद का आदेश है कि संयमी कन्या संयमी वर से विवाह करे[३]।

विवाहित जीवन को सुखी बनाने के लिए यह भी आवश्यक है कि योग्य कन्या का योग्य वर से विवाह हो, (मंत्र ५)। जब वर-वधू के गुण, कर्म और स्वभाव समान होंगे तो उनका पारस्परिक व्यवहार भी सद्भावना-पूर्ण होगा। दोनों में कलह की संभावना कम होगी।

पति के कर्तव्य––विवाह के साथ ही पति पर कुछ उत्तरदायित्व आ जाते हैं, उनको निभाना उसका कर्तव्य है। ऋग्वेद और अथर्ववेद में विवाह-सूक्तों में इस विषय का विस्तृत वर्णन मिलता है। विवाह के समय पति भगवान् या भग देवता के रूप में उपस्थित होता है। वह अपने आपको भग देव और सूर्य देव बताता है। इसका अभिप्राय यह है कि पति ज्ञान और ऐश्वर्य में उत्तम कोटि का हो, जिससे पत्नी का ठीक संरक्षण कर सके और उसको कर्तव्य-शिक्षा दे सके।[४]

वह पत्नी के सौभाग्य के लिए उसका हाथ पकड़ता है। पाणिग्रहण के साथ ही पत्नी की रक्षा और उसके पोषण का उत्तरदायित्व पति पर आ जाता है। पत्नी सदा पोष्य है और पति उसका पोषक है।[५]

पति का कर्तव्य है कि पत्नी के जीवन-स्तर को निरन्तर उन्नत करता चले। पत्नी में जो विकास होगा, उसका फल परिवार को मिलेगा। विकसित पत्नी अपने बच्चों को अधिक सुसंस्कृत और परिष्कृत बना सकेगी।[६]

---

३. ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्। (मंत्र ४)
४. भगस्ते हस्तमग्रहीत्, सविता हस्तमग्रहीत्। (मंत्र ८५)
५. गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तम्। (मंत्र ६)
मयेयमस्तु पोष्या। (मंत्र ७)
६. प्रतरं धेह्येनाम्। (मंत्र ८६)

पत्नी जीवन की सहभागिनी है। सुख और दुःख में उसका समान अंश है, अतः पति का कर्तव्य बताया गया है कि वह पत्नी से छिपाकर कोई काम न करे। चाहे किसी वस्तु को खाना हो, किसी पदार्थ का उपभोग हो या किसी प्रकार का कोई अन्य कार्य। पति और पत्नी दोनों के कार्य एक-दूसरे की जानकारी में होने चाहिएँ। इससे दोनों के चरित्र के विषय में परस्पर कोई सन्देह उत्पन्न नहीं होगा।[७]

वेद की यह भी शिक्षा है कि पति-पत्नी के जीवन में नव-यौवन, नवीनता और उत्कर्ष ही। वे सभ्यता और संस्कृति की नवीनतम धारा से असंपृक्त न रहें। संसार में क्या नवीन विकास-कार्य हो रहे हैं और उनकी क्या जीवनोपयोगिता है, इससे वे सर्वथा परिचित रहें और उनमें जो भी उपादेय तत्त्व हों, उनको ग्रहण करें। इस प्रकार वे अपने जीवन को वर्तमान से संबद्ध कर सकेंगे।[८]

पति का कर्तव्य है कि वह सभी सुविधाएँ प्रदान करके पत्नी को प्रसन्न रखे। पत्नी प्रसन्न रहने पर पति के लिए अपना सर्वस्व अर्पण करने के लिए उद्यत रहती है। वह पति के लिए तन, मन, धन सब कुछ अर्पण कर देती है।[९]

मनु ने इस विषय का बहुत विस्तार से वर्णन किया है। (मनु० अध्याय ३, श्लोक ५५-६२)। मनु का कथन है कि जिस परिवार में स्त्रियों का आदर होता है, वहाँ देवों का निवास होता है। वहाँ सभी प्रकार की श्रीवृद्धि होती है और जहाँ उनका अनादर होता है, वहाँ श्री नष्ट हो जाती है।[१०]

---

७. न स्तेयमद्मि। (मंत्र ६४)

८. आयुर्दधानाः प्रतरं नवीयः। (मंत्र १२)

९. उतो त्वस्मै तन्वं वि सस्रे
जायेव पत्य उशती सुवासाः॥ (मंत्र ८४)

१०. यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः॥ मनु० ३-५६

इसलिए पति और पति के परिवार वालों का कर्तव्य है कि वे भोजन, वस्त्र, आभूषण आदि से स्त्री को सदा प्रसन्न रखें।[११]

मनु का कथन है कि जिस परिवार में स्त्री वस्त्र, आभूषण एवं सद्व्यवहार से प्रसन्न रहती है, उस परिवार में सदा श्रीवृद्धि होती है। यदि स्त्री अप्रसन्न रहती है तो उस परिवार की श्री समाप्त हो जाती है।[१२]

प्रसन्न स्त्री पति को प्रसन्न रखती है। प्रसन्न स्त्री से उत्पन्न होने वाली सन्तान भी प्रसन्नचित्त, स्वस्थ और सुयोग्य होती है। स्त्री के अप्रसन्न रहने पर सन्तान भी विकृत, अयोग्य और अश्रीक होती है।[१३]

अतएव मनु का कथन है कि जिस परिवार में पति से पत्नी और पत्नी से पति सन्तुष्ट रहता है, उस परिवार में सदा श्रीवृद्धि और मंगल होता है।[१४]

पत्नी के कर्तव्य—वेदों में पत्नी के कर्तव्यों का बहुत विस्तार से वर्णन प्राप्त होता है। ऋग्वेद का कथन है कि पत्नी ही घर है। पत्नी घर की सारी व्यवस्था करती है। वही सब वस्तुओं को यथास्थान रखती है और सारे परिवार के भोजनादि का प्रबन्ध करती है, अतः पत्नी को घर कहा गया है।[१५]

---

११. तस्मादेताः सदा पूज्या भूषणाच्छादनाशनैः।
भूतिकामैर्नरैर्नित्यं सत्कारेषूत्सवेषु च॥ मनु० ३–५९

१२. स्त्रियां तु रोचमानायां सर्वं तद् रोचते कुलम्।
तस्यां त्वरोचमानायां सर्वमेव न रोचते॥ (मनु० ३–६२)

१३. यदि हि स्त्री न रोचेत, पुमांसं न प्रमोदयेत्।
अप्रमोदात् पुनः पुंसः, प्रजनं न प्रवर्तते॥ (मनु० ३–६१)

१४. सन्तुष्टो भार्यया भर्ता, भर्त्रा भार्या तथैव च।
यस्मिन्नेव कुले नित्यं, कल्याणं तत्र वै ध्रुवम्॥ (मनु० ३–६०)

१५. जायेदस्तम्। (मन्त्र १८)

इसी भाव का संस्कृत में सुभाषित है—'न गृहं गृहमित्याहुः गृहिणी गृहमुच्यते' अर्थात् घर घर नहीं है, अपितु गृहिणी ही घर है। गृहिणी से ही गृह की स्थिति है, अतः वह घर है। उसका कर्तव्य है कि वह घर की सारी व्यवस्था संभाले।

पत्नी का कर्तव्य है कि वह न केवल पति के लिए ही शुभ और सुखकर हो, अपितु पति के पूरे परिवार को सुख देने वाली हो। वह सास-ससुर की सेवा करने वाली हो।[16] (मंत्र ४१, ४५)

पत्नी का कर्तव्य है कि वह देवरों आदि से भी स्नेह का व्यवहार करे। वह पति या देवरों आदि का कभी अहित-चिन्तन न करे। (मन्त्र ४२)। पत्नी के स्वभाव में विनम्रता चाहिए। उसकी दृष्टि में. स्निग्धता और सुशीलता चाहिए। वह केवल व्यक्तियों से ही नहीं, अपितु परिवार के पशुओं के प्रति भी उदार भाव रखे। (मंत्र ४४)। पत्नी का पति के प्रति सहज अनुराग रहता है, अतः पत्नी की सदा कामना रहती है कि मेरा पति दीर्घायु और शतायु हो। पत्नी लाजाहोम में यही भाव व्यक्त करती है।[17]

अथर्ववेद में पत्नी को गन्धर्वों से ऊँचा स्थान दिया गया है। गन्धर्वों में तीन विशेषताएँ होती हैं--सौन्दर्य, अलंकरण और आमोद-प्रमोद, परन्तु स्त्री में चार विशेषताएँ होती हैं, अतः वह गन्धर्वों से बढ़कर है। चतुर्थ विशेषता है--विनय या सुशीलता। पत्नी में जितनी अधिक सुशीलता और विनम्रता होगी, उतनी ही अधिक वह यशस्विनी होगी।[18]

स्त्री में लज्जा गुण होना अनिवार्य है। अतएव ऋग्वेद में कहा गया है कि स्त्री लज्जाशील हो, नीचे की ओर दृष्टि रखे और अपने अंगो को खुला न रखे।[19]

---

१६. सुशेवा पत्ये श्वशुराय शम्भूः। स्योना श्वश्र्वै०। (मंत्र ४१)
१७. दीर्घायुरस्तु मे पतिर्जीवाति शरदः शतम्। (मंत्र १७)
१८. तिस्रो मात्रा गन्धर्वाणां, चतस्रो गृहपत्न्याः। (मंत्र १९)
१९. अधः पश्यस्व मोपरि, संतरां पादकौ हर। (मंत्र ४८)

वेदो में पत्नी का स्थान बहुत ऊँचा बताया गया है। उसे गृहस्वामिनी गृहलक्ष्मी, कल्याणी, सम्राज्ञी आदि कहा गया। वह पति के परिवार में पहुँच कर गृहस्वामिनी हो जाती है। सबके भरण पोषण आदि का उत्तरदायित्व उसपर आ जाता है। घर की समस्त व्यवस्था वह करती है, अतः उसे सम्राज्ञी कहा गया है। स्त्री का कर्तव्य है कि वह अपने इस उत्तरदायित्व के प्रति सदा सचेष्ट रहे।[२०] (मंत्र २० से २७)

वेदों में स्त्री को अवला न कहकर सबला और वीर कहा गया है। उसे शिक्षा दी गई है कि वह शत्रुओं का मर्दन करे और अपना गौरव स्थापित करे।[२१] (मंत्र २६, ४७)

स्त्री पर पूरे परिवार का उत्तरदायित्व होता है, अतः उपदेश दिया गया है कि वह इन्द्राणी की तरह विदुषी प्रबुद्ध और जागरूक हो। स्त्री बालक की निर्मात्री होती हैं। वह उसे ज्ञान देती है और उसका चरित्र-निर्माण करती है, अतः उसे ब्रह्मा कहा गया हैं।[२२] (मंत्र ४३, ४८, ५७)

स्त्री के लिए आदेश है कि वह अपने मान्य जनों को प्रतिदिन प्रणाम करे। अपने से बड़ों को प्रणाम करने से स्त्री की विनीतता का बोध होता है।[२३]

स्त्री का कर्तव्य है कि वह सुन्दर और स्वच्छ वस्त्र पहने। यदि अपने हाथ से बनाए हुए वस्त्र हों तो अत्युत्तम है। स्वच्छ और सुन्दर वस्त्रों से स्फूर्ति तथा सौन्दर्य की वृद्धि होती है।[२४]

वंश-परम्परा को अविच्छिन्न रखने के लिए आवश्यक है कि स्त्री वीर

---

२०. सम्राज्ञी श्वशुरे भव, सम्राज्ञी श्वश्र्वां भव। (मंत्र २३)

२१. उताहमस्मि वीरिणी-इन्द्रपत्नी मरुत्सखा। (मंत्र २६)

२२. इन्द्राणीव सुबुधा बुध्यमाना। (मंत्र ४३)
स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ। (मंत्र ४८)

२३. पितृभ्यश्च नमस्कुरु। (मंत्र ४६)

२४. (मंत्र १३, ८४)

और सुयोग्य सन्तान को जन्म दे। अतएव वेदों में सर्वत्र कुलवर्धक पुत्र की कामना की गई है।[२५] (मंत्र ४९, ५०)

वेदों का कथन है कि स्त्री पर देवों की कृपा रहती है और उसे देवों से दिव्य गुण प्राप्त होते हैं। उसे सोम देवता सुशीलता देता है, गन्धर्व उसे कण्ठ-माधुर्य देते हैं और अग्नि उसे तेजस्विता, ऐश्वर्य एवं सन्तान देता है।[२६]

स्त्री सदा प्रसन्नचित्त रहे और अलंकृत रहे, इसका संकेत वेदों में मिलता है। सूर्या अलंकृत होकर ही अपने पति सोम के पास जाती है। इसमें यह भी संकेत प्राप्त होता है कि कृत्रिम सजावट की अपेक्षा स्वाभाविक सौन्दर्य अधिक महत्त्व रखता है।[२७]

अलंकरण और सौभाग्य के लिए ही दम्पती को विवाह के समय सोने के रथ पर बिठाया जाता है। इसके द्वारा संकेत है कि पति के परिवार में भी पत्नी को इसी प्रकार ऐश्वर्य और सुविधाएँ प्राप्त हों।[२८]

पत्नी के कर्तव्यों का निर्देश करते हुए बताया गया है कि वह पतिव्रता हो, सद्भाव-युक्त हो, मधुर-भाषिणी और सरल स्वभाव वाली हो। पति का वियोग उसके लिए असह्य हो। वह सदा क्रोध, ईर्ष्या आदि दुर्गुणों से दूर रहे। उसका प्रयत्न होना चाहिए कि वह जीवन के अन्त में अमरत्व प्राप्त कर सके।[२९] (मंत्र ३१, ३२)

स्त्री के पातिव्रत्य गुण का महत्त्व बताते हुए वेद में कहा गया गया है कि पतिव्रता स्त्री के पुण्यों से पति दीर्घायु हो जाता है और वह अकाल-मृत्यु से नहीं मरता है।[३०]

---

२५. अग्निर्नारीं वीरकुक्षिं पुरन्धिम्। (मंत्र ४९)
२६. सोमो ददद् गन्धर्वाय, गन्धर्वो दददग्नये। (मंत्र ८)
२७. चित्तिरा उपबर्हणं, चक्षुरा अभ्यञ्जनम्। (मंत्र ११)
२८. रथं तिष्ठा हिरण्यम्। (मंत्र ९)
२९. पत्युरनुव्रता भूत्वा, सं नह्यस्वामृताय कम्। (मंत्र ३१)
३०. नह्यस्या अपरं चन, जरसा मरते पतिः। (मंत्र २८)

सच्चरित्र स्त्री ही प्रियतमा होती है। गुण, शील और सत्कर्म ही उसे सर्वत्र आदर दिलाते हैं। सच्चरित्रता के साथ जो स्त्री परिश्रमी होती है, वह समाज में विशेष सत्कृत होती है। उसके अन्य परिचित इष्ट-मित्र उसके कार्यों में सदा सहयोग करते हैं।[३१] (मंत्र २९, ३०)

वेदों की शिक्षा है कि स्त्री विदुषी, वक्ता और तेजस्विनी हो। वह शास्त्रीय चर्चाओं में भी भाग ले। शिक्षा के क्षेत्र में उसका आदर हो। वह अपने शारीरिक सौन्दर्य का भी पूरा ध्यान रखे। उसमें आत्मिक बल भी होना चाहिए।[३२] (मंत्र ३७, ३९, ४०, ५१)

दम्पती के कर्तव्य—कुछ कर्तव्य केवल पति के हैं और कुछ केवल पत्नी के। उनका वर्णन किया गया है। इसके अतिरिक्त कुछ कर्तव्य ऐसे हैं, जिनका पालन पति और पत्नी दोनों को करना चाहिए। जीवन को पवित्र और सुखमय बनाने के लिए कतिपय गुणों को ग्रहण करना अनिवार्य है। उनका ही यहाँ संक्षेप में वर्णन किया जा रहा है।

जीवन को सुखी बनाने के लिए सर्वप्रथम आवश्यकता है कि दम्पती में आस्तिकता हो। जहाँ आस्तिकता है, वहीं कर्तव्य-निष्ठा, सत्कर्म-प्रवृत्ति, दुर्गुणों से निवृत्ति और मनोबल की वृद्धि है। इसलिए वेद का आदेश है कि परमात्मा को सर्वव्यापक मानते हुए कर्म करो। जब परमात्मा का अस्तित्व सर्वत्र मानकर काम किया जाएगा तो आत्मा पवित्र होगी, रोग शोक भय ताप सभी नष्ट होंगे।[३३] (मंत्र ३, २७)

दम्पती के लिए आवश्यक है कि जीवन को उन्नत करने के लिए दुर्गुणों से बचें और सद्गुणों को अपनावें। यही संस्कृति है, सुशिक्षा है,

---

३१. अनवद्या पतिजुष्टेव नारी। (मंत्र २९)
अश्रमदियमर्यमन् अन्यासां समनं यती। (मंत्र ३०)

३२. अहं केतुरहं मूर्धाऽहमुग्रा विवाचनी। (मंत्र ३७)
आत्मन्वत्युर्वरा नारीयमागन् (मंत्र ४०)

३३. ईशा वास्यमिदं सर्वम्०। (मंत्र ३)
ब्रह्मापरं युज्यतां ब्रह्म पूर्वम्०। (मंत्र २७)

और जीवन की साधना है। इसके लिए ही गायत्री मंत्र के द्वारा प्रार्थना की जाती है कि परमात्मा हमारी बुद्धि को सन्मार्ग पर लगावे। इसके साथ ही हमारा कर्तव्य होता है कि अपने पुरुषार्थ से उपार्जित धन और ऐश्वर्य का ही भोग करें। दूसरों की समृद्धि की ओर तृष्णा-भरी दृष्टि से न देखें।[३४] (मन्त्र १, २, ३)

दम्पती का कर्तव्य है कि अपना जीवन कठोर साधनामय बनावें। सदा पुरुषार्थ करें और अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर हों। प्रारम्भ किए हुए कार्य को अधूरा न छोड़ें। इसलिए वेद का कथन है कि जो निष्ठा-पूर्वक प्रयत्न करते हैं, उनको ही संसार का सुख मिलता है।[३५]

जीवन की साधनाओं में सत्य का सबसे ऊँचा स्थान है। सत्य-भाषण, सत्य-व्यवहार, सत्य-निष्ठा और सत्य-प्रियता जीवन को मधुर एवं सुखमय बनाते हैं। संसार में सत्य से बढ़कर और कोई रक्षक नहीं है। सत्य लोक और परलोक दोनों को सुधारता है।[३६]

दम्पती का कर्तव्य है कि उनमें पारस्परिक सौहार्द हो। उनमें अक्षय प्रेम हो, हार्दिक एकता हो, परस्पर विश्वास हो और सुख-दुःख में सहभागिता हो। ऐसे दम्पती ही जीवन को मधुर बनाते हैं।[३७] (मंत्र ६० से ६८, ७२)

जीवन को मधुर बनाने के लिए सबसे आवश्यक कर्तव्य है कि दम्पती मृदुभाषी और मधुरभाषी हों। मधुर-भाषण जीवन में स्निग्धता लाता है।

---

३४. यद् भद्रं तन्न आ सुव। (मंत्र २)
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः। (मंत्र ३)

३५. अन्वारभेथाम् अनुसंरभेथाम्,
एतं लोकं श्रद्दधानाः सचन्ते। (मंत्र ९६)

३६. सा मा सत्योक्तिः परि पातु विश्वतः। (मंत्र ७९)

३७. समापो हृदयानि नौ। (मंत्र ६५)
सं वां मनांसि सं व्रता, समु चित्तान्याकरम्। (मंत्र ६८)

कटु-भाषण और ताना देना, गृहस्थ को दुःखमय बनाने के सबसे बड़े कारण हैं।[३८]

प्रसन्नचित्त रहना जीवन के लिए रसायन है। यह सभी रोग, शोक और कष्ट दूर करता है। यह अपने लिए और परिवार के लिए सुखद वातावरण उत्पन्न करता है।[३९]

दम्पती का कर्तव्य है कि वे अपने जीवन को संयमी बनावें। असंयम से न केवल शारीरिक क्षीणता आती है, अपितु यह परिवार की श्रीवृद्धि का सबसे बड़ा नाशक है। इससे ही रोग, शोक, चिन्ताएं और दुःख होते हैं।[४०]

दम्पती का लक्ष्य होना चाहिए कि वे समृद्धि में किसी से न्यून न हों। वे ऐश्वर्य में सर्वश्रेष्ठ हों और दूसरों के लिए आदर्श हों।[४१]

वेद का आदेश है कि उद्यम में सबसे आगे रहो और दान में भी सर्वश्रेष्ठहो। सौ हाथ से कमाओ और हजार हाथ से दान करो।[४२]

दम्पती का कर्तव्य है कि वे जीवनयात्रा में अपने शत्रुओं से सदा सावधान रहें। शत्रुओं को नष्ट करें और उन्हें सिर न उठाने दें।[४३] (मंत्र ७२, ८३)

दम्पती के लिए आवश्यक कर्तव्य बताया गया है कि वे सपरिवार यज्ञ

---

३८. घृतात् स्वादीयो मधुनश्च वोचत। ऋग्० ८–२४–२०
मधुमतीं वाचमुदेयम्। अथर्व० १६–२–२

३९. हसामुदौ महसा मोदमानौ। (मंत्र ७३)
क्रीडन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिः मोदमानौ स्वे गृहे। (मंत्र ७४)

४०. मा शिश्नदेवा अपि गुर्ऋतं नः। (मंत्र ८१)
मूषो न शिश्ना व्यदन्ति माध्यः। (मंत्र ८२)

४१. श्रिया समानानति सर्वान् स्याम। (मंत्र ८६)

४२. शतहस्त समाहर, सहस्रहस्त सं किर। (मंत्र ९२)

४३. शत्रूयतामभि तिष्ठा महांसि। (मंत्र ७२)

करें। वेदों में स्त्री को यज्ञ करने का अधिकार दिया गया है। दैनिक यज्ञ उनके कर्तव्यों में है।[४४] (मंत्र ५२ से ५५)

दम्पती का एक अत्यावश्यक कार्य यह भी है कि वे अपने गृहस्थ जीवन को व्यक्ति तक ही सीमित न रखें, अपितु समाज और राष्ट्र की उन्नति में भी पूरा सहयोग दें। समाज और राष्ट्र की उन्नति से व्यक्ति की भी उन्नति होती है, अतः समाज-हित और राष्ट्र-हित प्रमुख कर्तव्य है।[४५]

दम्पती क्या न करें ?—दम्पती के लिए कुछ कर्मों का निषेध किया गया गया है। दम्पती इन दुर्गुणों आदि को छोड़ें। ये दुर्गुण दम्पती को शारीरिक, मानसिक और आत्मिक क्षति पहुँचाते हैं। इनसे गृहस्थ जीवन का सुख नष्ट होता है और परिवार में अनेक प्रकार की आधि-व्याधि आती हैं तथा अशान्ति का वातावरण उत्पन्न होता है।

दम्पती का कर्तव्य है कि वे विषय-वासनाओं में न फंसे। जीवन को संयमी और सुनियन्त्रित रखें। असंयम जीवनी शक्ति नष्ट करता है। इससे शारीरिक क्षीणता और मानसिक असन्तुलन होता है।[४६] (मंत्र ४, ८१, ८२)

जीवन को उन्नत करने के लिए आवश्यक है कि मनुष्य दुर्गुणों को छोड़े। दुर्गुण और दुर्व्यसन मनुष्य के शरीर को घुन की तरह खा जाते हैं। जुआ खेलना, मदिरा-पान, मांसाहार आदि ऐसे ही त्याज्य दुर्गुण हैं।[४७] (मंत्र २, ८९)

---

४४. आ रोह चर्मोप सीदाग्निम्। (मंत्र ५२)
तत्रोपविश्य सुप्रजा, इममग्नि सपर्यतु। (मंत्र ५५)

४५. अभि वर्धतां पयसाऽभि राष्ट्रेण वर्धताम्। (मंत्र ७५)

४६. मा शिश्नदेवा अपि गुर्ऋतं नः। (मंत्र ८१)

४७. दुरितानि परा सुव। (मंत्र २)
अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित् कृषस्व। ऋग्० १०–३४–१३

जीवन को सुखी बनाने के लिए आवश्यक है कि दुर्जनों की संगति छोड़ें। दुर्जन स्वयं पतित होते हुए दूसरे को भी पतित करते हैं। अतः भव-सिन्धु को पार करने के लिए दुर्जनों का संग त्याज्य है।[४८] (मंत्र ८०)

परिवार की समृद्धि के लिए आवश्यक है कि पति एक ही विवाह करे। एक पत्नी के रहते हुए दूसरा विवाह न करे। जो एक से अधिक विवाह करते हैं, वे पारिवारिक शान्ति नष्ट कर देते हैं। सौत सदा दुःख का मूल है।[४९] (मंत्र ४७, ५८)

पति-पत्नी के हृदय में किसी प्रकार का छल नहीं होना चाहिए। वे एक-दूसरे से छिपाकर कोई काम न करें। दोनों को एक-दूसरे के कार्य-कलाप का ज्ञान होना चाहिए।[५०]

वेदों में दूसरों के वस्त्र पहनने का निषेध है। (मंत्र ९९)

श्रीवृद्धि के साधन—

शुभ लक्ष्मी की प्राप्ति का मुख्य साधन है—सद्बुद्धि। (मंत्र ९३)

अथक परिश्रम और अपने कर्तव्य के प्रति निष्ठा को श्री-प्राप्ति का सरल उपाय बताया गया है। (मंत्र ९६)। पारस्परिक सहयोग, धैर्य एवं स्वावलम्बन को श्री प्राप्ति का मार्ग माना गया है। (मंत्र ९५)। शुभ विचार, शिव संकल्प और संगठन को ऐश्वर्य का साधन बताया गया है। साधन शुभ होंगे तो सिद्धि भी शुभ होगी। (मंत्र ९४)। धर्मानुकूल आचरण और अपने व्यवहार में सत्य को अपनाने से स्थायी श्रीवृद्धि होती है। (मंत्र ९७)। दम्पती का जीवन सदा सुखमय हो। उनकी सदा श्रीवृद्धि हो तथा परिवार में सुख-शान्ति का मंगलमय वातावरण हो।

——

४८. अत्रा जहाम ये असन्नशेवाः। (मंत्र ८०)

४९. सं मा तपन्त्यभितः सपत्नीरिव पर्शवः। (मंत्र ५८)

५०. न स्तेयमद्मि। (मंत्र ६४)

संकेत-सूची

१	—एकवचन	दिवादि०	—दिवादिगण
२	—द्विवचन	द्वि०	—द्वितीया विभक्ति
३	—बहुवचन	नपुं०	—नपुंसक लिंग
अथर्व०	—अथर्ववेद संहिता	पं०	—पंचमी विभक्ति
अदादि०	—अदादिगण	पा०	—पाणिनीय अष्टाध्यायी
आशी०	—आशीर्लिङ्	पुं०	—पुंलिंग
Inj.	—Injunctive	पु०	—पुरुष
उणादि०	—उणादि सूत्र	प्र०, प्र० पु०	—प्रथम पुरुष, प्रथमा
उ०, उ० पु०	—उत्तम पुरुष	प्रथमा	—प्रथमा विभक्ति
उप०	—उपनिषद्	ब्रा०	—ब्राह्मण
ऋग्	—ऋग्वेद संहिता	श्वादि०	—श्वादिगण
ऐत०	—ऐतरेय ब्राह्मण	म०, म० पु०	—मध्यम पुरुष
क्र्यादि०	—क्र्यादिगण	यजु०	—यजुर्वेद संहिता
गोपथ ब्रा०	—गोपथ ब्राह्मण	रुधादि०	—रुधादिगण
च०	—चतुर्थी विभक्ति	शत०	—शतपथ ब्राह्मण
चुरादि०	—चुरादिगण	ष०	—षष्ठी विभक्ति
जुहोत्यादि०	—जुहोत्यादिगण	सं०	—संबोधन
तनादि०	—तनादिगण	स०	—सप्तमी दिभक्ति
ता०, तां०	—तांड्य ब्राह्मण	साम०	—सामवेद संहिता
तुदादि०	—तुदादिगण	Sub.	—Subjunctive
तृ०	—तृतीया विभक्ति	स्त्री०	—स्त्रीलिंग
तैत्ति०	—तैत्तिरीय ब्राह्मण	स्वादि०	—स्वादिगण

——

सुखी गृहस्थ

विषयानुक्रमणी

—

मन्त्रानुक्रमणिका

ओम्

वेदामृतम्

भाग २

सुखी गृहस्थ

१. बुद्धि सन्मार्ग पर चले (गायत्री मन्त्र)

ओं भूर्भुवः स्वः। तत् सवितुर्वरेण्यं, भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्।

यजु० ३६–३; ३–३५; २२–९; ३०–२; ऋग्० ३–६२–१०; साम० १४६२; तैत्ति० सं० १–५–६–४; ४–१–११–१, तैत्ति० आ० १–११–२

अन्वय—ओं भूः भुवः स्वः। सवितुः देवस्य तत् वरेण्यं भर्गः धीमहि। यः नः धियः प्रचोदयात्।

शब्दार्थ—(ओम्) रक्षक परमात्मन्, (भूः) सत्-स्वरूप, (भुवः) चित्-स्वरूप, (स्वः) आनन्द-स्वरूप, (सवितुः) संसार के उत्पादक, (देवस्य) दिव्यगुणयुक्त परमात्मा के, (तत्) उस, (वरेण्यम्) सर्वश्रेष्ठ, (भर्गः) तेज को, (धीमहि) धारण करते हैं। (यः) जो परमात्मा, (नः) हमारी, (धियः) बुद्धियों को, (प्रचोदयात्) सत्कर्मों में प्रेरित करे।

हिन्दी अर्थ—सच्चिदानन्द-स्वरूप, संसार के उत्पादक, देव, परमात्मा के उस सर्वोत्कृष्ट तेज को हम धारण करते हैं। वह परमात्मा हमारी बुद्धियों को सत्कर्मों में प्रेरित करे।

Eng. Trans.—O Supreme Lord ! thou art the source of existence, intelligence and bliss, creator of the universe. We cherish thy luminous lustre. Vouchsafe an unerring guidance to our intellects.

अनुशीलन—मानव-जीवन को सुखी बनाने के लिए दो बातों की सबसे अधिक आवश्यकता है—आस्तिकता और बुद्धि की शुद्धता। ये दोनों कार्य गायत्री मन्त्र से सिद्ध होते हैं। गायत्री का अर्थ है—गय और गाय का अर्थ है—प्राण। प्राणा वै गयाः (शतपथ ब्रा० १४-८-१५-७)। गयाः प्राणाः, गयाः एव गायाः, तान् त्रायते इति गायत्री। गाय अर्थात् प्राणों की रक्षा करने वाले को गायत्री कहते हैं। गायत्री के जप से प्राणशक्ति की वृद्धि होती है और शारीरिक तथा बौद्धिक न्यूनता दूर होती है। गायत्री को सावित्री भी कहते हैं। सविता अर्थात् सूर्य या ब्रह्म से सम्बद्ध होने से यह सावित्री मन्त्र है। इसके द्वारा शरीर में सौर शक्ति की उत्पत्ति होती है।

गायत्री ही ब्रह्मवर्चस् या ब्रह्मतेज है। गायत्री ब्रह्मवर्चसम् (तैत्तिरीय ब्रा० २-७-३-३), तेजो ब्रह्मवर्चसं गायत्री (कौषीतकि ब्राह्मण १७-२)। गायत्री के नियमित जप से ब्रह्मवर्चस् प्राप्त होता है। इस ब्रह्मवर्चस् से ही मनुष्य संयमी, जितेन्द्रिय और मनोनिग्रही होता है। अतएव तांड्य ब्राह्मण में कहा है—वीर्यं वै गायत्री (तां० ७-३-१३)।

गायत्री मन्त्र के तीन भाग हैं—(क) महाव्याहृति—ओं भूर्भुवः स्वः। इसमें परमात्मा के स्वरूप का वर्णन है कि वह सत्, चित् और आनन्दरूप है। उसके आनन्द की प्राप्ति ही मनुष्य-जीवन का लक्ष्य है। (ख) तत्……… धीमहि। उस आनन्द की प्राप्ति के लिए परमात्मा के तेज या ज्योति को हृदय में धारण करना होगा। परमात्मारूपी दिव्य रत्न को हृदय में रखे बिना ज्ञान की शक्ति ही उद्बुद्ध नहीं होगी। बुद्धि की शुद्धि के लिए आस्तिकता, ईश्वर-विश्वास और ईश्वर की सर्वव्यापकता का ज्ञान चाहिए। मन्त्र का द्वितीय भाग आस्तिकता और आत्मिक शक्ति को उत्पन्न करता है। (ग) मन्त्र का तृतीय भाग—धियो………प्रचोदयात्, गायत्री-मन्त्र के जप का फल बताता है। ईश्वररूपी मणि को हृदय में धारण करने से उसका प्रकाश बुद्धि को शुद्ध करता है। बुद्धि स्वयं सन्मार्ग पर चलने

लगती है। वह अकर्तव्य का परित्याग करके कर्तव्य मार्ग को ही ग्रहण करती है। इस प्रकार मनुष्य का जीवन सुख की ओर अग्रसर होता है।

टिप्पणी—(१) ओम्—अवतीति ओम्, रक्षा करने वाला। रक्षा अर्थ वाली अव् धातु से मनिन् (मन्) प्रत्यय, अवतेष्टिलोपश्च (उणादि० १-१४२) से मन् के अन् का लोप, ज्वरत्वर० (पा० ६–४–२०) से अव् को ऊठ् (ऊ), गुण। अव् + मन् (म्) = ओम्। (२) भूर्भुवः स्वः—भूः, भुवः, स्वः, ये तीन ईश्वर के गुण-बोधक महाव्याहृतियाँ हैं। भूः—सत्, सत्ता; भुवः—चित्, ज्ञान, चेतना; स्वः-आनन्द, इन तीन गुणों से युक्त परमात्मा सच्चिदानन्द है। (३) सवितुः—सू (जन्म देना, प्रेरणा देना) + तृच् (तृ) = सवितृ + षष्ठी १। (४) वरेण्यम्—वरणीय, सर्वश्रेष्ठ, अत्युत्तम, सर्वोत्कृष्ट। वृ + एन्य। (५) भर्गः—तेज। भृज् + घञ् (अ)। भृजी भर्जने, पापों को नष्ट करता है। यहाँ भर्गस् नपुंसक लिंग शब्द है। भर्ग का अर्थ वीर्य है। 'वीर्यं वै भर्गः (शतपथ ब्रा० ५–४–५–१)। (६) धीमहि—धारण करते हैं। धा + लुङ् आत्मनेपद + उ० पु० ३। अडागमरहित लुङ्, Injunctive, है। अधिकांश भाष्यकारों ने धीमहि का अनुवाद—ध्यायामः, चिन्तयामः, ध्यान करते हैं, किया है। 'ध्यै चिन्तायाम्' धातु में छान्दस संप्रसारण माना है। धा धातु का रूप मानना अधिक उचित है। (७) प्रचोदयात्—प्र + चुद् + णिच् + लेट् प्र० पु० १। चुरादिगणी 'चुद् सचोदने' से। प्रेरित करे। विधिलिङ् में प्रचोदयेत् होगा। (८) छन्दकी पूर्ति के लिए वरेण्यम् को 'वरेणिअम्' पढ़ा जाता है।

२. सद्गुणों को अपनावें

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव।
यद् भद्रं तन्न आ सुव॥

यजु० ३०-३; ऋग्० ५-८२-५; तैत्ति० ब्रा० २-४-६-३; तैत्ति० आ० १०-१०-२

अन्वय—हे सवितः देव, विश्वानि दुरितानि परा सुव । यत् भद्रं तत् नः आ सुव ।

शब्दार्थ—(हे सवितः देव) हे संसार के उत्पादक देव, (विश्वानि) सारे, (दुरितानि) दुर्गुणों को, (परा सुव) दूर हटावो । (यत्) जो, (भद्रम्) शुभ, कल्याणकारी हो, (तत्) वह, (नः) हमें, (आ सुव) दीजिए, प्रेरित कीजिए ।

हिन्दी अर्थ—हे संसार के उत्पादक देव ! आप हमारे सारे दुर्गुणों को दूर कीजिए और जो कल्याणकारी गुण हों, उन्हें हमें दीजिए (उनको हमारे अन्दर प्रेरित कीजिए) ।

Eng. Tr.—O All-creating God ! please keep far from us all evils and let us attain what-ever be beneficial to us.

अनुशीलन—इस मंत्र में संस्कृति का लक्षण बताया गया है । संस्कृति क्या है ? संस्कार, परिष्कार और संशोधन को संस्कृति कहते हैं । कृषि (Agriculture) से संस्कृति (Culture) को समझा जा सकता है । कृषि में अनावश्यक घास-फूंस को खोदकर निकाला जाता है और उपयोगी बीजों को बोया जाता है तथा उन्हें खाद-पानी आदि देकर पुष्ट किया जाता है । इसी प्रकार संस्कृति में अवांछनीय तत्त्वों, दुर्गुण दोष आदि, को हटाया जाता है और उनके स्थान पर सद्गुणों को प्रतिष्ठित किया जाता है । यह कार्य ही संस्कृति है । दुर्गुणनिवारण और सद्गुण-संस्थापन संस्कृति है । अतएव मंत्र में कहा गया है कि दुर्गुणों, दुर्विचारों, दुःखदायी तत्त्वों को दूर कीजिए और जो भी शुभ तत्व, शुभ-विचार, सद्गुण आदि हैं, उन्हें हमें दीजिए । यह संस्कृति का क्रम जीवन भर चलता रहता है । इसके द्वारा ही मनुष्य पापों और दुर्विचारों से बचता है और सद्गुणों में प्रवृत्त होता है । सद्गुणों में यह प्रवृत्ति जब बद्धमूल हो जाती है, तब दुर्भावना आदि का क्षय हो जाता है और सद्गुण ही निरन्तर स्थान पाते हैं । तभी मानव-जीवन देवत्व की ओर अग्रसर होता है ।

टिप्पणी—(१) सवितः—संसार के उत्पादक या प्रेरक। सू (उत्पन्न करना, प्रेरणा देना) + तृच् (तृ) + संबोधन १। (२) दुरितानि—दुर्गुण। दुरित—दुर् + इ (जाना) + क्त (त)। (३) परा सुव—हटाओ, दूर करो। सू (प्रेरणा देना, जन्म देना, तुदादि) + लोट् म० १। (४) नः—हमको। (५) आ सुव—दो, प्रेरित करो। सू + लोट् म० १।

३. त्याग-भाव से संसार को भोगो

ईशा वास्यमिदँ सर्वं यत् किं च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद् धनम् ॥

यजु० ४०-१

अन्वय—इदं सर्वं यत् किं च जगत्यां जगत् ईशा वास्यम्। तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः, कस्यस्विद् धनं मा गृधः।

शब्दार्थ—(इदं सर्वम्) यह सब, (यत् किं च) जो कुछ, (जगत्याम्) गतिशील पृथ्वी में, (जगत्) गतिशील, चर प्राणिमात्र है, वह, (ईशा) परमात्मा से, (वास्यम्) आच्छादित, व्याप्त है। (तेन) उस परमात्मा के द्वारा, (त्यक्तेन) त्याग किए हुए जगत् को, त्याग की भावना से, (भुञ्जीथाः) भोग करो। (कस्यस्विद्) किसी के, (धनम्) धन को, (मा गृधः) मत चाहो, लालच की भावना से मत चाहो।

हिन्दी अर्थ—इस गतिशील संसार में जो कुछ भी गतिशील या चरात्मक है, वह सब कुछ परमात्मा से व्याप्त है। उस परमात्मा के द्वारा दिए हुए जगत् को त्याग भाव से भोगो। किसी के धन को लालच की भावना से मत चाहो।

Eng. Tr.—Whatever movable entity has its being in the universe of motion is environed by the Supreme Ruler. Look at the material world with the feeling of renunciation and lust not after anyones riches.

अनुशीलन—जीवन को सुखी बनाने के लिए आस्तिकता की आधार-शिला अत्यावश्यक है। जिस प्रकार नींव या आधार के बिना भवन की सुस्थिरता की कल्पना नहीं की जा सकती है, उसी प्रकार आस्तिकतारूपी नींव के बिना सुखी जीवन की कल्पना ही नहीं की जा सकती है। परमात्मा सर्वव्यापक है। सृष्टि के प्रत्येक कण में वह विद्यमान है। उसकी सत्ता का अनुभव करना सबसे बड़ी योग्यता है। पाप अज्ञात या गुप्त स्थानों में किया जाता है। परमात्मा की सर्वव्यापकता मान लेने पर ऐसा कोई स्थान नहीं मिल सकता है, जहाँ परमात्मा न हो। उससे छिपा कर कोई पाप नहीं किया जा सकता है। अतः आस्तिक व्यक्ति विवश होकर पापों से विरत हो जाता है। यही उन्नति और उत्थान की प्रथम सीढ़ी है। मंत्र में जीवन को सुखी बनाने के लिए दूसरा साधन बताया गया है—त्याग की भावना। संसार की प्रत्येक वस्तु को निःस्वार्थ भाव से भोगना तथा आसक्ति को छोड़ना। मनुष्य को अपने कर्मों और पुरुषार्थ के द्वारा जो सुख-सुविधा प्राप्त हुई है, उससे उसे सन्तुष्ट रहना चाहिए। अतएव कहा गया है कि—'सन्तोष एव पुरुषस्य परं निधानम्' सन्तोष ही सबसे बड़ा धन है। धन और ऐश्वर्य में आसक्ति मानवीय दुःखों का कारण है, अतः आसक्ति को छोड़कर त्याग की भावना से ही सांसारिक भोगों को भोगना चाहिए। मंत्र का अन्तिम चरण आदेश देता है कि—लोभ को छोड़ दो, पराई संपत्ति पर कुदृष्टि न डालो, पराए धन की लिप्सा न करो। स्वोपार्जित और पुरुषार्थ-लब्ध धन अपना है। उसका भोग करें। उसी में सुख है, शान्ति है और मानसिक आनन्द है।

टिप्पणी—(१) ईशा—ईश्वर से। ईशा—ईश् (स्वामी होना, अदादि) + क्विप् (०) + तृ० १। (२) वास्यम्—व्याप्त, आच्छादित। वस् (आच्छादित करना, अदादि) + ण्यत् (य)। (३) त्यक्तेन—उस परमात्मा के द्वारा परित्यक्त या प्रदत्त संसार से। स्व-स्वामिभाव संबन्ध को छोड़कर या त्याग की भावना से। त्यज् + क्त (त) = त्यक्त।

(४) भुञ्जीथाः—भुज् (भोग करना), रुधादि + विधिलिङ् + म० १ । (५) मा गृधः—लालच मत करो । गृध् (लालच करना, दिवादि) + लुङ् + म० १ । मा के कारण अडागम का अभाव । (६) कस्यस्वित्—किसी का ।

४. संयम का महत्त्व

ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम् ।
अनड्वान् ब्रह्मचर्येणाश्वो घासं जिगीर्षति ॥

अथर्व० ११-५-१८

अन्वय—कन्या ब्रह्मचर्येण युवानं पतिं विन्दते । अनड्वान् अश्वः (च) ब्रह्मचर्येण घासं जिगीर्षति ।

शब्दार्थ—(कन्या) अविवाहित बालिका, (ब्रह्मचर्येण) ब्रह्मचर्य व्रत एवं संयम के पालन से, (युवानम्) युवक, (पतिम्) पति को, (विन्दते) प्राप्त करती है । (अनड्वान्) बैल, (अश्वः च) और घोड़ा, (ब्रह्मचर्येण) संयम के द्वारा ही, (घासम्) घास, तृणादि को, (जिगीर्षति) खाने की इच्छा करता है ।

हिन्दी अर्थ—कन्या ब्रह्मचर्य के पालन से ही सुयोग्य युवा पति को प्राप्त करती है । बैल और घोड़े संयम के कारण ही (कठोर परिश्रम करते हैं और) घास खाने की इच्छा करते हैं ।

Eng. Tr.—A girl, observing chastity, marries a handsome husband. The ox and the horse, observing chastity, are able to digest grass

अनुशीलन—सुखी गृहस्थ की आधारशिला ब्रह्मचर्य है । बालक हो या बालिका, युवक हो या युवती, उसके लिए जीवन की प्रारम्भिक शिक्षा ब्रह्मचर्य है । ब्रह्मचर्य का अर्थ है—संयमी जीवन व्यतीत करना । अपने मन और इन्द्रियों को वश में रखना संयम है । जिस भवन की आधार-

शिला जितनी सुदृढ़ होगी, उतना ही पुष्ट भवन उस पर खड़ा हो सकता है, इसी प्रकार संयम की जितनी अधिक मात्रा बाल्यकाल में होगी, उतनी ही पौष्टिकता भावी जीवन में प्राप्त होगी। कन्या का भविष्य-निर्माता पति है। संयम की जो आवश्यकता कन्या के लिए है, वही वर के लिए भी है। कन्या और वर जब दोनों संयमी जीवन व्यतीत करने वाले होंगे, तब उनका भावी जीवन भी सुखमय हो सकेगा। भौतिक वासनाएँ जीवन को निरन्तर पतन की ओर अग्रसर करती हैं। इनके प्रलोभन से बचना और अपने आपको स्व-केन्द्रित रखना सुख का मूल है। स्वस्थ कन्या और स्वस्थ वर ही गृहस्थरूपी रथ को सरलता से ढो सकते हैं। जीवन की विषमताएं, विषम परिस्थितियां, आधि-व्याधि, भय-शोक दम्पती की निरन्तर परीक्षा लेते रहते हैं, जहाँ भी शारीरिक या मानसिक न्यूनता होगी, वहाँ दुःख और कष्ट सद्यः आकर जीवन को दुःखद बना देते हैं। अतः सुखी गृहस्थ के लिए प्रारम्भिक शिक्षा ब्रह्मचर्य या संयम की है।

प्रकृति ने बैल और घोड़े को ही नहीं, अपितु सभी पशु-पक्षियों को प्राकृतिक नियम पालने की शिक्षा दी है। पशु-पक्षियों के लिए भी संयम उतना ही आवश्यक है, जितना मनुष्य के लिए। अतः उनके लिए सन्तानोत्पत्ति के कुछ मास निर्धारित हैं। वे उस नियम का पालन करते हैं और स्वस्थ रहते हैं। सुखी गृहस्थ के लिए भी उसी प्रकार संयम का पालन करना अपने भविष्य को उन्नत करने के लिए आवश्यक है।

टिप्पणी–(१) **ब्रह्मचर्येण**—ब्रह्मचर्य या संयम का जीवन व्यतीत करने से। ब्रह्म—आत्मा, आत्मरक्षा, संयम, चर्य—पालन करना। ब्रह्मचर्य—ब्रह्मन् + चर् + य। (२) **युवानम्**–युवक, तरुण, शक्तिशाली। युवन् + द्वि० १। (३) **विन्दते**—पाती है। विद् (पाना, तुदादि, आ०) + लट् प्र० १। (४) **पतिम्**—पति, भर्ता या पालक को। पातीति पतिः, रक्षा करने वाला। (५) **अनड्वान्**—बैल। अनस् + वह् = अनडुह् + प्र० १। अनस्–गाड़ी को, वह्–ढोने वाला। (६) **जिगीर्षति**–खाना या निगलना चाहता है। गॄ (निगलना, तुदादि पर०) + इच्छार्थक सन् (स) + लट् प्र० १।

५. योग्य कन्या का योग्य वर से विवाह

शुद्धाः पूता योषितो यज्ञिया इमा
ब्रह्मणां हस्तेषु प्रपृथक् सादयामि ।
यत्काम इदमभिषिञ्चामि वोऽहम्
इन्द्रो मरुत्वान्त्स ददादिदं मे ।।

अथर्व० ११-१-२७

अन्वय—इमाः शुद्धाः पूताः यज्ञियाः योषितः ब्रह्मणां हस्तेषु पृथक् प्रसादयामि । यत्कामः अहं वः इदम् अभिषिञ्चामि, मरुत्वान् स इन्द्रः मे इदं ददात् ।

शब्दार्थ—(इमाः) इन, (शुद्धाः) शुद्ध आचरण वाली, (पूताः) पवित्र, (यज्ञियाः) यज्ञ करने के योग्य, (योषितः) स्त्रियों को, (ब्रह्मणाम्) ब्राह्मणों या विद्वानों के (हस्तेषु) हाथों में, (पृथक्) अलग-अलग, (प्र सादयामि) अर्पित करता हूँ । (यत्कामः) जिस कामना से, (अहम्) मैं, (वः) तुम्हें, (इदम्) यह, स्त्रीरूपी रत्न, (अभिषिञ्चामि) देता हूँ, (मरुत्वान्) मरुत् देवों के साथ रहने वाला, (स इन्द्रः) वह इन्द्र, वह परमात्मा, (मे) मुझे, (इदम्) यह, (ददात्) देवे ।

हिन्दी अर्थ—इन शुद्ध पवित्र यज्ञ करने के योग्य स्त्रियों को ब्राह्मणों (विद्वानों) के हाथों में पृथक्-पृथक् देता हूँ । जिस कामना से मैं तुम्हें यह (स्त्री-रत्न) देता हूँ, मरुत् देवों के साथ रहने वाला वह इन्द्र (परमेश्वर) मुझे वह दे, अर्थात् परमात्मा मेरी इच्छा पूर्ण करे ।

Eng. Tr.—I offer these chaste, virtuous and holy maidens to the learned ones. May Indra, along with the Maruts, fulfil my desires, with which I am offering these to you.

अनुशीलन—गृहस्थ जीवन को सुखी बनाने के लिए आवश्यक है कि कन्या और वर दोनों का ही जीवन उच्च-स्तर का हो । इसलिए मन्त्र में

वर और वधू के गुणों का निर्देश है। वर के लिए कहा गया है कि वह ब्रह्मन् हो अर्थात् वेदज्ञ, सुशिक्षित और आस्तिक हो। ज्ञान और चरित्र मानव जीवन की कसौटी हैं। इनके अस्तित्व से ही मानव में ब्रह्मत्व आता है, अन्यथा वह मानव या दानव होता है। मन्त्र में कन्या के लिए तीन गुणों की आवश्यकता बताई गई है—शुद्धता, पवित्रता और यज्ञियता। शरीर की आन्तरिक शुद्धि से मन, बुद्धि और चित्त शुद्ध होते हैं। मन यदि शुद्ध है तो बुद्धि और चित्तवृत्तियाँ भी शुद्ध होंगी। शुद्ध शब्द से आन्तरिक शुद्धि अभिप्रेत है। पूत शब्द से बाह्य शुद्धि या पवित्रता अभिप्रेत है। आन्तरिक शुद्धि के साथ बाह्य शरीर की भी शुद्धि और स्वच्छता आवश्यक है। विदुषी कन्याएं ही यज्ञ करने की अधिकारिणी हैं, अतः यज्ञिय शब्द से यज्ञ करने की क्षमता, विद्वत्ता और सुयोग्यता का ग्रहण है। इस प्रकार मन्त्र का अभिप्राय है कि योग्य वर का योग्य कन्या से विवाह होना चाहिए।

उत्तरार्ध का भावार्थ है कि माता-पिता अपनी कन्या योग्य वर को इस अभिप्राय से देते हैं कि कन्या का भावी जीवन सुखमय हो। यदि पति उस आकांक्षा को पूरा करता है तो कन्या के माता-पिता को वास्तविक प्रसन्नता होती है। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए परमात्मा से प्रार्थना है कि वह कन्या के माता-पिता की कामना पूर्ण करे।

टिप्पणी–(१) **योषितः**—स्त्रियां। योषित् + प्र० ३। (२) **यज्ञियाः**–यज्ञ का काम करने योग्य। यज्ञ + घ (इय) + प्र० ३। (३) **ब्रह्मणाम्**—ब्राह्मणों के, विद्वानों के। ब्रह्मन् + ष० ३। ब्रह्मन्—ब्राह्मण, विद्वान्, वेदज्ञ। (४) **प्र सादयामि**—देता हूँ, रखता हूँ, अर्पित करता हूँ। प्रसन्नतापूर्वक देता हूँ। सद् + णिच् (अय) + लट् उ० १। (५) **यत्कामः**—जिस कामना से। अर्थात् स्त्री पति के साथ सुखपूर्वक जीवन बितावे, इस कामना से देता हूँ। (६) **अभिषिञ्चामि**—देता हूँ, अभिषेक करता हूँ, संकल्पपूर्वक देता हूँ। अभि + सिच्। (सींचना, तुदादि, पर०) + उ० १। (७) **मरुत्वान्**—मरुत् देवों के साथ रहने वाला। मरुत् वायु-देवता एवं

प्राण-देवता हैं। मरुत् + मत् = मरुत्वत् + प्र० १। (८) ददात्—देवे। दा (देना, जुहोत्यादि, उभय०) + लुङ् प्र० १। अडागम नहीं है। Inj. है।

६. सौभाग्य के लिए पाणिग्रहण

गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं
मया पत्या जरदष्टिर्यथासः।
भगो अर्यमा सविता पुरंधि-
र्मह्यं त्वादुर्गार्हपत्याय देवाः॥

ऋग्० १०-८५-३६; अथर्व० १४-१-५०

अन्वय—(हे वधु) सौभगत्वाय ते हस्तं गृभ्णामि। यथा मया पत्या जरदष्टिः असः। भगः अर्यमा सविता पुरंधिः देवाः गार्हपत्याय त्वा मह्यम् अदुः।

शब्दार्थ—(हे वधु) हे वधू, (सौभगत्वाय) सौभाग्य के लिए, (ते) तेरे, (हस्तम्) हाथ को, (गृभ्णामि) मैं ग्रहण करता हूँ। (यथा) जिस प्रकार, जिससे, (मया) मुझ. (पत्या) पति के साथ, (जरदष्टिः) वृद्धावस्था तक, (असः) रहो, होओ। (भगः) ऐश्वर्यशाली, (अर्यमा) उदार, (सविता) संसार का उत्पादक एवं प्रेरक, (पुरंधिः) जगत् का धारक, पूषा देव, (देवाः) ये सभी देवता, (गार्हपत्याय) गृह-स्वामित्व के लिए, (त्वा) तुझको, (मह्यम्) मुझे, (अदुः) देते हैं, दिया है।

हिन्दी अर्थ—हे वधू, मैं (पति) सौभाग्य के लिए तेरे हाथ को ग्रहण करता हूँ (पाणिग्रहण करता हूँ)। जिससे तुम मुझ पति के साथ वृद्धावस्था तक रहो। ऐश्वर्यशाली, उदार, संसार के उत्पादक और धारक परमात्मा ने तथा सभी देवों ने गृह-स्वामित्व के लिए तुझको मुझे दिया है।

Eng. Tr.—O Bride! I hold your hand for prosperity. May you live with me till the end of life. The gods

Bhaga, Aryaman, savitar and Pushan, have given you to me for the household duties.

अनुशीलन—यह मन्त्र विवाह-संस्कार में वर के द्वारा कन्या का पाणिग्रहण करते समय पढ़ा जाता है। यह विवाह का प्रतिज्ञा-मन्त्र है। इसमें वर प्रतिज्ञा करता है कि वह कन्या के सौभाग्य के लिए उसका हाथ पकड़ता है। सौभाग्य क्या है ? क्या धन, भूमि, वस्त्र एवं बहुमूल्य आभूषणों आदि की बहुलता ही सौभाग्य है ? नहीं, यह जीवन का एकांगी सौभाग्य है। जीवन का वास्तविक सौभाग्य है—पति से पत्नी का सन्तुष्ट रहना और पत्नी से पति का। जहाँ दोनों में पारस्परिक स्नेह, सद्भाव, सामंजस्य और समर्पण की भावना है, वहाँ सौभाग्य है, सश्रीकता है, विभूति है और चिर सुख है। अतएव मनु का कथन है कि जिस परिवार में पति पत्नी से और पत्नी पति से सन्तुष्ट रहते हैं, वहाँ कल्याण का निवास है।

सन्तुष्टो भार्यया भर्ता, भर्त्रा भार्या तथैव च।
यस्मिन्नेव कुले नित्यं, कल्याणं तत्र वै ध्रुवम् ॥

मनु० ३–६०

मन्त्र का आदेश है कि पत्नी जीवन भर पति के साथ रहे। इसका अभिप्राय यह है कि वैदिक विवाह अविच्छेद्य है और पति-पत्नी दोनों अविभाज्य रूप में सह-धर्मचारी के रूप में जीवन व्यतीत करते हैं। मन्त्र का अभिप्राय है कि पति-पत्नी दोनों सुख और दुःख में एक दूसरे का साथ दें तथा अपने कर्तव्य का पालन करें। सुख की वृद्धि करने वाले सभी देवों से प्रार्थना की गई है कि उनकी कृपा-दृष्टि रहे और पति-पत्नी दोनों का दाम्पत्य जीवन मंगलमय हो।

टिप्पणी—(१) गृभ्णामि—ग्रहण करता हूँ, पकड़ता हूँ। ग्रह् (लेना, पकड़ना, क्र्यादि, पर०) + लट् उ० १। र् को ऋ संप्रसारण और ह् को भ्। (२) सौभगत्वाय—सौभाग्य के लिए। सुभग + अण् (अ) = सौभग + त्व

भाव अर्थ में + च० १ । (३) जरदष्टिः—वृद्धावस्था तक, बहुत बड़ी आयु तक । जरा (बुढ़ापा) + अश् (पाना) + ति = जरदष्टिः । (४) असः—होओ, रहो । अस् (होना, अदादि, पर०) + लेट् म० १ । (५) पुरंधिः–पुर या घर की रक्षा करनेवाला, पूषा देव, परमात्मा । (६) अदुः— दिया है । दा (देना, जुहोत्यादि, पर०) + लुङ् प्र० ३ । (७) गार्हपत्याय–गृहपतित्व के लिए । गृहपति + भाव अर्थ में ष्यञ् (य) = गार्हपत्य + च० १ ।

७. पत्नी पोष्य है

ममेयमस्तु पोष्या, मह्यं त्वादाद् बृहस्पतिः ।
मया पत्या प्रजावति, सं जीव शरदः शतम् ।।

अथर्व० १४-१-५२

अन्वय—इयं मम पोष्या अस्तु । बृहस्पतिः त्वा मह्यम् अदात् । हे प्रजावति, मया पत्या शतं शरदः सं जीव ।

शब्दार्थ—(इयम्) यह स्त्री, (मम) मेरी, (पोष्या अस्तु) पोष्य हो, पालन करने योग्य हो । (बृहस्पतिः) बृहस्पति अर्थात् संसार के पालक परमात्मा ने, (त्वा) तुझको, (मह्यम्) मुझे, (अदात्) दिया है । (हे प्रजावति) हे सन्तानयुक्त स्त्री, तू, (मया पत्या) मुझ पति के साथ, (शतम्) सौ, (शरदः) वर्ष, (सं जीव) सुखपूर्वक जीवित रह ।

हिन्दी अर्थ—यह स्त्री मेरे द्वारा पालन करने योग्य है । बृहस्पति (ज्ञान-निधान परमात्मा) ने तुझको मुझे दिया है । हे प्रजायुक्त स्त्री, तू मुझ पति के साथ सौ वर्ष सुखपूर्वक जीवित रह ।

Eng. Tr—The bride is to be supported by me. Lord Bṛhaspati has given you to me. O Maiden ! may you live comfortably with me for a hundred year, along with your offsprings.

अनुशीलन—वर वधू के समक्ष इस मन्त्र से प्रतिज्ञा करता है कि वह जीवन भर पत्नी का पालन करेगा । भारतीय परंपरा के अनुसार पत्नी

के भरण-पोषण का पूर्ण उत्तरदायित्व पति पर होता है। अर्थागम और धनोपार्जन यह पति का क्षेत्र है। उसका उत्तरदायित्व है कि वह परिवार की तथा मुख्य रूप से पत्नी की आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति करे। परिवार एवं गृह की आन्तरिक व्यवस्था का उत्तरदायित्व पत्नी पर है। घर की सुरक्षा, सुव्यवस्था, धन का यथोचित उपयोग एवं बाल-बच्चों के संरक्षण आदि की व्यवस्था पत्नी का कार्यक्षेत्र है, अतः मन्त्र में पति के कर्तव्य का स्पष्ट रूप से उल्लेख है कि वह पत्नी के भरण-पोषण का उत्तरदायित्व निबाहे। ज्ञान का स्वामी बृहस्पति या परमात्मा इस दाम्पत्य सम्बन्ध को निष्पन्न करता है। उसकी कृपा से ही दो आत्माओं का मिलन होता है। दाम्पत्य सम्बन्ध की परिणति सुसन्तान-युक्तता में होती है। योग्य सन्तान से ही माता-पिता का यश अक्षय होता है। माता-पिता के अथक परिश्रम से ही सन्तान में शुभ गुणों का विकास होता है, ज्ञान की प्रभा प्रदीप्त होती और चरित्र की चारुता आती है। इस प्रकार निरन्तर उन्नति करते हुए पति-पत्नी पूर्ण आयु को प्राप्त करें और यशस्वी हों।

टिप्पणी (१) **पोष्या**—पालन करने योग्य। पुष् (पोषण करना) + ण्यत् (य) + टाप् (आ)। (२) **अदात्**—दिया, दिया है। दा (देना, जुहोत्यादि, पर०) + लुङ् प्र० १। (३) **बृहस्पतिः**—ज्ञान का अधिष्ठातृ देवता। बृहत् + पतिः = बृहस्पतिः। बड़ों का पालक, अर्थात् सम्पूर्ण संसार का पालक। (४) **प्रजावति**—हे सन्तान-युक्त। भावी सन्तान को संकेत करते हुए वधू के लिए सम्बोधन है। तू प्रजायुक्त हो। (५) **सं जीव**—सुखपूर्वक जीवित रहो। जीव् (जीवित रहना, भ्वादि, पर०) + लोट् म० १। (६) प्रजावति का पाठभेद—प्रजावती है। तब अर्थ होगा—मुझ पति से सन्तान-युक्त होते हुए तुम सौ वर्ष सुख से जीना।

८. वधू को देवों से दिव्य गुण

सोमो ददद् गन्धर्वाय, गन्धर्वो ददग्नये।
रयिं च पुत्रांश्चादादग्निर्मह्यमथो इमाम् ॥

ऋग्० १०-८५-४१; अथर्व० १४-२-४

अन्वय—सोमः गन्धर्वाय ददत्, गन्धर्वः अग्नये ददत्, अथो अग्निः इमां रयिं च पुत्रान् च मह्यम् अदात् ।

शब्दार्थ—(सोमः) सोम देवता ने, परमात्मा के शान्त एवं शील गुण ने, (गन्धर्वाय) गन्धर्व देवता को, संगीत के देवता को, (ददत्) दिया। (गन्धर्वः) गन्धर्व देव ने, (अग्नये) अग्नि देव को, परमात्मा के तेजस्वी रूप को, (ददत्) दिया। (अथो) और, (अग्निः) अग्नि देवता ने, (इमाम्) इस कन्या को, तथा, (रयिं च पुत्रान् च) धन और पुत्रों को, (मह्यम्) मुझे, (अदात्) दिया।

हिन्दी अर्थ—सोम ने गन्धर्व को दिया और गन्धर्व ने अग्नि को दिया। तदनन्तर अग्नि ने इस कन्या को तथा धन और पुत्रों को मुझे दिया है। (कन्या को विवाह से पूर्व सोम से सुशीलता, गन्धर्व से संगीत या स्वर-माधुर्य और अग्नि से तेजस्विता मिलती है। अग्नि-साक्षिक विवाह होने से अग्नि कन्या को वर के हाथों में देता है।)

Eng. Tr.—Lord soma offered you to Gandharva. Gandharva offered you to the Fire-god. The Fire-god offered you to me along with prosperity and sons.

अनुशीलन—कन्या को विवाह से पूर्व तीन देवों का आशीर्वाद प्राप्त होता है। ये तीन देव हैं—सोम, गन्धर्व और अग्नि। इन तीन देवों के आशीर्वाद से कन्या सुखद दाम्पत्य जीवन व्यतीत करने के योग्य होती है। सोम–सुशीलता, सौम्यता, ऋजुता और विनीतता का देवता है। कन्या में जन्म से लज्जा, विनय और सुशीलता गुणों का समावेश होता है। गन्धर्व–संगीत और स्वर-माधुर्य के देव हैं। कन्याओं के कंठ में बालकों की अपेक्षा अधिक लोच और हल्कापन होता है। कन्याओं के स्वरयंत्र में अधिक लोच होने के कारण उनमें स्वर-माधुर्य अधिक होता है, आवाज पतली होती है और अधिक बोलने की क्षमता होती है। यह गन्धर्व देवों की कृपा

मानी गई है। अग्नि—तेजस्विता, उग्रता, पवित्रता और प्रगति का देव है। कन्याओं में तेजस्विता, उग्रता आदि गुणों के समावेश का कारण अग्नि है। इस प्रकार विवाह से पूर्व कन्याओं में इन तीन देवों का निवास होता है। इसको ही वेद ने कहा है कि—सोम ने गन्धर्व को, गन्धर्व ने अग्नि को दिया। अग्नि ने कन्या, धन और सन्तान ये सभी चीजें वर को दीं। विवाह अग्नि-साक्षिक होता है, अतः अग्नि के द्वारा कन्या-दान वर को हुआ। अग्नि ऐश्वर्य और सन्तान भी वर को देता है। वर में आग्नेय ऊष्मता है और कन्या में सोमीय शीतलता, अतः अग्नि और सोम के संयोग से सन्तान की प्राप्ति होती है। पति-पत्नी के समन्वित पुरुषार्थ से वैभव की भी प्राप्ति होती है।

टिप्पणी—(१) ददत्—दिया। दा (देना, जुहोत्यादि, पर०) + लेट् प्र० १। Sub. है। (२) रयिम्—धन, ऐश्वर्य। (३) अदात्—दिया। दा (देना, जुहोत्यादि, पर०) + लुङ् प्र० १। (४) अथो—और, तदनन्तर। अथ + उ। अव्यय है।

९. दम्पती सोने के रथ पर बैठें

आ तू सुशिप्र दंपते, रथं तिष्ठा हिरण्ययम्।
अध द्युक्षं सचेवहि, सहस्रपादमरुषं स्वस्तिगामनेहसम्॥

ऋग्० ८-६९-१६, अथर्व० २०-९२-१३

अन्वय—हे सुशिप्र दंपते, तु हिरण्ययं रथम् आ तिष्ठ। अध द्युक्षं सहस्रपादम् अरुषं स्वस्तिगाम् अनेहसं सचेवहि।

शब्दार्थ—(हे सुशिप्र) हे सुन्दर हनु और ओष्ठ वाले, सुन्दर मुख वाले, (दंपते) गृह-पति, वर, (तु) तुम तो, (हिरण्ययम्) सोने के, सुवर्णमय, (रथम्) रथ पर, (आ तिष्ठ) बैठो। (अध) तदनन्तर, (द्युक्षम्) दिव्य, तेजोमय, (सहस्रपादम्) अनेक पैर वाले, अनेक चक्र वाले, (अरुषम्) लाल, चमकते हुए, (स्वस्तिगाम्) कल्याणकारी या सुखद गति वाले, (अनेहसम्) निष्पाप या अनुपम, रथ पर, (सचेवहि) हम दोनों मिलें।

हिन्दी अर्थ—हे सुन्दर आकृति वाले वर, तुम सोने के रथ पर बैठो। तदनन्तर दिव्य, अनेक चक्रों वाले, लाल, कल्याणकारी और अनुपम रथ पर हम दोनों (वर-वधू) मिलें।

Eng. Tr.—O handsome bridegroom ! Be seated in the golden chariot. May both of us (husband and wife) meet on the glittering, many-wheeled, red, comfortable and easy-going chariot.

अनुशीलन—विवाह या परिणय का दिन वर-वधू के जीवन का स्वर्णिम दिन होता है। दोनों अपनी महत्त्वकांक्षाओं को लेकर विवाह के लिए स्वीकृति प्रदान करते हैं। विवाह के अवसर पर दोनों को विधिवत् सजाया जाता है। वर को रथ पर बिठाया जाता है और कन्या को भी उस पर जीवनसंगिनी के रूप में बिठाया जाता है। इसका ही इस मंत्र में उल्लेख है। वर-वधू स्वर्ण-जटित रथ पर बैठें। रथ का स्वर्णजटित होना सौभाग्य और सश्रीकता का प्रतीक है। रथ के जो अन्य विशेषण दिए गए हैं, वे रथ की विशेषता बताते हैं। रथ तेजोमय, भव्य और दर्शनीय होना चाहिए। उसमें कई पहिए होने चाहिएँ। रथ उत्तम कोटि का हो, जिससे यात्रा सुखद हो सके। रथ में किसी प्रकार की कोई त्रुटि या न्यूनता न हो। ऐसे रथ पर वर-वधू बैठें और उनका सभी जन स्वागत करें। यात्रा सुखद और निर्विघ्न हो, इसलिए रथ की उत्तमता का उल्लेख किया गया है।

टिप्पणी—(१) तू—तो, तुम तो। तु को छान्दस दीर्घ। (२) सुशिप्र—सुन्दर हनु, ओष्ठ या कपोल वाले, अर्थात् सुन्दर मुख वाले। शिप्र के अर्थ हनु, ओष्ठ और कपोल हैं। (३) दम्पते—हे गृहपति। दम्पति के दो अर्थ हैं–(क) दम्—घर, पति—स्वामी अर्थात् घर का स्वामी। (ख) दम् = जाया, पत्नी, पति—पति, अतः दम्पती का अर्थ है पति-पत्नी। यह जायापती का संक्षिप्त रूप है। (४) हिरण्ययम्—सोने का, सुवर्ण-निर्मित। हिरण्य + मय = हिरण्यय। (४) द्युक्षम्—दिव्य, आकाशीय,

तेजोमय। द्यु—आकाश, क्ष—रहनेवाला। (६) सचेवहि—हम दोनों मिलें। सच् (मिलना, साथ रहना, भ्वादि, आ०) + विधिलिङ् उ० २। (७) सहस्रपादम्—हजारों पैर वाले, हजारों पहिए या चक्र वाले। (८) अरुषम्—लाल, चमकने वाले। (९) स्वस्तिगाम्—स्वस्ति—कल्याण, मंगल, सुख, गाम्—देने वाला या गति वाला। कल्याणकारी या सुखद गति वाले। (१०) अनेहसम्—निष्पाप, पापरहित, अनुपम। अनेहस्—अन् + एहस्। इसके अर्थ हैं—अनुपम, निष्पाप, सर्वदा।

१०. पत्नी का पतिगृह से सम्बन्ध

अर्यमणं यजामहे, सुबन्धुं पतिवेदनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनात्, प्रेतो मुञ्चामि नामुतः॥

अथर्व० १४-१-१७

अन्वय—सुबन्धुं पतिवेदनम् अर्यमणं यजामहे। उर्वारुकं बन्धनात् इव इतः प्र मुञ्चामि, न अमुतः॥

शब्दार्थ—(सुबन्धुम्) सुन्दर बन्धु, (पतिवेदनम्) पति को प्राप्त कराने वाले, (अर्यमणम्) आर्यमा देव को, उदार परमात्मा के लिए, (यजामहे) यज्ञ करते हैं। (उर्वारुकम्) खरबूजा या ककड़ी, (बन्धनात् इव) जैसे बेल के बन्धन से मुक्त होता है, उसी प्रकार इस कन्या को, (इतः) इधर से अर्थात् पितृकुल से, (प्र मुञ्चामि) पृथक् करता हूँ। (न अमुतः) उधर से नहीं, अर्थात् पतिकुल से नहीं। भाव यह है कि विवाह के बाद कन्या पितृकुल से पृथक् होती है और पतिकुल से सम्बद्ध हो जाती है।

हिन्दी अर्थ—श्रेष्ठ बन्धु एवं पति को प्राप्त कराने वाले, उदार परमात्मा के लिए हम यज्ञ करते हैं। जिस प्रकार खरबूजा बेल के बन्धन से मुक्त होता है, उसी प्रकार कन्या पितृकुल से मुक्त होती है और पतिकुल से सम्बद्ध होती है।

Eng. Tr.—We offer oblations to the god Aryaman (the god of hospitality), who is the well-wisher and procures husbands to us. A bride leaves the abode of her parents, as the fruit of the gourd, and is tied to the family of her husband.

अनुशीलन—वैवाहिक सम्बन्ध को सफलता के लिए अर्यमा देव के प्रति कृतज्ञता प्रकट की गई है। अर्यमन् शब्द न्यायकारी एवं दयालु परमात्मा के लिए है। वही वर-वधू के विवाह-सम्बन्ध और भविष्य का निर्णायक है। दाम्पत्य जीवन की सफलता भी परमात्मा की कृपा पर निर्भर है। ब्राह्मण ग्रन्थों के अनुसार अर्यमन् के अर्थ सूर्य, यज्ञ और दाता हैं। 'यज्ञो वा अर्यमा' तैत्ति० ब्रा० २-३-५-४; 'अर्यमेति तमाहुर्यो ददाति' तैत्ति० ब्रा० १-१-२-४; 'उपरिष्टाद् अर्यम्णः पन्थाः' शत० ब्रा० ५-५-१-१२। यहां दयालु एवं दाता परमात्मा से अभिप्राय है। अतः अर्यमा को सुन्दर बन्धु और पति को प्राप्त कराने वाला कहा गया है।

उत्तरार्ध में यह भाव प्रकट किया गया है कि विवाह के पश्चात् कन्या अपने पितृकुल से मुक्त होती है और उसका पतिकुल से सम्बन्ध जुड़ जाता है। इसके लिए उपमा दी गयी है कि जिस प्रकार खरबूजा (या ककड़ी) अपनी बेल से टूटकर अन्यत्र चला जाता है और उसका अन्य से सम्बन्ध हो जाता है, उसी प्रकार विवाह के पश्चात् कन्या भी पति-कुल की सम्पत्ति हो जाती है। वह पतिगृह की स्वामिनी होती है और वहाँ का उत्तरदायित्व उस पर आ पड़ता है।

टिप्पणी—(१) अर्यमणम्—अर्यमन् न्यायकारी और दयालु परमात्मा का नाम है। अर्यमन के अर्थ—सूर्य देवता, घनिष्ट मित्र, साथी अर्थ भी हैं। अर्यमन् + द्वि० १) (२) यजामहे—हम यज्ञ करते हैं। यज् (यज्ञ करना, भ्वादि० आ०) + लट् उ० ३। (३) सुबन्धुम्—सुन्दर या श्रेष्ठ बन्धु। (४) पतिवेदनम्—पति को प्राप्त कराने वाले। वेदन—प्राप्त कराना। विद् (पाना) + अन। (५) उर्वारुकम्—उर्वारुक के अर्थ हैं—खरबूजा, ककड़ी,

कद्दू, पेठा। ये बेल से अलग हो जाते हैं। (६) इतः—इधर से अर्थात् पिता के घर से, पितृकुल से। (७) मुञ्चामि—मुक्त करता हूँ। अलग करता हूँ। मुच् (छोड़ना, तुदादि, पर०) + लट् उ० १। (८) न अमुतः—उधर से नहीं, अर्थात् पतिकुल से नहीं। अर्थात् कन्या को पतिकुल से सम्बद्ध करते हैं।

११. वधू को सजाना

चित्तिरा उपबर्हणं, चक्षुरा अभ्यञ्जनम्।
द्यौर्भूमिः कोश आसीद्, यदयात् सूर्या पतिम्॥

ऋग्० १०-८५-७; अथर्व० १४-१-६

अन्वय—यत् सूर्या पतिम् अयात्, (तदा) चित्तिः उपबर्हणम् आः। चक्षुः अभ्यञ्जनम् आः। द्यौः भूमिः कोशः आसीत्।

शब्दार्थ—(यत्) जब, (सूर्या) सूर्य की पुत्री, सावित्री, (पतिम्) अपने पति अर्थात् सोम के पास, (अयात्) गई, (तदा) तब, (चित्तिः) संकल्प, विचार ही, (उपबर्हणम्) तकिया, उपधान, (आः) था। (चक्षुः) आँख ही, (अभ्यञ्जनम्) अंजन, (आः) था। (द्यौ): द्युलोक, (भूमिः) पृथ्वी, (कोशः) कोश, खजाना, (आसीत्) था।

हिन्दी अर्थ—जब सूर्या (सूर्य की पुत्री, सावित्री) अपने पति (सोम) के पास गई, उस समय उसके विचार ही उसका तकिया था और उसके नेत्र ही अंजन थे। उस समय द्युलोक और पृथ्वी उसके खजाने के तुल्य थे।

Eng. Tr.—When Suryā (the daughter of the sun) went to her husband (Soma), she had good thoughts as her pillows, hereeyes as ointment and the heaven and earth as her treasure.

अनुशीलन—इस मंत्र में निर्देश किया गया है कि विवाह के समय वधू को विधिवत् सजाया जाता है और विदाई के समय उसकी सुविधा का पूरा ध्यान रखा जाता है। वधू के साथ उसके अलंकरण का सामान भी जाता है और आवश्यक वस्त्र, बिस्तर आदि भी उसके साथ होना चाहिए। वधू के साथ आवश्यक धन की भी व्यवस्था होनी चाहिए। अतएव मंत्र में सूर्य की पुत्री सूर्या या सावित्री के विवाह का वर्णन है कि उसकी विदाई के समय सूर्या के उच्च विचार ही उसके तकिए के रूप में थे। उसके सुन्दर नेत्र ही उसकी आँखों का अंजन था और द्युलोक एवं पृथिवी उसके अक्षय कोष थे। स्त्री की चेतना, उच्च विचार और उच्च संकल्प उसके सबसे बड़े उपकरण हैं, जिनके सहारे वह स्थिर हो सकती है। स्त्री का सौन्दर्य उसका सबसे बड़ा आभूषण है। नेत्रों की सुन्दरता उसके लिए अंजन है। ईश्वर-विश्वास और आस्तिकता की भावना स्त्री का सबसे बड़ा खजाना है। अन्य कोष नष्ट हो सकते हैं, पर आस्तिकता का कोष अनश्वर है। ईश्वर-विश्वास उसे सदा सुखी रखेगा। जहाँ ईश्वर-विश्वास और पुरुषार्थ हैं, वहाँ धन की कभी कमी नहीं होगी। पृथिवी और आकाश उसे सदा वैभवशाली बनाए रखेंगे।

टिप्पणी (१) **चित्तिः**—संकल्प, विचार, मन, ज्ञान। चित्+ति। (२) **आः**—था। आसीत् का संक्षिप्त रूप है। अस् (होना, अदादि, पर०) +लङ् प्र० १। (३) **उपबर्हणम्**—तकिया, उपधान, शिरोधान। (४) **आसीत्**—था। अस् (होना, अदादि, पर०)+लङ् प्र० १। (५) **यत्**—जब। यदा के अर्थ में है। (६) **अयात्**—गई। या (जाना, अदादि, पर०)+लङ् प्र० १। (७) **सूर्या**—सूर्य की पुत्री का नाम सूर्या है। इसको ही सावित्री कहते हैं। (८) **पतिम्**—सूर्या का पति सोम है। सूर्या का सोम से विवाह हुआ। (देखो—ऐतरेय ब्रा० ४—७ और कौषीतकि ब्राह्मण १८—१)

१२. नवयौवन और सश्लोकता

कस्ये मृजाना अति यन्ति रिप्रम्
आयुर्दधानाः प्रतरं नवीयः ।
आप्यायमानाः प्रजया धनेना-
ऽध स्याम सुरभयो गृहेषु ॥

अथर्व० १८-३-१७

अन्वय—कस्ये मृजानाः प्रतरं नवीयः आयुः दधानाः रिप्रम् अति यन्ति । अध प्रजया धनेन आप्यायमानाः गृहेषु सुरभयः स्याम ।

शब्दार्थ—(कस्ये) ज्ञान में, प्रगति में, (मृजानाः) अपने आपको पवित्र करते हुए, (प्रतरम्) श्रेष्ठ, उत्कृष्ट, (नवीयः) नवीनतर, अत्यन्त नवीन, (आयुः) आयु, जीवन को, (दधानाः) धारण करते हुए, (रिप्रम्) अपवित्रता को, पाप को, (अति यन्ति) अतिक्रमण करते हैं, दूर करते हैं । (अध) और, तदनन्तर, (प्रजया) सन्तान से, (धनेन) धन से, (आप्यायमानाः) बढ़ते हुए, (गृहेषु) अपने घरों में, (सुरभयः) सुगन्धित, प्रशंसित, (स्याम) होवें ।

हिन्दी अर्थ—हम ज्ञान से अपने आपको पवित्र करते हुए, उत्कृष्ट एवं नवीनतर जीवन को धारण करते हुए, पापों को दूर करते हैं । हम सन्तान और धन से समृद्ध होते हुए अपने घरों में (यश से) सुगन्धित हों ।

Eng. Tr.—We purifying ourselves by knowledge and adopting the latest mode of life, wash away our sins. May we be comfortable in our houses, by acquiring wealth and progeny.

अनुशीलन—सुखी गृहस्थ-जीवन के लिए जीवन में नवीन प्रेरणा चाहिए, नवीन उत्साह चाहिए और नव-यौवन चाहिए । इसकी पूर्ति के

लिए जीवन में ज्ञान का संचार चाहिए। जहाँ ज्ञान है, वहाँ प्रगति है, संचार है, नवीनता है, उल्लास है, और आशा का नवीन वातावरण है। अतएव मन्त्र में निर्देश किया गया है कि दम्पती ज्ञान के मार्ग में प्रगति करें। इससे उनका जीवन पवित्र होगा और नव-स्फूर्ति आएगी। इसको ही वेद ने नवीन और उत्कृष्ट आयु बताया है। जीवन की नवीनता क्या है? उसमें उत्कृष्टता क्या है? इसका स्पष्ट उत्तर है कि जीवन में ज्ञान के उत्कर्ष के द्वारा आशा का संचार। जहाँ आशा है, वहीं उत्कर्ष है और प्रगति है। यह आशा का संचार ही जीवन को नई दिशा देता है, नव-यौवन देता है, सश्रीकता देता है और मन में उल्लास का भाव जागृत करता है। ज्ञान आधार है, आशा उसका फल है। उसके द्वारा ही परिवार में श्री-वृद्धि है, सन्तान की समृद्धि है और पारिवारिक कुशलता है। अतएव मन्त्र में कहा गया है कि ज्ञान और उत्साह के वातावरण से परिवार में सुगन्ध रहती है। इसका अभिप्राय यह है कि यदि दम्पती में ज्ञान और उत्साह है तो वहाँ सुख और शान्ति की स्थापना होती है। यही है परिवार में सुगन्धित वातावरण और सौरभ का संचार।

टिप्पणी—(१) कस्ये—ज्ञान में। कस् (जाना, विकसित होना भ्वादि) + य। कस्य + स० १। कस्य—ज्ञान, प्रगति, विकास, प्रकाश। (२) मृजानाः—शुद्ध होते हुए। मृज् (साफ करना, अदादि, आ०) + लट् >शानच् (आन) + प्र० ३। ज्ञान से अपने को शुद्ध करते हुए। (३) अति यन्ति—पार करते हैं, दूर करते हैं। यन्ति—इ (जाना, अदादि, पर०) + लट् प्र० ३। (४) रिप्रम्—पाप, मैल, अशुद्धि, अपवित्रता। (५) दधानाः—धारण करते हुए। धा (रखना, जुहोत्यादि, आ०) + लट्> शानच् (आन) + प्र० ३। (६) नवीयः—नवीनतर, अधिक नए। नव + ईयस्। (७) आप्यायमानाः—बढ़ते हुए, समृद्ध होते हुए। प्यै (बढ़ना, भ्वादि, आ०) + लट्>शानच् (आन)+प्र० ३। बीच में म् का आगम। (८) स्याम—होवें। अस् (होना, अदादि पर०) + विधिलिङ् उ० ३। (९) सुरभयः—सुगन्धित, श्लाघनीय गुणों से युक्त प्रशंसित।

१३. पत्नी सुन्दर वस्त्र पहने

या अकृन्तन्नवयन् याश्च तत्निरे
या देवीरन्ताँ अभितोऽददन्त ।
तास्त्वा जरसे सं व्ययन्तु
आयुष्मतीदं परि धत्स्व वासः ॥

अथर्व० १४-१-४५

अन्वय—यः देवीः अकृन्तन्, (याः) अवयन्, याः च तत्निरे, याः अभितः अन्तान् अददन्त । ताः त्वा जरसे सं व्ययन्तु । आयुष्मती इदं वासः परिधत्स्व ।

शब्दार्थ—(याः देवीः) जिन देवियों ने, (अकृन्तन्) सूत काता है, (याः अवयन्) जिन्होंने बुना है, (याः च) और जिन्होंने, (तत्निरे) ताना ताना है, (याः) जिन्होंने, (अभितः) चारों ओर से, (अन्तान्) छोरों को, अन्तिम भागों को, (अददन्त) ठीक किया है, (ताः) वे, (त्वा) तेरे लिए, (जरसे) वृद्धावस्था तक के लिए, (व्यन्तु) बुनें । (आयुष्मती) तू दीर्घ आयु होकर, (इदम्) इस, (वासः) वस्त्र को, (परि धत्स्व) धारण कर, पहनना ।

हिन्दी अर्थ—जिन देवियों ने सूत काता है, जिन्होंने बुना है, जिन्होंने ताना ताना है, जिन्होंने चारों ओर से छोरों को ठीक किया है, तेरे लिए वृद्धावस्था तक के लिए वस्त्र बुनें । दीर्घायु तू इस वस्त्र को धारण कर ।

Eng. Tr.—Let the ladies, who have spun, knitted, woven and mended the borders. prepare clothes for you till the old age. O Bride ! be long-living and put them on.

अनुशीलन—इस मन्त्र में हाथ से बुने हुए वस्त्रों का महत्त्व प्रतिपादित किया गया है । माताएँ बच्चों एवं युवकों के लिए वस्त्र बुनती हैं । इसके द्वारा दो बातों की ओर ध्यान आकृष्ट किया गया है । एक है—स्वदेशी की भावना जागृत करना । स्वनिर्मित वस्त्र में जो स्नेह और आत्मीयता की

भावना रहती है, वह यन्त्र-निर्मित या विदेश आदि से आए हुए वस्त्रों में नहीं होती है। दूसरा लाभ यह है कि इससे परिवार की स्त्रियों में आत्म-निर्भरता की भावना उत्पन्न होती है। परिवार की आवश्यक सामग्री में वस्त्रों का स्थान उच्च है। इससे गृह-शिल्प, गृह-कौशल और गृह-उद्योग की प्रवृत्ति को बहुत बल मिलता है। मंत्र के द्वारा स्वदेशी की भावना को जागृत करना अभिप्रेत है। स्वदेशी की भावना एक बार बद्धमूल होने पर जीवन में सादगी, स्वच्छता और श्रम के प्रति अभिरुचि को जागृत करती है। मंत्र का आदेश है कि जीवन भर इस भावना को जागृत रखें।

टिप्पणी--(१) अकृन्तन्--सूत काता। कृत् (काटना, सूत कातना, तुदादि, पर०) + लङ् प्र० ३। (२) अवयन्--बुना। वे (बुनना, भ्वादि, पर०) + लङ् प्र० ३। (३) तत्निरे--फैलाया, ताना फैलाया। तन् (फैलाना, तनादि, आ०) + लिट् प्र० ३। (४) अन्तान्—छोरों को, किनारों को। (५) अददन्त—संभाला, ठीक किया। दा (देना, जुहोत्यादि, आ०) + लङ् प्र० ३। (६) जरसे—वृद्धावस्था तक के लिए। जरा + च० १। जरा को जरस्। (७) सं व्ययन्तु—बुनें, वस्त्रादि से लपेट कर रखें। व्ये (ढकना, लपेटना, भ्वादि, पर०) + लोट् प्र० ३। (८) परि धत्स्व—धारण करो, पहनो। परि + धा (धारण करना, जुहोत्यादि, आ०) + लोट् म० १।

१४. वधू सौभाग्यवती हो

सुमङ्गलीरियं वधू-रिमां समेत पश्यत।
सौभाग्यमस्यै दत्त्वायाऽथास्तं वि परेतन ॥

ऋग्० १०-८५-३३; अथर्व० १४-२-२८

अन्वय—इयं वधूः सुमङ्गलीः। समेत, इमां पश्यत। अस्यै सौभाग्यं दत्त्वाय, अथ अस्तं वि परेतन ॥

शब्दार्थ—(इयं वधूः) यह वधू, (सुमङ्गलीः) सुन्दर मंगलयुक्त है। (समेत) सब एकत्र हों, (इमां) इस वधू को, (पश्यत) देखें। (अस्यै) इस वधू को, (सौभाग्यम्) सौभाग्य का आशीर्वाद, (दत्वाय) देकर, (अथ) तदनन्तर, (अस्तं) अपने घर को, (वि परेतन) जावें, लौटकर जावें।

हिन्दी अर्थ—यह नव-वधू सुन्दर मंगल-युक्त है। सभी लोग आवें और इसको देखें। इस नववधू को सौभाग्य का आशीर्वाद देकर अपने स्थानों को जावें।

Eng. Tr.—This bride is very fortunate. O Gentlemen ! Come and look at her. Bless her with fortune and depart to your houses.

अनुशीलन—विवाह की विधि में सुमंगलीकरण का बहुत महत्त्व है। वर स्त्री के सौभाग्यवती होने के प्रतीक रूप में उसकी मांग में सिन्दूर-दान करता है। स्त्री की मांग में सिन्दूर का होना उसके सौभाग्य का सूचक है। विवाह में प्रदक्षिणा, लाजाहोम और सप्तपदी की विधि के बाद अन्त में सुमंगलीकरण की विधि की जाती है। सुमंगलीकरण के द्वारा उपस्थित जन-समूह को भी सूचित किया जाता है कि वधू अब सौभाग्यवती हुई है। इसके साथ ही उपस्थित जनों से आशीर्वाद की आकांक्षा की जाती है कि वे वर-वधू के सुखद भविष्य के लिए उन्हें आशीर्वाद दें।

जीवन में आशीर्वाद का विशेष महत्त्व है। आशीर्वचन हार्दिक भावों की वाचिक अभिव्यक्ति है। जीवन की अनुभूति है कि अपने हितैषियों, वृद्धों, गुरुजनों आदि के आशीर्वचनों में शक्ति होती है। उनमें कार्य को सफल बनाने की अद्भुत प्रेरणा होती है। इन आशीर्वचनों से दम्पती को प्रेरणा मिलती है कि वे अपने जीवन को उच्च बनाते हुए अपना भविष्य उज्ज्वल करें। साथ ही अपने माता-पिता आदि आदरणीय व्यक्तियों की भावनाओं एवं आकांक्षाओं को पूर्ण करें।

टिप्पणी—(१) सुमङ्गलीः—सुन्दर मंगलयुक्त। सिन्दूर-दान आदि

से सुहागिन के लक्षणों से युक्त। (२) समेत—एकत्र हों, सभी इकट्ठे हों, सभी आवें। सम्+आ+इ (जाना, अदादि, पर०)+लोट् म० ३। (३) पश्यत—देखें। दृश् (पश्य्, देखना, भ्वादि; पर०)+लोट् म० ३। दृश् को पश्य्। (४) सौभाग्यम्—सौभाग्य का आशीर्वाद। वधू सदा सुहागिन रहे, यह आशीर्वाद। सुभग+ष्यञ् (य)। (५) अस्यै—इसको, इस वधू को। इदम् (स्त्री०)+च० १। इदम् को अ। (६) दत्त्वाय—देकर। दा (देना)+त्वाय। यहां त्वा के स्थान त्वाय प्रत्यय है। (७) अस्तम्—घर को। वेद में अस्त का अर्थ घर है। (८) वि परेतन—जाइए, लौटकर जाइए। वि+परा+इ (जाना, अदादि, पर०) लोट् म० ३। त के स्थान पर तन प्रत्यय है। पाठभेद—अथर्व० में 'दत्त्वा दौर्भाग्यैर्वि परेतन' पाठ है। इसका अर्थ है—सौभाग्य का आशीर्वाद देकर दुर्भाग्य को दूर करते हुए जाइए।

१५. स्त्री सदा सौभाग्यवती रहे

इमा नारीरविधवाः सुपत्नी-
　　राञ्जनेन सर्पिषा सं विशन्तु।
अनश्रवोऽनमीवाः सुरत्ना
　　आ रोहन्तु जनयो योनिमग्रे॥

ऋग्० १०–१८–७; अथर्व० १२-२-३१

अन्वय—इमाः नारीः अविधवाः सुपत्नीः (सन्ति)। आञ्जनेन सर्पिषा सं विशन्तु। अनश्रवः अनमीवाः सुरत्नाः जनयः अग्ने योनिम् आ रोहन्तु।

शब्दार्थ—(इमाः) ये, (नारीः) स्त्रियां, (अविधवाः) वैधव्यरहित, सधवा, (सुपत्नीः) सुन्दर पत्नियां हैं। (आञ्जनेन) अंजन से, (सर्पिषा) घृत से युक्त होकर, (सं विशन्तु) गृह में प्रवेश करें। (अनश्रवः) अश्रुरहित, शोक या चिन्ता से रहित, (अनमीवाः) रोग-रहित, (सुरत्नाः) सुन्दर रत्नों

को धारण किए हुए, (जनयः) ये पत्नियां, (अग्रे) सर्वप्रथम, (योनिम्) यज्ञशाला में, (आरोहन्तु) चढ़ें, प्रवेश करें।

हिन्दी अर्थ—ये स्त्रियां सधवा और सुन्दर पत्नियाँ हैं। ये (आँखों में) अंजन और (शरीर पर) घृत लगाकर (घर में) प्रवेश करें। शोक-रहित, नीरोग और सुन्दर रत्नों से युक्त ये पत्नियां सर्वप्रथम यज्ञशाला में प्रवेश करें।

Eng. Tr.—These ladies are good wives and enjoy the company of their husbands. These, having painted their eyelashes with black pigment and anointing their body, should enter the house. These wives, who are cheerful, healthy and adorned with ornaments, should first enter the sacrificial-hall.

अनुशीलन—इस मंत्र में सधवा स्त्रियों के कुछ कर्तव्यों का निर्देश है। सधवा स्त्रियों के लिए आवश्यक है कि वे प्रसन्नचित्त रहें, नीरोग रहें, अपने शारीरिक सौन्दर्य का ध्यान रखें, आभूषण आदि पहनें तथा धार्मिक कृत्यों में अग्रसर रहें। गृहस्थरूपी रथ का एक चक्र पुरुष है और दूसरा स्त्री। जिस प्रकार पुरुष के कतिपय उत्तरदायित्व हैं, उसी प्रथम स्त्री के लिए भी कुछ नियम निर्धारित हैं। स्त्री की प्रसन्नता, नीरोगता, शारीरिक सौन्दर्य और कर्मठता गृहस्थ जीवन के लिए अमूल्य निधि है। स्त्री का जीवन पवित्र, नियमित और सन्तुलित होगा, तभी वह प्रसन्नचित्त और नीरोग रह सकेगी। अतः वेद का आदेश है कि वह अपने शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य पर पूरा ध्यान दे।

मंत्र के अन्तिम पद में वेद का आदेश है कि धार्मिक कृत्यों में, मुख्यरूप से यज्ञ-कार्य में, स्त्रियाँ आगे रहें। उनका कर्तव्य है कि वे यज्ञ में सर्वप्रथम पहुँचें, यज्ञ करें और यज्ञ से सम्बद्ध कार्यों के सम्पादन में अपना सहयोग दें।

टिप्पणी—(१) अविधवाः—वैधव्यरहित अर्थात् सधवा, पतियुक्त रहें। (२) आञ्जनेन—आँखों में अंजन लगावें। (३) सर्पिषा—शरीर पर घी लगावें। सर्पिष् (घी) + तृ० १। (४) सं विशन्तु—प्रवेश करें। घर में आवें। विश् (प्रवेश करना, तुदादि, पर०) + लोट् प्र० ३। (५) अनश्रवः—अश्रु-रहित अर्थात् शोक और चिन्ता से रहित। अन् + अश्रु + प्र० ३। (६) अनमीवाः—रोगरहित। अन् + अमीव (रोग) + प्र० ३। (७) सुरत्नाः—सुन्दर रत्नों से युक्त, आभूषणों से अलंकृत। (८) आ रोहन्तु—चढ़ें, प्रवेश करें। आ रुह् (चढ़ना, भ्वादि, पर०) + लोट् प्र० ३। (९) जनयः—पत्नियाँ। जनि—पत्नी, स्त्री। (१०) योनिम्—यज्ञ-शाला, वेदी। योनि के अर्थ हैं—घर, यज्ञवेदी, आश्रम, गर्भाशय आदि। (११) पाठभेद—अथर्ववेद में 'सं विशन्तु' के स्थान पर 'सं स्पृशन्ताम्' पाठ है। इसका अर्थ होगा—लगावें। अंजन और घी को लगावें।

१६. स्त्री सौभाग्यवती और कर्मठ हो

न मत् स्त्री सुभसत्तरा, न सुयाशुतरा भुवत्।
न मत् प्रतिच्यवीयसी, न सक्थ्युद्यमीयसी,
विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः॥

ऋग्० १०-८६-६; अथर्व० २०-१२६-६

अन्वय—न स्त्री मत् सुभसत्तरा, न सुयाशुतरा भुवत्। न मत् प्रतिच्यवीयसी, न सक्थी उद्यमीयसी। इन्द्रः विश्वस्मात् उत्तरः।

शब्दार्थ—(न) नहीं, (स्त्री) कोई स्त्री, (मत्) मुझसे, (सुभसत्तरा) अधिक सौभाग्यशालिनी है। (न) नहीं, (सुयाशुतरा) अधिक सुख देने वाली (भुवत्) है। (न) नहीं, (मत्) मुझसे, (प्रतिच्यवीयसी) कोई अधिक सरस है। (न) नहीं, (सक्थी) सुन्दर जंघा वाली, (उद्यमीयसी) अधिक उद्यमी या परिश्रमी है। (इन्द्रः) इन्द्र, परमात्मा, (विश्वस्मात्) सबसे, (उत्तरः) श्रेष्ठ है।

हिन्दी अर्थ—कोई स्त्री मुझसे अधिक सौभाग्यशालिनी नहीं है। न कोई मुझसे अधिक सुख देने वाली है। न कोई मुझसे अधिक सरस है और न कोई मुझसे अधिक सुन्दर अंगों वाली तथा अधिक परिश्रमी है। परमात्मा सबसे श्रेष्ठ है।

Eng. Tr.—There is no lady more fortunate, more pleasing, more impassioned, more beautiful and more laborious than me. The Lord Indra is superior to all.

अनुशीलन—इस मन्त्र में स्त्री के कतिपय गुणों का उल्लेख है, जिनके द्वारा वह अपने जीवन को सुखी बनाते हुए पति को सदा प्रसन्न रख सकती है। यह इन्द्राणी की इन्द्र के प्रति उक्ति है। इन्द्र जीवात्मा है और इन्द्राणी या शची बुद्धि है। रूपक के द्वारा दोनों में पति-पत्नी का भाव प्रदर्शित किया गया है और गृहस्थ-धर्म की शिक्षा दी गई है। इन्द्राणी ने अपने जिन गुणों का वर्णन किया है, वे हैं—सौभाग्यवती होना, पति को प्रसन्न रखना, जीवन में सरसता, सौन्दर्य, पुरुषार्थ और पति-परायण होना। स्त्री के सौभाग्य का प्रमुख साधन है—पतिपरायण होना और पति का हृदय जीतना। अतएव मन्त्र में इन्द्राणी इन्द्र को—'विश्वस्माद् इन्द्र उत्तरः' कहती है। अपने पति को सर्वोत्कृष्ट मानने से स्त्री का गौरव बढ़ाता है और जीवन में कभी भी हीनता की भावना नहीं आने पाती। स्त्री में यदि समर्पण की भावना है तो पति स्वयं उसके वशीभूत होगा। इसका ही मन्त्र में सर्वप्रथम निर्देश है। इसको ही कालिदास ने 'प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारुता' (कुमारसंभव ५-१) के द्वारा कहा है। पति की प्रसन्नता स्त्री के सौन्दर्य का चरम लक्ष्य है।

मन्त्र में आदर्श नारी होने के लिए आवश्यक बताया गया है कि वह सरस हो, विनम्र हो। सरलता, सरसता, मृदुता और प्रसन्नचित्तता जहाँ होगी, वहां दाम्पत्य जीवन स्वयं सुखमय होगा। स्त्री का शारीरिक सौन्दर्य पति को आकृष्ट करने में विशेष सहायक होता है, अतः स्त्री को अपने शारीरिक

सौन्दर्य का भी पूरा ध्यान रखना चाहिए। स्त्री का अन्य गुण है—श्रमशीलता। परिश्रमी और कर्मठ स्त्री ही परिवार को सुखमय बना सकती है। अतः पुरुषार्थशीलता एवं कठिन परिश्रम स्त्री का एक स्वाभाविक गुण होना चाहिए। उक्त गुणों के समन्वय से ही स्त्री आदर्श गृहिणी हो सकती है।

टिप्पणी—(१) **सुभसत्तरा**—अधिक सौभाग्यवती। सु + भसत् + तर + आ। भसत्—कटिप्रदेश, जाँघ। (२) **सुयाशुतरा**—अधिक सुख देने वाली। सु + याशु + तरा। याशु—सुख, आनन्द। (३) **प्रतिच्यवीयसी**—अधिक सरस या रसीली। प्रति + च्यव (च्यु) + ईयस् + ई। च्यु–हिलना, प्रेरणा देना, गिरना, गतिशील होना। (४) **सक्थी**—सुन्दर जांघ वाली, सुन्दर अवयवों वाली। (५) **उद्यमीयसी**—अधिक उद्यमी या परिश्रमी। उद्यम + ईयस् + ई। अधिक अर्थ में ईयस् है। (६) **उत्तरः**—अधिक उत्कृष्ट, श्रेष्ठ। उत् + तर। (७) **भुवत्**—है। भू (होना, भ्वादि, पर०) + लेट् प्र० १।

१७. स्त्री-कामना, पति दीर्घायु हो

इयं नार्युप ब्रूते, पूल्यान्यावपन्तिका।
दीर्घायुरस्तु मे पतिर्जीवाति शरदः शतम्॥

अथर्व० १४-२-६३

अन्वय—इयं नारी पूल्यानि आवपन्तिका उप ब्रूते। मे पतिः दीर्घायुः अस्तु, शतं शरदः जीवाति।

शब्दार्थ—(इयं नारी) यह स्त्री, (पूल्यानि) लाजा, लावा या खील, (आवपन्तिका) डालती हुई, आहुति देती हुई, (उप ब्रूते) कहती है कि, (मे) मेरा, (पतिः) पति, (दीर्घायुः) दीर्घायु, (अस्तु) होवे। (शतम्) सौ, (शरदः) वर्ष, (जीवाति) जीवित रहे।

हिन्दी अर्थ—यह नारी (वधू) खील की आहुति देती हुई कहती है कि मेरा पति दीर्घायु हो और सौ वर्ष जीवित रहे।

Eng. Tr.—This bride offering fried grains to the fire prays for longevity and a hundred-year life to her husband.

अनुशीलन—यह मंत्र लाजाहुति से संबद्ध है। विवाह के अवसर पर वधू लाजा (खील) की आहुति देते हुए अपनी हार्दिक भावना अभिव्यक्त करती है कि—मेरा पति दीर्घायु हो और सौ वर्ष जीवित रहे। विवाह के के पश्चात् वर ही उसके जीवन का सर्वोत्तम अंग है। पति की श्री-वृद्धि, गौरव-वृद्धि, यश की वृद्धि, स्त्री के लिए सर्वोत्तम अभीष्ट है। पति का दीर्घायु होना, उसके सौभाग्य के लिए अत्यन्त आवश्यक है। स्त्री की एक सामान्य कामना होती है कि पति के जीवनकाल में ही वह दिवंगत हो। इस जीवन में उसे वैधव्य का दुःख न देखना पड़े। अतएव वधू की यह हार्दिक प्रार्थना है कि उसका पति दीर्घ आयु वाला हो और पूर्ण जीवन प्राप्त करे। इससे पत्नी का जीवन भी सुखमय हो सकेगा।

टिप्पणी—(१) उप ब्रूते—कहती है। ब्रू (बोलना, कहना, अदादि, आ०) + लट् प्र० १। (२) पूल्यानि—खील, लावा, लाजा। धान की खील। (३) आवपन्तिका—डालती हुई, आहुति देती हुई। आ + वप् (बोना, डालना, भ्वादि, पर०) + शतृ (अत्) + ई + क + टाप् (आ)। (४) जीवाति—जीवित रहे। जीव् (जीवित रहना, भ्वादि पर०) + लेट् प्र० १। (५) शरदः—वर्ष। शरद् + ष० १।

१८. गृहिणी ही घर है

जायेदस्तं मघवन् त्सेदु योनिः
तदित् त्वा युक्ता हरयो वहन्तु।
यदा कदा च सुनवाम सोमम्
अग्निष्ट्वा दूतो धन्वात्यच्छ॥

ऋग्० ३-५३-४

अन्वय—हे मघवन्, जाया इत् अस्तम् । उ सा इत् योनिः । तत् इत् युक्ताः हरयः त्वा वहन्तु । यदा कदा च सोमं सुनवाम, दूतः अग्निः त्वा अच्छ धन्वाति ।

शब्दार्थ—हे (मघवन्) हे ऐश्वर्ययुक्त इन्द्र, (जाया इत्) पत्नी ही, (अस्तम्) घर है । (उ) और, (सा इत्) वही, (योनिः) सन्तानोत्पादन का आधार है, कुलवृद्धि का कारण है । (तत् इत्) उसी घर में, वहीं, (युक्ताः) जुते हुए, (हरयः) घोड़े, (त्वा) तुझको , (वहन्तु) ले जावें । (यदा कदा च) और जब कभी, (सोमम्) सोम रस को, (सुनवाम) हम निकालते हैं, निकालेंगे । (दूतः अग्निः) तब तुम्हारा दूत अग्नि, (त्वा) तेरे, (अच्छ) पास, (धन्वाति) दौड़कर जाएगा ।

हिन्दी अर्थ—हे इन्द्र, पत्नी ही घर है । वहीं कुलवृद्धि का आधार है । उसी घर में जुते हुए घोड़े तुझे लावें । हम जब कभी सोमरस निकालेंगे, तभी तुम्हारा दूत अग्नि तुम्हारे पास जाएगा ।

Eng. Tr.---O Indra ! the wife is the main force of the house. She is the base of family's prosperity. May the horses lead you to that house. Whenever we press the Soma-creeper, your messenger fire will fetch you.

अनुशीलन—गृहस्थ का आधार क्या है ? उसका मूल क्या है ? उसके मूल में क्या पदार्थ डालने की आवश्यकता है ? इन बातों का उत्तर इस मन्त्र में दिया गया है । गृहस्थ का आधार पत्नी है । गृह की सुरक्षा, व्यवस्था, संचालन, निरीक्षण और समुन्नयन का पूरा उत्तरदायित्व पत्नी पर होता है । अतः मन्त्र में कहा गया है कि—'जाया इत् अस्तम्' पत्नी ही घर है । संस्कृत में सुभाषित के रूप में इसी भाव को कहा गया है—'न गृहं गृहमित्याहुः, गृहिणी गृहमुच्यते' घर को घर नहीं कहते हैं, अपितु गृहिणी को ही गृह कहते हैं । अतएव हिन्दी में लोकोक्ति है कि—'बिन घरनी घर भूत का डेरा' गृहिणी के बिना घर भूत-निवास हो जाता है । मन्त्र में पत्नी

के कर्तव्य और महत्व दोनों पर प्रकाश डाला गया है। पत्नी गृहस्थरूपी वृक्ष का मूल है। वह परिवार की समृद्धि का आधार है। वह सुख की मूल है, सन्तानोत्पत्ति का आधार है और गृह की सश्रीकता का कारण है। अतएव स्त्री को योनि या मूल कहा गया है।

गृह की सश्रीकता स्त्री से है। परन्तु वह सश्रीकता कहाँ से आती है? इसका उत्तर दिया गया है कि सश्रीकता सोम या सोम्यगुण से आती है। स्त्री में सोम्य गुणों की सत्ता पारिवारिक श्रीवृद्धि के लिए आवश्यक है। जहाँ सोम्य गुण हैं, वहाँ इन्द्र और जीवात्मा की उपस्थिति होती है, आत्मिक बल होता है और निरन्तर श्रीवृद्धि होती है। इस प्रकार इस मन्त्र में बताया गया है कि स्त्री घर का आधार है, स्त्री ही परिवार का मूल है और सोम्यगुणों से इस मूल की पुष्टि होती है। इस पुष्टि के फलस्वरूप आत्मिक बल, सात्त्विकता, पवित्रता, सुशीलता और विनय आदि गुण आते हैं।

टिप्पणी—(१) **जाया**—पत्नी, वधू। जायते अस्यां पतिः इति जाया। पति ही पुत्र के रूप में जन्म लेता है। अतः स्त्री को जाया कहते हैं। 'आत्मा वै जायते पुत्रः' पिता की आत्मा ही पुत्र-रूप में जन्म लेती है। (२) **इत्**—ही। अव्यय है। (३) **अस्तम्**—घर। अस्यन्ते क्षिप्यन्ते पदार्था अत्र इति अस्तम्। घर को अस्त इसलिए कहते हैं, क्योंकि उसमें सब सामान रखा जाता है। स्त्री ही घर है, इस विषय का सुभाषित है—'न गृहं गृहमित्याहुः गृहिणी गृहमुच्यते' घर-घर नहीं है, गृहिणी ही घर है। (४) **योनिः**—कारण, आधार। पत्नी ही कुल-वृद्धि का आधार है। (५) **युक्ताः**—जुते हुए। युज् + क्त। (६) **हरयः**—घोड़े। सूर्य के घोड़ों को हरि कहते हैं। (७) **वहन्तु**—ले जावें। वह् (ले जाना, ढोना, भ्वादि, पर०) + लोट् प्र० ३। (८) **सुनवाम**—निचोड़ें, रस निकालें। सु (रस निकालना, स्वादि, पर०) + लोट् उ० ३। (९) **धन्वाति**—धन्व् (दौड़ना, भागना, भ्वादि, पर०) + लेट् प्र० १। दौड़कर जाएगा। (१०) **अच्छ**—ओर, समीप। अव्यय है।

१९. गृहिणी का महान् सौभाग्य

तिस्रो मात्रा गन्धर्वाणां, चतस्रो गृहपत्न्याः ।
तासां या स्फातिमत्तमा, तया त्वाभि मृशामसि ।।

अथर्व० ३–२४–६

अन्वय—गन्धर्वाणां तिस्रः मात्राः, गृहपत्न्याः चतस्रः । तासां या स्फातिमत्तमा, तया त्वा अभि मृशामसि ।

शब्दार्थ—(गन्धर्वाणाम्) गन्धर्वों की, (तिस्रः मात्राः) तीन मात्राएँ, तीन विशेषताएं हैं, (गृहपत्न्याः) गृहपत्नी या गृहिणी की, (चतस्रः) चार विशेषताएँ हैं । (तासाम्) उन विशेषताओं में से, (या) जो, (स्फातिमत्तमा) अत्यन्त समृद्धिशाली है, समृद्धि देने वाली है, (तया) उससे, (त्वा) तुझको, (अभि मृशामसि) छूते हैं, संयुक्त करते हैं ।

हिन्दी अर्थ—गन्धर्वों की तीन मात्राएँ (विशेषताएँ) हैं। गृहपत्नी की चार मात्राएँ (विशेषताएँ) हैं। उनमें से जो सबसे अधिक समृद्धि देने वाली है, उससे तुझे युक्त करते हैं।

Eng. Tr.—The Gandharvas possess three qualities, but a house-wife owns four. We bestow the best on you.

अनुशीलन—इस मंत्र में गन्धर्वों और गृहपत्नी की तुलना की गई है और सिद्ध किया गया है कि गन्धर्वों से गृहपत्नी गुणों में उत्कृष्ट है। गन्धर्वों में तीन मात्रा या विशेषताएँ हैं और गृहपत्नी में चार । गन्धर्वों में तीन विशेषताएँ क्या हैं ? ये हैं—रूप, गन्ध और प्रमोद । ब्राह्मण ग्रन्थों में गन्धर्वों और अप्सराओं की विशेषताएँ बताई हैं—'गन्धेन च वै रूपेण च गन्धर्वाप्सरसश्चरन्ति' शत० ब्रा० ९-४-१-४ । 'गन्धो मे मोदो मे प्रमोदो मे । तन्मे युष्मासु (गन्धर्वेषु) ।' जैमिनीय उप० ब्रा० ३-२५-४ । रूप से अभिप्राय है—सौन्दर्य, लावण्य, शारीरिक सुषमा । गन्ध का अभिप्राय है—अंगलेप आदि करना, पुष्पादि से अलंकरण,

आभूषणों आदि से सजाना। प्रमोद से अभिप्राय है—आमोद-प्रमोद एवं सुख का जीवन व्यतीत करना। ये तीनों गुण गन्धर्वों और अप्सराओं में प्राप्त होते हैं, अतः उनकी तीन मात्राएँ हैं। गृहपत्नी में चार मात्राएँ हैं अर्थात् गन्धर्वों वाले तीनों गुणों के अतिरिक्त एक विशेषता और है। वह विशेषता क्या है? वह है—संयम, सच्चरित्रता, शील या विनय। गन्धर्वों को रूप का प्रेमी, कामुक या विषयी माना गया है। 'स्त्रीकामा वै गन्धर्वाः' ऐत० ब्रा० १-२७। रूपमिति गन्धर्वाः (उपासते)' शत० ब्रा० १०-५-२-२०।

चाहे गन्धर्व हों या अप्सराएँ, उनकी प्रवृत्ति भौतिकवादी है। वे रूप, गन्ध और विषयों में आसक्त मिलते हैं। उनमें चारित्रिक उत्कर्ष नहीं है। वह चारित्रिक उत्कर्ष गृहपत्नी में मिलता है। उसमें चरित्र-बल, विनय, शील और संयम मिलता है। अतः वह गन्धर्वों से एक बात में बढ़कर है। मंत्र में इसीलिए कहा गया है कि वह चौथी विशेषता अर्थात् संयम या चरित्रबल गृहपत्नी में विशेष रूप से होना आवश्यक है।

टिप्पणी—(१)—तिस्रः—तीन। त्रि + प्र० ३। स्त्रीलिंग में त्रि को तिसृ हो जाता है। (२) मात्राः—मात्राएँ, विशेषताएँ। (३) चतस्रः—चार। चतुर् + प्र० ३। स्त्रीलिंग में चतुर् को चतसृ हो जाता है। (४) स्फातिमत्तमा—सबसे अधिक समृद्धि वाली। स्फाति (समृद्धि) + मत् + तम + टाप् (आ)। स्फाति—स्फाय् (बढ़ना, भ्वादि, आ०) + ति। (५) त्वा—तुझको। त्वाम् का संक्षिप्त रूप है। (६) अभिमृशामसि—छूते हैं, स्पर्शपूर्वक देते हैं। मृश् (छूना, तुदादि, पर०) + लट् उ० ३। अन्त में इ का आगम, मः को मसि।

२०, पत्नी गृहलक्ष्मी है

अपाः सोममस्तमिन्द्र प्र याहि
कल्याणीर्जाया सुरणं गृहे ते।

यत्रा रथस्य बृहतो निधानं
विमोचनं वाजिनो दक्षिणावत् ।।

ऋग्० ३-५३-६

अन्वय—हे इन्द्र, सोमम् अपाः, अस्तं प्र याहि। ते गृहे कल्याणी जाया सुरणम्। यत्र बृहतः रथस्य निधानम्, वाजिनः दक्षिणावत् विमोचनम्।

शब्दार्थ--(हे इन्द्र) हे इद्र, (सोमम्) सोमरस को, (अपाः) तूने पिया। (अस्तम्) घर को, (प्र याहि) जाओ। (ते) तेरे, (गृहे) घर में, (कल्याणीः) मंगलकारिणी सुखद, (जाया) पत्नी है। (सुरणम्) सुन्दर संगीत आदि की ध्वनि है। (यत्र) जहाँ (बृहतः) विशाल, (रथस्य) रथ का, (निधानम्) घर, आश्रय, निवास है। (वाजिनः) और घोड़े का, (दक्षिणावत्) दक्षिणायुक्त, अन्न-पानादि के सत्कार से युक्त, (विमोचनम्) रथ से मुक्ति होती है।

हिन्दी अर्थ—हे इन्द्र, तुमने सोमरस का पान किया है। अब तुम अपने घर जाओ। वहाँ तुम्हारे घर में मंगलकारिणो पत्नी है और संगीतादि की मधुर ध्वनि है। वहाँ विशाल रथ है और रथ से मुक्त घोड़े का अन्न-पानादि से सत्कार होता है।

Eng. Tr.—O Indra ! having tasted Soma-juice depart to your abode. You have a virtuous wife there. There is a flow of sweet notes of music. There is a grand chariot and the horses, who after being released from the yoke, are served well with food-stuff.

अनुशीलन--इस मंत्र में सुखी एवं सम्पन्न परिवार की विशेषताओं का उल्लेख है। सुखी परिवार में ये विशेषताएँ होनी चाहिएँ--सोमपान, सुखदा पत्नी, संगीत की सुन्दर ध्वनि, पशुओं आदि के निवास और भोजनादि की व्यवस्था। इन विशेषताओं का वर्णन करते हुए कहा गया

है कि घर में कल्याणकारिणी एवं सुखदा पत्नी है। पत्नी घर का निर्माण करती है। पति के सुख का वही आधार है। खिन्न, विषण्ण, परित्रस्त, क्षुब्ध और विपन्न पति को वही प्रसन्न करती है। वही उसकी चिन्ताओं को दूर करके प्रसन्नता का वातावरण उत्पन्न करती है।

सुखी एवं सम्पन्न परिवार के लिए दूसरी आवश्यकता बताई गई है कि परिवार में संगीत की मधुर ध्वनि हो। संगीत परिवार के वातावरण को मधुर एवं मधुमय बनता बनाता है। संगीत मानसिक तनावों को दूर कर मन में शान्ति और आह्लाद की उत्पत्ति करता है। मानसिक तनावों के दूर होने से शरीर में नवजीवन और नव चेतना का संचार होता है। अतः परिवार की प्रसन्नता के लिए संगीत को उचित स्थान देना चाहिए।

सुखी परिवार की तीसरी आवश्यकता है--पशुओं आदि के निवास और भोजनादि की व्यवस्था। जिस प्रकार अपने सुख की व्यवस्था की जाती है, उसी प्रकार गाय, घोड़े, बैल आदि के भोजनाच्छादन की सुन्दर व्यवस्था होनी चाहिए।

टिप्पणी--(१) **अपाः**--पिया। पा (पीना, भ्वादि, पर०) + लुङ् म० १। (२) **अस्तम्**--घर को। (३) **प्र याहि**--जाओ। या (जाना, अदादि, पर०) + लोट् म० १। (४) **कल्याणी**--मंगलकारिणी, सुख देने वाली। (५) **सुरणम्**--सु--अच्छी, रणम्--ध्वनि। सुन्दर संगीत आदि की ध्वनि से युक्त घर है। (६) **यत्रा**--जहाँ। यत्र को छान्दस दीर्घ। (७) **निधानम्**--आश्रय, निवास स्थान। (८) **विमोचनम्**--छोड़ना, मुक्त करना। घोड़े को खुला रखना। (९) **दक्षिणावत्**--दक्षिणायुक्त अर्थात् अन्न-जल की सुविधा से युक्त।

२१. पत्नी गृहस्वामिनी हो

पूषा त्वेतो नयतु हस्तगृह्याऽश्विना त्वा प्र वहतां रथेन।
गृहान् गच्छ गृहपत्नी यथासो वशिनी त्वं विदथमा वदासि॥

ऋग्० १०-८५-२६; अथर्व० १४-१-२०

अन्वय—पूषा त्वा हस्तगृह्य इतः नयतु। अश्विना त्वा रथेन प्र वहताम्। गृहान् गच्छ। यथा गृहपत्नी असः। त्वं वशिनी विदथम् आ वदासि।

शब्दार्थ—(पूषा) पूषा देव, (त्वा) तुझको, (हस्तगृह्य) हाथ पकड़ कर, (इतः) यहाँ से, पितृगृह से, (नयतु) ले चले। (अश्विना) दोनों अश्विनी कुमार, (त्वा) तुझको, (रथेन) रथ से, (प्र वहताम्) ले जावें। (गृहान्) पति के घरों को, (गच्छ) जावो, प्राप्त हो। (यथा) जिससे, जिसप्रकार, (गृहपत्नी) गृहस्वामिनी, (असः) होओ। (त्वम्) तू, (वशिनी) संयमी, जितेन्द्रिय, पति को आज्ञा में रहने वाली, (विदथम्) यज्ञ में, शास्त्रार्थ में (आवदासि) बोलना, भाषण करना।

हिन्दी अर्थ—हे वधू, पूषा देव तुझको हाथ पकड़ कर पितृगृह से ले चले। अश्विनीकुमार तुझको रथ से (पति के घर तक) पहुंचावें। तुम पति के घर पहुँचो और वहां गृहस्वामिनी होओ। तुम संयमी जीवन व्यतीत करते हुए यज्ञ आदि ज्ञानचर्चा के स्थलों पर भाषण देना।

Eng. Tr.—O Bride! May the lord Pushan, holding your hand, lead you from the house of your parents. May the gods Ashvins, drop you by their chariot at the house of your husband. May you reach the house of your husband and be the mistress there. May you, leading a pious life, take part in the academic discussions, which are held at the time of the sacrifice.

अनुशीलन—इस मंत्र में पितृगृह से वधू को पतिगृह ले जाने का वर्णन है। वधू पतिगृह तक सुरक्षित जाए, इसकी सुन्दर व्यवस्था होनी चाहिए। मंत्र में बताया गया है कि पूषा देव वधू का हाथ पकड़ कर रथ तक ले जाता है और अश्विनी देव उसे रथ के द्वारा पतिगृह तक पहुँचाते हैं। देवों की नियुक्ति के द्वारा यह भाव प्रकट किया गया है कि वधू को ले जाने का

काम बहुत उत्तरदायित्व का है और यह कार्य उत्तमता से पूर्ण होना चाहिए।

वधू पतिगृह पहुँचकर वहां गृहपत्नी एवं गृहस्वामिनी होती है। उसे पति के परिवार का पूर्ण उत्तरदायित्व संभालना चाहिए। उसके लिए अन्य दो कर्तव्य भी बताये गये हैं। वे हैं---संयम का जीवन व्यतीत करना और यज्ञादि में भाषण देना या शास्त्रचर्चाओं में भाग लेना। स्त्री के लिए आवश्यक है कि वह संयम का जीवन व्यतीत करे। विषयों के प्रति अत्यासक्ति शारीरिक क्षीणता का कारण है। स्त्रियों के प्रायः सभी रोग असंयम के कारण होते हैं। अतः इस बात पर उन्हें विशेष ध्यान देना चाहिए। स्त्री के लिए शिक्षा को अनिवार्य बताया गया है। सुशिक्षित स्त्री का कर्तव्य है कि वह यज्ञ आदि के अवसरों पर धार्मिक विषयों पर प्रकाश डाले और शास्त्रीय चर्चाओं में भाग ले। इससे उसकी ज्ञान के प्रति अभिरुचि बढ़ेगी और उसका मानसिक एवं बौद्धिक विकास होगा।

टिप्पणी—(१) पूषा—पूषन् देवता, पुष्टिकर्ता या पोषक देव। (२) त्वा—तुझको। त्वाम् के स्थान पर त्वा है। (३) नयतु—ले जावे। नी (ले जाना, भ्वादि) + लोट् प्र० १। (४) हस्तगृहच—हस्तेगृह्य, हाथ पकड़ कर। हस्त + ग्रह् (पकड़ना) + ल्यप् (य)। (५) अश्विना—अश्विनौ, दोनों अश्विनीकुमार। अश्विन् + प्र० २। (६) प्रवहताम्—ले जावें, पहुँचावें। वह् (ले जाना, ढोना, भ्वादि, पर०) + लोट् प्र० २। (७) गृहपत्नी—घर की स्वामिनी। (८) असः—होओ। अस् (होना, अदादि, पर०)+लेट् म० १। (९) वशिनी—संयमयुक्त, जितेन्द्रिय पति के वश में रहने वाली, पतिगृह को वश में रखने वाली। (१०) विदथम्—यज्ञ में, शास्त्रार्थ में, ज्ञानमीमांसा में। अध्यात्म-चर्चा के स्थल को विदथ कहते हैं। (११) आवदासि—बोलना, भाषण देना। वद् + (बोलना, भ्वादि, पर०) + लेट् म० १। (१२) पाठभेद—अथर्ववेद में 'पूषा' के स्थान पर 'भगः' है। इसका अर्थ है—ऐश्वर्य का देवता भग।

२२. सुशील पत्नी लक्ष्मी है

याभिः सोमो मोदते हर्षते च
कल्याणीभिर्युवतिभिर्न मर्यः ।
ता अध्वर्यो अपो अच्छा परेहि
यदासिञ्चा ओषधीभिः पुनीतात् ॥

ऋग्० १०-३०-५

अन्वय—सोमः याभिः मोदते हर्षते च, कल्याणीभिः युवतिभिः मर्यः न । हे अध्वर्यो, ताः अपः अच्छ परेहि । यत् आसिञ्चाः (तदा) ओषधीभिः पुनीतात् ।

शब्दार्थ—(सोमः) सोम देवता, (याभिः) जिनसे, जिन जलों से, (मोदते हर्षते च) आनन्दित और प्रसन्न होता है, (कल्याणीभिः) सुन्दर, सुशील, (युवतिभिः) स्त्रियों से, (मर्यः न) जैसे मनुष्य । (हे अध्वर्यो) हे यज्ञकर्ता, याजक, (ताः अपः अच्छ) उन जलों को प्राप्त करने के लिए, (परेहि) जाओ । (यत्) जब, (आसिञ्चाः) सींचा, सोमलता को जल से सींचा, तब, (ओषधीभिः) ओषधियों से, अर्थात् सोमलता सोमरस और जल से, (पुनीतात्) पवित्र करे ।

हिन्दी अर्थ—सुन्दर सुशील युवतियों से जिस प्रकार मनुष्य प्रसन्न होता है, उसी प्रकार सोम जल से आनन्दित और प्रसन्न होता है । हे अध्वर्यु, उन जलों के पास जाओ । जब तुम उस जल से सोमलता को सींचते हो तो सोम ओषधियों से पवित्र करता है ।

Eng. Tr.—As a man is pleased in the company of the beautiful maidens, similarly Soma is pleased and excited with the water. O Sacrificer, go and fetch these waters here. When you sprinkle the Soma-creeper with that water, Soma purifies you with the herbs.

अनुशीलन—इस मंत्र में सरल, सुशील और विनीत स्त्री का गुणगान किया गया है। जहां सुशील और कल्याणकारिणी पत्नी है, वहां स्वर्ग है। सुशील पत्नी को प्राप्त करना सौभाग्य की बात है। अतएव मंत्र में बताया गया है कि सुशील पत्नी को पाकर मनुष्य आनन्दित रहता है और हार्दिक प्रसन्नता अनुभव करता है। सुशील स्त्री के साथ हर्ष और आमोद है। इसके विपरीत दुःशील स्त्री से दुःख और कष्ट हैं। सुशील स्त्री और पुरुष के मिलन को इस प्रकार समझाया गया है, जैसे किसी वृक्ष को जल मिल जाना। जिस प्रकार जल पाकर वृक्ष या वनस्पति फूलता-फलता है, उसी प्रकार सुशील पत्नी को पाकर पति भी फलता-फूलता है। जिस प्रकार एक लता से अन्य लताएं उत्पन्न होती जाती हैं, उसी प्रकार सुशील स्त्री को प्राप्त कर परिवार की श्रीवृद्धि होती जाती है। सुशील स्त्री परिवार के लिए लक्ष्मी है और परिवार की श्रीवृद्धि का कारण है।

टिप्पणी—(१) **याभिः**—जिनसे। याभिः अद्भिः, जिन जलों से। (२) **मोदते**—प्रसन्न होता है। मुद् (प्रसन्न होना, भ्वादि, आ०) + लट् प्र० १। (३) **हर्षते**—आनन्दित होता है। हृष् (प्रसन्न होना, भ्वादि, आ०) + लट् प्र० १। मुद्, हृष् एकार्थक हैं। यहाँ अत्यन्त प्रसन्न होता है, अर्थ होगा। (४) **कल्याणीभिः**—मंगलकारी, सुन्दर और सुशील स्त्रियों से। (५) **मर्तः**—मनुष्य। (६) **न**—जैसे। अव्यय है। (७) **अध्वर्यो**—हे अध्वर्यु, हे यज्ञकर्ता। अध्वर (यज्ञ) + यु (करने वाला)। (८) **अच्छा**—पास, समीप। अच्छ को छान्दस दीर्घ। (९) **परेहि**—जाओ, लौटकर जाओ। परा + इ (जाना, अदादि, पर०) + लोट् म० १। (१०) **यत्**—जब। (११) **आसिञ्चाः**—सींचा। आ + सिच् (सींचना, तुदादि, पर०) + लेट् म० १। (१२) **पुनीतात्**—पवित्र करे। पू (पवित्र करना, क्र्यादि, पर०) + लोट् प्र० १। पुनातु के स्थान पर पुनीतात् है। तु को तात् हुआ है।

२३. स्त्री परिवार की स्वामिनी है

सम्राज्ञी श्वशुरे भव, सम्राज्ञी श्वश्र्वां भव।
ननान्दरि सम्राज्ञी भव, सम्राज्ञी अधि देवृषु॥

ऋग्० १०-८५-४६; अथर्व० १४-१-४४

अन्वय—श्वशुरे सम्राज्ञी भव। श्वश्र्वां सम्राज्ञी भव। ननान्दरि सम्राज्ञी भव। देवृषु अधि सम्राज्ञी (भव)।

शब्दार्थ—(श्वशुरे) ससुर पर, (सम्राज्ञी भव) स्वामिनी के तुल्य होकर रह। (श्वश्र्वाम्) सास पर, (सम्राज्ञी भव) स्वामिनी के तुल्य होकर रह। (ननान्दरि) ननद के साथ, (सम्राज्ञी भव) स्वामिनी होकर रह। (देवृषु अधि) देवरों से साथ, (सम्राज्ञी भव) स्वामिनी होकर रह।

हिन्दी अर्थ—हे वधू, तू ससुर, सास, ननद और देवरों के साथ गृह-स्वामिनी के रूप में रह।

Eng. Tr.—O Bride ! be the mistress of the house and guide your father-in-law, mother-in-law, sister-in-law and brother-in-law.

अनुशीलन—मन्त्र का कथन है कि पत्नी पति के परिवार में आकर सास, ससुर, ननद और देवर सभी की गृह-स्वामिनी होती है। इसका अभिप्राय यह है कि विवाह के बाद पति के घर आने पर वह गृह की स्वामिनी हो जाती है। घर का समस्त उत्तरदायित्व उस पर आ जाता है। छोटे हों या बड़े, सभी की हित-चिन्ता उसका कर्तव्य है। सास-ससुर और बड़ों की सेवा, ननद की सुविधा की चिन्ता और देवरों के भोजनादि की ठीक व्यवस्था उसका कर्तव्य हो जाता है। इन कर्तव्यों के निर्वाह के द्वारा वह गृह की स्वामिनी या सम्राज्ञी हो जाती है।

सम्राज्ञी या स्वामिनी का यह भाव सर्वथा नहीं है कि वह अपने से बड़ों पर अपना प्रभुत्व स्थापित करे, उनकी उपेक्षा करे या उन्हें अपने कथनानुसार चलने के लिए बाध्य करे। इस भाव को अथर्ववेद में अन्यत्र स्पष्ट किया गया है और कहा गया है कि वह सास, ससुर, ननद और

देवरों आदि के साथ अत्यन्त शिष्ट व्यवहार रखे और सदा उनके हित की चिन्ता करे। उन्हें अपने कार्यों से प्रसन्न रखकर गृह-स्वामिनी हो और सबके ऊपर अपनी शालीनता की छाप डाले। अथर्ववेद का कथन है कि—

सुशेवा पत्ये श्वशुराय शंभूः । स्योना श्वश्र्वै प्र गृहान् विशेमान् ।
अथर्व० १४-२-२६

स्योना भव श्वशुरेभ्यः, स्योना पत्ये गृहेभ्यः ।। अथर्व० १४-२-२७

अर्थात्—पति के घर जाकर वधू पति की सेवा करे, सास और ससुर को सुख देने वाली हो तथा पति के परिवार वालों के लिए हितकर हो।

इस मन्त्र के द्वारा पत्नी के उच्च आदर्शों का विधान है। वह पतिगृह में सेविका के रूप में न रहे और न उसमें हीनभावना उत्पन्न होनी चाहिए। वह परिवार में गृहपत्नी, गृहस्वामिनी और गृह की पालिका है। इस प्रकार उसके हृदय में उत्तरदायित्व की भावना जागृत होनी चाहिए।

टिप्पणी—(१) **सम्राज्ञी**—स्वामिनी, अनुशासनकर्त्री। सम् + राजन् + ङीप् (ई)। ज के अ का लोप, न् को ञ्। (२) **श्वश्र्वाम्**—सास पर। श्वश्रू (सास) + स० १। (३) **भव**—होओ। भू (होना, भ्वादि) + लोट् म० १। (४) **ननान्दरि**—ननद पर, पति की बहिन पर। ननान्दृ (ननद) + स० १। (५) **देवृषु**—देवरों पर, पति के भाइयों पर। देवृ (देवर) + स० ३। (६) **पाठभेद**—अथर्ववेद में यह मन्त्र इस प्रकार है :—

सम्राज्ञ्येधि श्वशुरेषु, सम्राज्ञ्युत देवृषु ।
ननान्दुः सम्राज्ञ्येधि, सम्राज्ञ्युत श्वश्र्वाः ।।
(अ० १४-१-४४)

अर्थ—ससुरों की स्वामिनी होना। देवरों की स्वामिनी होना। ननद की स्वामिनी होना और सास की स्वामिनी होना।

२४. पत्नी गृहस्वामिनी है

यथा सिन्धुर्नदीनां, साम्राज्यं सुषुवे वृषा ।
एवा त्वं सम्राज्ञ्येधि, पत्युरस्तं परेत्य ।।

अथर्व० १४-१-४३

अन्वय—यथा वृषा सिन्धुः नदीनां साम्राज्यं सुषुवे । एव त्वं पत्युः अस्तं परेत्य सम्राज्ञी एधि ।

शब्दार्थ—(यथा) जिस प्रकार, (वृषा) बली, वलवान् (सिन्धुः) समुद्र ने, (नदीनाम्) नदियों के, (साम्राज्यम्) साम्राज्य, आधिपत्य को. (सुषुवे) उत्पन्न किया, जन्म दिया । (एव) इसी प्रकार, (त्वम्) तू, (पत्युः) पति के, (अस्तम्) घर को, (परेत्य) प्राप्त कर, पहुँच कर, (सम्राज्ञी) स्वामिनी, (एधि) होना ।

हिन्दी अर्थ—जिस प्रकार वलशाली समुद्र ने नदियों पर आधिपत्य की सृष्टि की, उसी प्रकार (हे वधू) तू भी पति के घर पहुँच गृह-स्वामिनी होना ।

Eng. Tr.—O Bride ! as the mighty ocean becomes lord of the rivers, similarly on reaching the house of your husband, be the mistress of the house.

अनुशीलन—इस मंत्र का भाव समझने के लिए मंत्र २३ की व्याख्या देखें । मंत्र का कथन है कि जिस प्रकार सभी नदियाँ समुद्र में आकर मिलती हैं और समुद्र नदियों का पति या स्वामी हो जाता है, उसी प्रकार पतिगृह में आकर पत्नी भी सम्राज्ञी हो जाती है । मंत्र के पूर्वार्ध से उत्तरार्ध का भाव स्पष्ट हो जाता है । नदियों का गन्तव्य स्थान समुद्र है । नदियों का समुद्र में मिलना, पत्नी का अपने पति को प्राप्त करना है । समुद्र में पहुँच कर नदियाँ अपने अस्तित्व को समाप्त कर समुद्र रूप हो जाती हैं । इसी प्रकार पत्नी का कर्तव्य है कि वह पति के परिवाररूपी समुद्र में पहुँचकर अपने पृथक् अस्तित्व को समाप्त कर दे और पति के परिवार से एकरूपता

या तादात्म्य स्थापित करे। यह एकरूपता स्थापित होते ही वह गृह-स्वामिनी, सम्राज्ञी, अधिराज्ञी आदि हो जाती है।

मंत्र का अभिप्राय यह है कि जिस प्रकार सारी नदियों का भार समुद्र पर आ जाता है, उसी प्रकार सारे परिवार का भार नव-वधू पर आ जाता है। सारे परिवार का भार उठाना बहुत बड़ा उत्तरदायित्व का कार्य है। वधू ही परिवार के सारे कार्यों को देखती है, गृह-संचालन उसका कर्तव्य होता है, अतः वह गृह की सम्राज्ञी होती है। कालिदास ने बहुत सुन्दर शब्दों में इस उत्तरदायित्व की व्याख्या की है। उसका कथन है कि—राजा या सम्राट् होने से केवल उत्सुकता या महत्वाकांक्षा की शान्ति होती है। उसके साथ जो उत्तरदायित्व आता है, वह अत्यन्त कष्ट-साध्य होता है। वह व्यक्ति को शान्ति से नहीं बैठने देता है। यही गृह-सम्राज्ञी की भी दशा होती है। उक्ति है—

औत्सुक्यमात्रमवसाययति प्रतिष्ठा,
क्लिश्नाति लब्धपरिपालनवृत्तिरेव।
नातिश्रमापनयनाय यथा श्रमाय
राज्यं स्वहस्तधृतदण्डमिवातपत्रम्॥

शाकुन्तल ५-६

टिप्पणी—(१) **साम्राज्यम्**—साम्राज्य, आधिपत्य। सम्राज्+ष्यञ् (य), भाव अर्थ में। (२) **सुषुवे**—उत्पन्न किया, जन्म दिया। सू (जन्म देना, प्रेरणा देना, तुदादि, आ०)+लिट् प्र० १। (३) **वृषा**—बलवान्, शक्तिशाली। वृषन्+प्र० १। (४) **एवा**—एवम्, इसी प्रकार। एवम् के अर्थ में एव है। छान्दस दीर्घ। (५) **एधि**—होना। अस् (होना, अदादि, पर०)+लोट् म० १। (६) **पत्युः**—पति के। पति+ष० १। (७) **अस्तम्**—घर। (८) **परेत्य**—प्राप्त होकर, पहुँच कर। परा+इ (जाना, अदादि)+ल्यप् (य)। बीच में त् का आगम।

२५. पत्नी पतिगृह की स्वामिनी है

प्रेतो मुञ्चामि नामुतः, सुबद्धाममुतस्करम् ।
यथेयमिन्द्र मीढ्वः, सुपुत्रा सुभगासति ॥

ऋग्० १०-८५-२५, अथर्व० १४-१-१८

अन्वय—इतः प्र मुञ्चामि, न अमुतः। अमुतः सुबद्धां करम्। हे मीढ्वः इन्द्र, यथा इयं सुपुत्रा सुभगा असति।

शब्दार्थ—(इतः) यहाँ से, पितृकुल से, (प्र मुञ्चामि) तुझे मुक्त करता हूँ। (न अमुतः) वहाँ से नहीं, अर्थात् पतिकुल से नहीं। (अमुतः) वहाँ से, अर्थात् पतिकुल से, (सुबद्धाम्) अच्छे प्रकार से बद्ध या संयुक्त, (करम्) करता हूँ। (हे मीढ्वः) हे सुखों के वर्षक, (इन्द्र) हे इन्द्र, (यथा) जिस प्रकार, (इयम्) यह वधू, (सुपुत्रा) योग्य पुत्रों वाली, (सुभगा) उत्तम भाग्य वाली, सौभाग्यवती, (असति) होवे।

हिन्दी अर्थ—(हे वधू) मैं पितृकुल से तुझे मुक्त करता हूँ, पतिकूल से नहीं। तुझे पतिकुल से दृढ़ रूप से सम्बद्ध करता हूँ। हे सुखों के वर्षक इन्द्र (परमात्मन्), जिससे यह वधू योग्य पुत्रों से युक्त हो और सौभाग्यवती होवे।

Eng. Tr.—O Bride ! I release you from your paternal house and strongly unite you with the family of your husband. O Bountiful Indra ! may she he blessed with good progeny and prosperity.

अनुशीलन—इस मन्त्र का अभिप्राय यह है कि विवाह के बाद पत्नी का सम्बन्ध अपने पितृकुल से विच्छिन्न होता है और पतिकुल से जुड़ जाता है। उसके लिए ही मन्त्र में कहा गया है कि पतिकुल से यह सम्बन्ध अत्यन्त दृढ़ होता जाए। अत्यन्त दृढ़ का भाव यह है कि पत्नी पति-कुल से इतनी अधिक आत्मीयता अनुभव करे कि वह अपने आप को एकरूप

समझे। इससे उसका अकेलापन का भाव नष्ट होगा। साथ ही माता-पिता से अपने वियोग को सहन करने में उसे सहायता मिलेगी।

यह एकात्मता स्थापित होने पर पत्नी पतिकुल के हितचिन्तन में मग्न होती हैं। परिणामस्वरूप वह सौभाग्यवती होती है, उसकी श्रीवृद्धि होती है, धन-धान्य की वृद्धि होती है और परिवार में सुयोग्य सन्तानों का भी जन्म होता है। इस प्रकार वधू परिवार के लिए एक स्थिर कोष सिद्ध होती है।

टिप्पणी—(१) इतः—इधर से, पितृकुल से। (२) मुञ्चामि—मुक्त करता हूँ, मुच् (छोड़ना, तुदादि, पर०) + लट् उ० १। (३) न अमुतः—उधर से नहीं, अर्थात् पतिकुल से मुक्त नहीं करता हूँ। अमुतः—अदस् (वह) + तः। पंचमी के अर्थ में तः। (४) सुबद्धाम्—अच्छे प्रकार से सम्बद्ध या संयुक्त। बद्ध—बन्ध् (बाँधना, क्र्यादि) + त। (५) करम्—करता हूँ। कृ (करना, तनादि, पर०) + लुङ् उ० १। अडागम नहीं, Inj. है। (६) मीढ्वः—वर्षक, सुख या धन का वर्षक। मिह् (बरसना, भ्वादि, पर०) + लिट् > वस् = मीढ्वस् + संबोधन १। (७) सुभगा—सुन्दर भाग्य वाली, सौभाग्ययुक्त। (८) असति—होवे। अस् (होना, अदादि, पर०) + लेट् प्र० १।

२६. स्त्री अबला नहीं, सबला है

अवीरामिव मामयं, शरारुरभि मन्यते।
उताहमस्मि वीरिणी-न्द्रपत्नी मरुत्सखा,
विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः॥

ऋग्० १०-८६-९, अथर्व० २०-१२६-९, निरुक्त ६-३१

अन्वय—अयं शरारुः माम् अवीराम् इव अभि मन्यते। उत अहं वीरिणी इन्द्रपत्नी मरुत्सखा अस्मि। इन्द्रः विश्वस्मात् उत्तरः।

शब्दार्थ—(अयम्) यह, (शरारुः), हिंसक, पापी, दुर्जन, शरारती, (माम्) मुझको, मुझ इन्द्राणी को, (अवीराम् इव) अवीर सी, अबला सी, (अभि मन्यते) मानता है। (उत) अपितु, परन्तु, (अहम्) मैं, (वीरिणी) वीरपुत्रों वाली, (इन्द्रपत्नी) इन्द्र की पत्नी, (मरुत्सखा) मरुत् देवों की मित्र, (अस्मि) हूँ। (इन्द्रः) इन्द्र, (विश्वस्मात्) सबसे, (उत्तरः) उत्कृष्ट है।

हिन्दी अर्थ—यह हिंसक (नीच, पापी) व्यक्ति मुझको अबला सा समझता है। परन्तु मैं वीर-पुत्रों वाली, इन्द्र की पत्नी और मरुत् देवों की मित्र हूँ। इन्द्र सबसे उत्कृष्ट है।

Eng. Tr.—This wicked one treats me as a helpless woman, but I am mother of brave sons, wife of lord Indra and a friend of the Marut gods. The God Indra is superior to all.

अनुशीलन—यह मंत्र स्त्री के गौरव का प्रतिपादक है। इस मंत्र का प्रतिदिन पाठ करने वाली स्त्री निर्भीक, मनोबल-युक्त, तेजस्विनी और ओजस्विनी होगी। स्त्रियों की लज्जाशीलता और सुकुमारता के आधार पर उन्हें अबला समझा जाता है। यह भ्रान्त धारणा है। मंत्र में प्रतिपादन किया गया है कि स्त्री अबला या निर्बल नहीं है। वह वीर है, वीर पुत्रों की जननी है, वीर की पत्नी है और वीर सहायकों से युक्त है।

मंत्र में वर्णन है कि नीच और कामुक व्यक्ति स्त्री को निर्बल समझकर उन्हें आतंकित करना चाहते हैं। उसका उत्तर दिया गया है कि स्त्री वीर है, वीरांगना है, वीर की पत्नी और वीरता के कार्य करने वाली है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि दुर्गा, झांसी की रानी लक्ष्मीबाई, पद्मिनी आदि ने शत्रुओं का मर्दन किया है और अपने उच्च चरित्र का परिचय दिया है।

निर्बलता और सबलता क्या है? संक्षेप में यदि इसका विश्लेषण किया जाए तो कह सकते हैं कि चारित्रिक न्यूनता एवं आत्मिक बल का अभाव

निर्बलता है और सच्चरित्रता तथा आत्मिक बल का अस्तित्व सबलता है। चरित्रबल और आत्मबल शरीर की स्थूलता आदि पर निर्भर नहीं है, यह मानव के उच्च गुणों पर निर्भर है। स्त्री में अपने सतीत्व की रक्षा का जितना दृढ़ मनोबल होता है, उतना अन्यत्र देखने को नहीं मिलता है। इस मंत्र में शिक्षा दी गई है कि स्त्री अपने अन्दर कभी हीनता की भावना न आने दे। वह अपने चरित्र-बल और आत्मिक बल से सदा निर्भय रहे। उसका मनोबल इतना उच्च होना चाहिए कि कोई शत्रु या नीच व्यक्ति उसकी ओर देखने का भी साहस न कर सके। सच्चरित्रता और पातिव्रत्य का इतना उत्कट बल होता है कि वह अग्नि के तुल्य दाहक और नाशक होता है। पापी व्यक्ति उनके गर्जन और तर्जन के सम्मुख क्षण भर भी नहीं टिक सकते हैं।

टिप्पणी—(१) **अवीराम् इव**—निर्बल सी, अबला सी, (२) **शरारुः**—हिंसक, नीच, पापी, शरारती। शॄ (हिंसा करना) + आरु। (३) **अभिमन्यते**—मानता है, समझता है। मन् (मानना, दिवादि, आ०) + लट् प्र० १। (४) **उत**—और, अपितु, परन्तु। अव्यय है। (५) **वीरिणी**—वीर पुत्रों वाली। वीर + मत्वर्थ में इन् + ङीप् (ई)। (६) **इन्द्रपत्नी**—इन्द्र की पत्नी, इन्द्राणी। (७) **मरुत्सखा**—मरुत् देवता जिसके मित्र हैं। आँधी, तूफान और प्रचण्ड वायु को मरुत् कहते हैं। मरुत् वायुदेव हैं। (८) **उत्तरः**—बढ़कर, उत्कृष्ट, अधिक बड़ा। उत् + तर।

२७. वधू पतिगृह के लिए श्री है

ब्रह्मापरं युज्यतां ब्रह्म पूर्वं
ब्रह्मान्ततो मध्यतो ब्रह्म सर्वतः।
अनाव्याधां देवपुरां प्रपद्य
शिवा स्योना पतिलोके वि राज॥

अथर्व० १४-१-६४

अन्वय—अपरं ब्रह्म, पूर्वं ब्रह्म, अन्ततः ब्रह्म, मध्यतः सर्वतः ब्रह्म युज्यताम्, अनाव्याधां देवपुरां प्रपद्य शिवा स्योना पतिलोके वि राज ॥

शब्दार्थ—(अपरं ब्रह्म) पीछे की ओर ब्रह्म अर्थात् ईश्वर को रक्षक के रूप में रखो। (पूर्वं ब्रह्म) सामने की ओर ईश्वर, (अन्ततः ब्रह्म) अन्त में ईश्वर, (मध्यतः सर्वतः ब्रह्म) मध्य में, सब ओर ईश्वर, (युज्यताम्) रखो। (अनाव्याधाम्) अभेद्य, अवेध्य या व्याधि-रहित, (देवपुराम्) देवों के दुर्ग में, देवों की नगरी में, (प्रपद्य) प्राप्त होकर, पहुँच कर, (शिवा) कल्याणकारी, (स्योना) सुखद होकर, (पतिलोके) पति के परिवार में, (वि राज) विराजो, प्रशंसित रूप में रहो।

हिन्दी अर्थ—ब्रह्म (ईश्वर) को पीछे, आगे, अन्त में, मध्य में और सब ओर (रक्षक के रूप में) रखो। व्याधिरहित देवनगरी में में पहुँच कर कल्याणकारी और सुखदायी होकर (हे वधू) तू पति के परिवार में विराजमान हो (प्रशंसा की पात्र हो)।

Eng. Tr.—O Bride! find the Supreme Being, as a guard all-around you. May you shine in the family of your husband as a helping hand and being gracious. Let the house of your husband be free from diseases, like an abode of the gods.

अनुशीलन—इस मंत्र में वधू को तीन शिक्षाएँ दी गई हैं। इनके पालन से परिवार देवनगरी बन जाता है। ये तीन शिक्षाएँ हैं—१. सर्वत्र परमात्मा का अस्तित्व समझना, २. परिवार को देवपुरी समझना, ३. सदा परिवार के हित में संलग्न रहना।

प्रथम शिक्षा का अभिप्राय यह है कि अपने चारों ओर परमात्मा की सत्ता को समझना। पत्नी परमात्मा को अपना सर्वत्र रक्षक, निर्देशक और सत्पथ-प्रवर्तक समझे। परमात्मा के निरीक्षण में रहने से उसे कभी कोई भय और चिन्ता नहीं होगी। वह पापों में प्रवृत्त नहीं होगी और उसका मन सदा स्वच्छ और प्रसन्न रहेगा। मानसिक और आत्मिक शान्ति का इससे सरल और सुलभ कोई उपाय नहीं है।

द्वितीय शिक्षा का अभिप्राय यह है कि पत्नी पतिगृह को देवों की नगरी समझे। जहाँ शान्ति और स्नेह है, वहाँ रोग और शोक का अभाव है तथा शालीनता और आस्तिकता का वातावरण है। दुःख और शोक का कारण है—आत्मीयता का अभाव, हीनता की भावना, रोग-शोक का अस्तित्व और नास्तिकता का वातावरण। अतएव मंत्र में शिक्षा दी गई है कि सर्वप्रथम घर से रोगों को नष्ट किया जाए, आधि और व्याधि को हटाया जाए तथा आस्तिकता का वातावरण उत्पन्न किया जाए। जहाँ आस्तिकता है, वहाँ देवत्व है और जहाँ नास्तिकता है, वहाँ राक्षसत्व या असुरत्व है। इस असुरत्व को हटाना पत्नी का कर्तव्य है। असुरत्व का अभिप्राय है—कर्तव्यों की उपेक्षा, काम क्रोध मद मोह में फँसे रहना, धन को ही सर्वस्व समझना और परोपकार की भावना का अभाव। इन दुर्गुणों को हटाने से परिवार स्वर्ग हो जाता है, देवपुरी हो जाता है।

तृतीय शिक्षा का अभिप्राय है कि वधू परिवार के लोगों के हितचिन्तन में लग्न रहे। वह परिवार के हित को अपना हित समझे। अतः मंत्र में शिवा और स्योना कहा है। वह मंगलकारिणी और सुखदा हो। तभी उसको सम्राज्ञी या स्वामिनी का पद मिलता है और तभी वह पतिकुल में विराजमान होती है।

टिप्पणी—(१) **ब्रह्म**—ईश्वर, परमात्मा। ईश्वर को सभी ओर अपने रक्षक के रूप में रखो। (२) **युज्यताम्**—रखो, लगाओ। युज् (लगाना, रुधादि) + कर्मवाच्य य + लोट् प्र० १। (३) **अनाव्याधाम्**—व्याधि या रोग आदि से रहित। इसका दूसरा अर्थ—अभेद्य, न तोड़ने या काटने योग्य है। अन् + आ + व्यध् (तोड़ना, तुदादि) + घञ् (अ) + टाप् (आ)। (४) **देवपुराम्**—देवों की नगरी या देवों का दुर्ग। (५) **प्रपद्य**—प्राप्त होकर। प्र + पद् + ल्यप् (य)। (६) **शिवा**—मंगलकारिणी, मंगलमय। (७) **स्योना**—सुखदायिनी होकर। (८) **पतिलोके**—पति के परिवार में, पतिगृह में। (९) **विराज**—विराजो, शोभित हो। राज् (चमकना, भ्वादि, पर०) + लोट् म० १।

२८. पतिव्रता स्त्री पति के लिए वरदान

इन्द्राणीमासु नारिषु, सुभगामहमश्रवम् ।
नह्यस्या अपरं चन, जरसा मरते पतिः,
विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥

ऋग्० १०-८६-११; अथर्व० २०-१२६-११;
तैत्ति० सं० १-७-१३-१; निरुक्त ११-३८

अन्वय—आसु नारिषु अहम् इन्द्राणीं सुभगाम् अश्रवम् । अपरं चन अस्याः पतिः जरसा न हि मरते । इन्द्रः विश्वस्मात् उत्तरः ।

शब्दार्थ—(आसु) इन प्रसिद्ध, (नारिषु) स्त्रियों में, (अहम्) मैंने, (इन्द्राणीम्) इन्द्राणी को, (सुभगाम्) सदा सौभाग्यवती, (अश्रवम्) सुना है । (अपरं चन) और भी, इन्द्राणी की यह और विशेषता है कि, (अस्याः) इसका, (पतिः) पति, (जरसा) वृद्धावस्था से, (नहि) नहीं, (मरते) मरता है । (इन्द्रः) इन्द्र, (विश्वस्मात्) सबसे, (उत्तरः) उत्कृष्ट है ।

हिन्दी अर्थ—इन प्रसिद्ध स्त्रियों में मैंने इन्द्राणी को ही सदा सौभाग्यवती सुना है। इसकी अन्य विशेषता यह है कि इसका पति कभी भी बुढ़ापे से नहीं मरता है। इन्द्र सबसे उत्कृष्ट है।

Eng. Tr.—I know the wife of Indra, the most fortunate-one among the ladies. Her other merits include that her husband never dies of old-age. Lord Indra is supreme of all.

अनुशीलन—इस मन्त्र का अभिप्राय यह है कि संसार में सबसे अधिक सौभाग्यवती स्त्री इन्द्राणी है। बुद्धि को ही शची और इन्द्राणी कहते हैं। बुद्धि से बढ़कर संसार में किसी का सौभाग्य नहीं है। वह

जैसा और जो चाहती है, वैसा ही होगा। संसार की सारी श्री बुद्धि का ही वैभव है।

मन्त्र का कथन है कि जिस प्रकार संसार में इन्द्राणी या बुद्धि सबसे अधिक सौभाग्यवती है, उसी प्रकार वधू भी जीवन में सदा सौभाग्यवती रहे।

मन्त्र में दूसरी बात की ओर निर्देश किया गया है कि स्त्री के सतीत्व में असाधारण बल होता है। स्त्री के सतीत्व के कारण उसका पति असमय में नहीं मरता है। वह दीर्घायु और पूर्णायु होता है। यदि यथार्थ पर ध्यान दें तो वास्तविकता यह है कि पुरुष की बलवत्ता और निर्बलता का कारण स्त्री है। यदि जीवन संयमी है और स्त्री उसमें सहयोग देती है तो पुरुष दीर्घायु होगा और असमय में रोगादि से ग्रस्त होकर नहीं मरेगा। यदि स्त्री के कारण असंयम है तो मृत्यु सदा सिर पर विराजमान रहेगी। अतएव पतिव्रता स्त्री का महत्त्व बताया गया है कि उसका पति असमय में नहीं मरता है और दीर्घायु होता है। संयम और असंयम सती और असती स्त्री पर निर्भर है। सद्बुद्धि और सद्विचार संयम के कारण हैं और असद्विचार असंयम के। दोनों में से एक को चुनना है। जिसको अपना भाग्य जैसा बनाना हो, वैसा दोनों में से एक को चुन ले।

टिप्पणी—(१) **इन्द्राणीम्**—इन्द्राणी को। शरीर में जीवात्मा इन्द्र है। इन्द्राणी या शची बुद्धि है। जीवात्मा बुद्धि का संचालक है, अतः वह शचीपति है। (२) **नारिषु**—नारियों में। वेद में नारी के अर्थ में नारि शब्द भी है। (३) **सुभगाम्**—सौभाग्यवती। (४) **अश्रवम्**—मैंने सुना है। श्रु (सुनना, स्वादि, पर०) + लुङ् उ० १। (५) **अपरं चन**—और भी। अन्य विशेषता यह है कि। (६) **जरसा**—बुढ़ापे से, वृद्धावस्था से। जरा + तृ० १। जरा को जरस्। (७) **मरते**—मरता है। मृ (मरना, भ्वादि, आ०) + लट् प्र० १।

२९. सच्चरित्र पत्नी प्रियतमा

देवो न यः पृथिवीं विश्वधाया
उपक्षेति हितमित्रो न राजा ।
पुरःसदः शर्मसदो न वीरा
अनवद्या पतिजुष्टेव नारी ।।

ऋग्० १–७३–३

अन्वय—यः विश्वधायाः देवः न, हितमित्रः राजा न, पुरःसदः शर्मसदः वीराः न, अनवद्या पतिजुष्टा नारी इव, पृथिवीम् उपक्षेति ।

शब्दार्थ—(यः) जो अग्नि, (विश्वधायाः) विश्व का पालक और धारक है, वह (देवः न) सूर्य देवता के तुल्य, (हितमित्रः) हितकारी मित्रों से युक्त, (राजा न) राजा के तुल्य, (पुरःसदः) सामने बैठे हुए, (शर्मसदः) सुरक्षित स्थान में बैठे हुए, (वीराः न) वीरों के तुल्य, (अनवद्या) निर्दोष, सच्चरित्र, पतिव्रता, (पतिजुष्टा) पति की प्रेमपात्र, (नारी इव) नारी के तुल्य, (पृथिवीम्) पृथिवी पर, (उपक्षेति) निवास करता है, रहता है ।

हिन्दी अर्थ—विश्व का पालक अग्नि पृथिवी पर इसी प्रकार (सर्वप्रिय होकर) रहता है, जैसे सूर्य देवता, जैसे हितकारी मित्रों से युक्त राजा. जैसे सामने और सुरक्षित स्थानों पर बैठे हुए वीरगण, जैसे सच्चरित्र और पति-प्रिय नारी ।

Eng. Tr.—The Fire-god, supporter of the universe and being popular, dwells on the earth, like the sun, like a king having benevolent friends, like the heroes sitting on the safe and open places, like a chaste and beloved wife.

अनुशीलन—इस मन्त्र में वर्णन किया गया है कि किन गुणों वाला व्यक्ति संसार में प्रतिष्ठित और प्रिय होता है । अग्नि संसार का पालक और पोषक है, अतः वह पृथिवी पर अपना साम्राज्य विस्तृत किए हुए हैं । इस बात को स्पष्ट करने के लिए चार अन्य उदाहरण दिये गये हैं—(क)

सूर्यवत्—सूर्य संसार को प्रकाश देता हैं, अन्धकार का निवारण करता है और संसार का पालक है। इसलिए वह संसार में सदा आदर प्राप्त करता है। (ख) राजवत्—राजा राष्ट्र की रक्षा करता है, सबका हित करता है और सबके हितकारी मित्र के तुल्य व्यवहार करता है, अतः वह जनप्रिय होता है। (ग) वीरवत्—वीर अपने प्राणों की चिन्ता न करते हुए देश और समाज की रक्षा करते हैं। समाज के हित को अपना हित समझते हैं और रक्षा कार्य में सदा तत्पर रहते हैं, अतः समाज में वे आदर के पात्र हैं। (घ) सती स्त्रीवत्—समाज में स्त्रियों को आदर और संमान तभी प्राप्त होता है, जब उनका चरित्र पवित्र हो। वे पतिपरायणा हों और पति की विश्वास-पात्र हों। निश्छल और सच्चरित्र स्त्री समाज के लिए, परिवार के लिए और पति के लिए वरदान है। यदि उसे पति का प्रेम प्राप्त है तो वह समाज में सदा आदरणीय रहेगी, पृथिवी पर उसका यश फैलेगा और वह आदर्श गृहिणी मानी जाएगी।

पतिव्रता स्त्री अग्नि-तुल्य है, अतः अग्नि के गौरव-गान में सती स्त्री उपमान के रूप में प्रस्तुत की गई है। उसके तत्सम संमाननीयों में सूर्य, लोकप्रिय राजा और आत्मत्यागी वीरों को रखा गया है।

टिप्पणी—(१) देवः न—सूर्य देवता के तुल्य। न का अर्थ तुल्य या सदृश है। (२) विश्वधायाः—संसार का पालक या पोषक। विश्वधायस्—विश्व (संसार) + धा (पालन करना) + अस् + प्र० १। बीच में य् का आगम। (३) उपक्षेति—रहता है, निवास करता है। उप + क्षि (रहना, अदादि, पर०) + लट् प्र० १। (४) हितमित्रः—हितकारी मित्रों से युक्त। (५) राजा न—राजा के तुल्य। (६) पुरःसदः—सामने बैठे हुए। पुरस् + सद् (बैठना) + प्र० ३। (७) शर्मसदः—सुखद या निर्विघ्न स्थान में बैठे हुए। शर्मन् (सुख) + सद् (बैठना) + प्र० ३। (८) वीराः न—वीरों के तुल्य या पुत्रों के तुल्य। (९) अनवद्या—निर्दोष, सच्चरित्र। अन् + अवद्य (दोष)। (१०) पतिजुष्टा—पति से सेवित, पति की प्रिय। जुष्टा—जुष् + त + टाप् (आ)।

३०. परिश्रमी कन्या सर्वप्रिय

अश्रमदियमर्यमन्, अन्यासां समनं यती ।
अङ्गो न्वर्यमन्नस्या, अन्याः समनमायति ॥

अथर्व० ६-६०-२

अन्वय--हे अर्यमन्, अन्यासां समनं यती इयम् अश्रमत् । हे अङ्ग अर्यमन्, उ अस्याः समनम् अन्याः नु आयति ।

शब्दार्थ--(हे अर्यमन्) हे प्रिय सूर्य, (अन्यासाम्) और कन्याओं के, (समनम्) विवाहादि उत्सवों में, (यती) जाती हुई, (इयम्) यह कन्या, (अश्रमत्) परिश्रम करती थी । (हे अङ्ग अर्यमन्) हे प्रिय सूर्य, (उ) और, (अस्याः) इस कन्या के, (समनम्) विवाहादि उत्सवों में, (अन्याः) अन्य कन्याएँ या स्त्रियाँ, (नु) अवश्य, (आयति) आती हैं ।

हिन्दी अर्थ—हे सूर्य देव ! अन्य कन्याओं के विवाहादि उत्सवों में जाकर यह कन्या कठिन परिश्रम करती थी । अतः हे सूर्यदेव ! इस कन्या के विवाहादि उत्सवों में अन्य स्त्रियां आती हैं ।

Eng. Tr.—O Sun-god ! this maiden worked hard during the marriage of the other girls. Therefore, other ladies take keen part in her marriage.

अनुशीलन—इस मंत्र में लोकप्रिय होने का गुर दिया गया है । किस प्रकार एक स्त्री सर्वप्रिय हो सकती है और लोगों को अपनी ओर आकृष्ट कर सकती है ? इसका प्रकार बताया गया है कि ये दो गुण जहाँ होंगे, वहाँ लोकप्रियता होगी । वे गुण हैं—सहृदयता और पुरुषार्थ । जिसमें सहृदयता होगी, समवेदना होगी, सबके सुख-दुःख में समभागित्व होगा, वह व्यक्ति लोकप्रिय होगा । जब व्यक्ति दूसरों के सुख-दुःख में समवेदना प्रकट करता है और उनके साथ आत्मीयता का व्यवहार करता है तो अन्य व्यक्ति भी उससे आत्मीयता अनुभव करते हैं और उसके सुख-दुःख में सहभागी होते हैं । दूसरा गुण है—पुरुषार्थ या परिश्रम । जो व्यक्ति हर्ष और शोक

के अवसरों पर दूसरे के कार्यों में सहयोग देता है, परिश्रम करता है और स्वयंसेवक के रूप में अपने आपको उपस्थित करता है, उसका समाज में आदर होता है। इसी अभिप्राय को लेकर मंत्र में कहा गया है कि यह कन्या अन्य व्यक्तियों के यहाँ विविध आयोजनों पर सक्रिय सहयोग देती थी, परिश्रम करती थी और आत्मीयता अनुभव करती थी, अतः इसके आयोजनों पर अन्य स्त्रियाँ आती थीं और अपना सहयोग देती थीं।

टिप्पणी—(१) **अश्रमत्**—परिश्रम किया। परिश्रम करके थक गई। श्रम् (परिश्रम करना, परिश्रम करके थक जाना, दिवादि, पर०) + लुङ् प्र० १। (२) **अर्यमन्**—हे अर्यमा देव ! अर्यमन् के अर्थ हैं—घनिष्ट मित्र, सूर्य, न्याय का देवता। (३) **समनम्**—उत्सव, आयोजन, मांगलिक आयोजन। (४) **यती**—जाती हुई। इ (जाना, अदादि) + शतृ (अत्) + ङीप् (ई) प्र० १। (५) **अङ्ग**—संबोधनसूचक अव्यय है। (६) **उ**—और, निश्चय से। (७) **नु**—अवश्य, अब। अव्यय है। (८) **आयति**—आती हैं। आ+इ (जाना, अदादि)+लट् प्र० ३। आयन्ति के स्थान पर आयति है।

३१. स्त्री पतिव्रता हो

आशासाना सौमनसं, प्रजां सौभाग्यं रयिम्।
पत्युरनुव्रता भूत्वा, सं नह्यस्वामृताय कम्॥

अथर्व० १४-१-४२

अन्वय—सौमनसं प्रजां सौभाग्यं रयिम् आशासाना, पत्युः अनुव्रता भूत्वा अमृताय कं सं नह्यस्व।

शब्दार्थ—(सौमनसम्) सौमनस्य, सहृदयता, उत्तम मन, (प्रजाम्) सन्तान, (सौभाग्यम्) सौभाग्य, (रयिम्) धन, ऐश्वर्य, (आशासाना) आशा करती हुई, इच्छा करता हुई, (पत्युः) पति के, (अनुव्रता) अनुकूल आचरण वाली, (भूत्वा) होकर, (अमृताय) अमरत्व के लिए, (कम्) कल्याण या सुख के लिए, (सं नह्यस्व) संनद्ध हो जाओ, तैयार हो, कमर कस लो।

हिन्दी अर्थ—सौमनस्य, सन्तान, सौभाग्य और ऐश्वर्य को कामना करती हुई, (हे स्त्री) तू पतिव्रता होकर अमरत्व के सुख के लिए तैयार हो जा।

Eng. Tr.—O Woman! Longing for benevolence, progeny, fortune and prosperity, be faithful to her husband and be ready to receive the divine bliss.

अनुशीलन—इस मन्त्र में स्त्री के दो कर्तव्यों का मुख्यरूप से उल्लेख है। यदि स्त्री यह चाहती है कि उसके परिवार में सौमनस्य रहे, सन्तान का सुख मिले, सौभाग्य की वृद्धि हो और परिवार में समृद्धि रहे तो उसे निम्नलिखित दो उपाय करने चाहिएँ—१. पति की आज्ञा मानना, २. मोक्ष की कामना करना।

पारिवारिक समृद्धि के लिए आवश्यक है कि पत्नी पति के अनुकूल कार्य करे और पति पत्नी को सदा प्रसन्न रखे। इससे ही दम्पती की सर्वविध उन्नति होती है। इसका ही 'पत्युः अनुव्रता भूत्वा' के द्वारा उपदेश किया गया है। पति के अनुकूल आचरण करना, पतिव्रता होना, पति का हितचिन्तन करना और पति के सुख-दुःख में सहभागी होना, यह स्त्री के लिए अत्यन्त उपादेय है। इससे दम्पती का जीवन सदा सुखमय रहता है।

मन्त्र में दूसरी शिक्षा दी गई है कि दम्पती सदा अमरत्व के लिए, मोक्ष के लिए, प्रयत्नशील रहें। जीवन का लक्ष्य है—मोक्ष की प्राप्ति, सांसारिक दुःखों से सदा के लिए छूटना, पुनर्जन्म के बन्धन से मुक्त होना। इस लक्ष्य को सामने रखकर यदि दम्पती अपना जीवन व्यतीत करते हैं तो उन्हें कभी भी कष्ट नहीं होगा। लक्ष्य उन्नत रखने से जीवन में पवित्रता आती है, सदाचार, शील और संयम आता है। अतः मन्त्र में कहा गया है कि मोक्ष-प्राप्ति के लिए कमर कस लो, सदा संनद्ध रहो और सदा उसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील रहो।

टिप्पणी—(१) आशासाना—आशा करती हुई, कामना करती हुई। आ + शास् (शिक्षा देना, अदादि, आ०) + लट्>शानच् (आन) + टाप् (आ)। आशास्—आशा करना। (२) सौमनसम्—सौमनस्य, शुद्ध हृदय, प्रेमभाव। सुमनस् + अण् (अ)। (३) पत्युः—पति के। पति + ष० १। (४) अनुव्रता अनुकूल आचरण वाली। (५) भूत्वा—होकर। भू (होना, भ्वादि) + त्वा। (६) सं नह्यस्व—तैयार हो, कमर कस लो। सम् + नह् (बाँधना, दिवादि, आ०) + लोट् म० १। (७) अमृताय कम्—अमरत्व की कामना से। कम् का अर्थ कल्याण है। कम् पूर्ववर्ती शब्द पर बल देता है, अतः अर्थ होगा—वस्तुतः अमरत्व के लिये।

३२. पति-परायणा पत्नी

शुचा विद्धा व्योषया, शुष्कास्याभि सर्प मा।
मृदुर्निमन्युः केवली, प्रियवादिन्यनुव्रता॥

अथर्व० ३-२५-४

अन्वय—व्योषया शुचा विद्धा, शुष्कास्या मा अभि सर्प। मृदुः निमन्युः केवली, प्रियवादिनी अनुव्रता (भव)।

शब्दार्थ—(व्योषया) विशेष दाहक, (शुचा) शोक से, (विद्धा) विद्ध, पीडित, (शुष्कास्या) सूखे मुंहवाली, शोक से शुष्क मुखवाली, (मा) मुझे, मुझ पति को, (अभिसर्प) समीप आ। (मृदुः) कोमल, (निमन्युः) क्रोध-रहित, (केवली) एकमात्र मेरी, मेरे शरण में आई हुई, (प्रियवादिनी) मधुर बोलने वाली, (अनुव्रता) मेरे अनुकूल आचरण करनेवाली, (भव) हो।

हिन्दी अर्थ—(हे विरहपीडित स्त्री) तू विशेष दाहक शोक से पीडित और शुष्क-कंठ है, अतः तू मेरे पास आ। तू कोमल स्वभाव वाली, क्रोधरहित, एकमात्र मेरी, मधुर वचन बोलने वाली और मेरे अनुकूल आचरण करने वाली हो।

Eng. Tr.—O Woman! You are suffering from the pangs of separation. Your throat in dry. Therefore, come

to me. May you be generous, free from anger, only my beloved, sweet-tongued and devoted to me.

अनुशीलन-- इस मंत्र में वियोगिनी स्त्री का चित्रण किया गया है और उसके गुणों पर प्रकाश डाला गया है। स्त्री का हृदय स्वाभाविक रूप से कोमल होता है। वह पति-वियोग को कठिनाई से सहन कर सकती है। प्रणय-कोप में भी उसका हृदय क्षुब्ध रहता है। अतः मंत्र में कहा गया है कि वह प्रणय-कोप से पीड़ित है, उग्र सन्ताप से संतप्त है और उसका मुँह सूख गया है, अतः वह अपना कोप छोड़कर पति से मेल कर ले, उसके पास जावे। मंत्र के उत्तरार्ध में स्त्री के कतिपय गुणों का वर्णन है। सुयोग्य गृहिणी में ये गुण होने चाहिएँ—(क) कोमलता। स्त्री का स्वाभाविक गुण हैं—कोमलता, सुशीलता और विनम्रता। इन गुणों से ही वह अपने पति को वश में रखती है। (ख) अक्रोध। स्त्री में अक्रोध गुण आवश्यक है। क्रोध पारिवारिक सामंजस्य और संतुलन को बिगाड़ देता है, अतः इसका निवारण अत्यन्त अभीष्ट है। (ग) पातिव्रत्य। स्त्री का पतिव्रता होना उत्कृष्ट गुण है। केवली का अभिप्राय है कि जो अपने पति को ही अपना सर्वस्व मानती है अर्थात् पति-परायणा या पति-प्राणा। (घ) मृदुभाषिता। मधुर बोलना पत्नी के लिए उत्तम गुण है। 'तुलसी मीठे वचन ते, सुख उपजत चहुँ ओर' 'कागा काको हरत है, कोयल काको देत। मीठी वाणी बोलकर सबका मन हर लेत'। परिवार को वश में करने के लिए मधुर वचन वशीकरण मंत्र के तुल्य है। (ङ) आज्ञाकारिता। पति और बड़ों की आज्ञा मानना स्त्री के लिए सुखद गुण है। वह बड़ों का कहना मानकर अपना और परिवार का हित कर सकती है। आज्ञाकारिता से परिवार का संतुलन ठीक रहता है। पत्नी के आज्ञाकारी होने पर उसके पुत्रादि भी आज्ञाकारी होते हैं।

टिप्पणी—(१) **शुचा**—शोक से। शुच् + तृ० १। (२) **विद्धा**—बींधी हुई। व्यध् (बींधना, तुदादि, पर०) + क्त (त) + आ। (३) **व्योषया**—विशेष रूप से जलाने वाली। वि + उष् (जलाना, भ्वादि) + घञ् (अ) + टाप् = व्योषा + तृ० १। (४) **शुष्कास्या**—शुष्क-सूखे, आस्य-मुखवाली। (५) **अभिसर्प**-समीप आ। सृप् (जाना, रेंगना, भ्वादि, पर०) + लोट्

म० १। (६) मा–मुझको। माम् का संक्षिप्त रूप है। (७) निमन्यु–क्रोधरहित। नि–नहीं, मन्यु–क्रोध। (८) केवली—केवल पतिको शरण मानने वाली, एकमात्र पति की होकर।

३३. तेजस्वी स्त्री का पति दीर्घायु

पुनः पत्नीमग्निरदाद्, आयुषा सह वर्चसा।
दीर्घायुरस्या यः पतिः, जीवाति शरदः शतम्॥

ऋग्० १०-८५-३९; अथर्व० १४-२-२; निरुक्त ४-२५

अन्वय—अग्निः आयुषा वर्चसा सह पुनः पत्नीम् अदात्। अस्याः यः पतिः (सः) दीर्घायुः शरदः शतं जीवाति।

शब्दार्थ—(अग्निः) अग्नि ने, (आयुषा) दीर्घ आयु और (वर्चसा सह) तेजस्विता के साथ, (पुनः) फिर, (पत्नीम्) पत्नी को, (अदात्) पति के लिए दिया। (अस्याः) इस स्त्री का, अर्थात् अग्निसाक्षिक दी हुई इस स्त्री का, (यः पतिः) जो पति है, वह, (दीर्घायुः) दीर्घायु होकर, (शरदः शतम्) सौ वर्ष तक, (जीवाति) जीवित रहे।

हिन्दी अर्थ—अग्नि ने दीर्घायु और तेजस्विता गुणों के साथ फिर इस पत्नी को पति के लिए दिया है। (अग्निसाक्षिक दी हुई) इस स्त्री का पति दीर्घायु होकर सौ वर्ष तक जीवित रहे।

Eng. Tr.—The Fire-god has offered this bride, gifting her with virtues of longevity and radiance, to the husband. May her husband attain longevity and live for a hundred year.

अनुशीलन—विवाह में पत्नी अग्नि को साक्षी रखकर पति को दी जाती है। इस कार्य को मंत्र ने वर्णन किया है कि स्वयं अग्नि ही पति को यह वधू अर्पित करता है। वधू के साथ वह दो गुण भी भेंट करता है। वे दोनों गुण हैं—आयु और वर्चस्।

दीर्घ आयु और वर्चस्विता, ये दोनों गुण वस्तुतः मनुष्य को अग्नि की की देन हैं। दीर्घायु का आधार है—संयमी जीवन, कर्मठता, उत्साह, आशावादिता और अध्यवसाय। जहाँ उत्साह और अध्यवसाय आदि गुण हैं, वहाँ दीर्घायुष्य स्वयं सिद्ध है। वर्चस्विता उत्कृष्ट गुण है। यह सरलता से प्राप्त नहीं होता है। यह जीवन का सार है। वीर्य की परिणति ओजस् में होती है। वीर्य-संरक्षण ओजस्विता और वर्चस्विता का आधार है। यह जीवन का कठिनतम कार्य है। मानवीय दुर्बलताएँ काम-भावना को जागृत करती हैं और उससे संचित वीर्य का नाश होता है। इसी से मनुष्य में ओजस्विता या वर्चस् नहीं आने पाता।

इन दोनों गुणों का आधार अग्नि है। यदि शारीरिक अग्नि प्रदीप्त है तो मल स्वयं नष्ट हो जाएँगे। प्राणरूपी अग्नि प्राणों को शुद्ध करती है, जाठराग्नि खाए हुए भोजन से रस निकालती है और ज्ञानाग्नि मनुष्य के कर्म-बन्धन को भस्मसात् करती है। इस प्रकार यह अग्नि की ही कृपा है कि मनुष्य ओजस्वी, तेजस्वी, वर्चस्वी और दीर्घायु होता है। दम्पती का कर्तव्य का कर्तव्य है कि वह अग्नि के उपहार को सदा संभाल कर रखें।

टिप्पणी—(१) पुनः—फिर। अग्नि बाल्यकाल में कन्या का रक्षक था। अब अग्निसाक्षिक विवाह होने से वह पति को कन्या देता है। (२) अदात्—दिया। दा (देना, जुहोत्यादि, पर०) + लुङ् प्र० १। (३) आयुषा—दीर्घ आयु से। आयुष् + तृ० १। (४) वर्चसा सह—तेजस्विता गुण के साथ। वर्चस् + तृ० १। (५) जीवाति—जीवित रहे। जीव् (जीवित रहना, भ्वादि, प०)+लेट् प्र० १। (६) शरदः शतम्—सौ वर्ष तक। शरद् (वर्ष) + ष० १।

३४. पत्नी का व्यवहार प्रेमपूर्ण हो

अभ्रातृघ्नीं वरुणापशुघ्नीं बृहस्पते।
इन्द्रापतिघ्नीं पुत्रिणीमास्मभ्यं सवितर्वह॥

अथर्व० १४-१-६२

अन्वय—हे वरुण, हे बृहस्पते, हे इन्द्र, हे सवितः, अभ्रातृघ्नीम्, अपशुघ्नीम् अपतिघ्नीम् पुत्रिणीम् अस्मभ्यम् आ वह ।

शब्दार्थ—(हे वरुण, हे बृहस्पते, हे इन्द्र, हे सवितः) हे वरुणदेव, हे बृहस्पति, हे इन्द्र और हे सविता देवो, (अभ्रातृघ्नीम्) भाइयों को हानि न पहुँचाने वाली, (अपशुघ्नीम्) पशुओं को हानि न पहुँचाने वाली, (अपतिघ्नीम्) पति को हानि न पहुँचाने वाली, (पुत्रिणीम्) पुत्र को जन्म देने वाली वधू को, (अस्मभ्यम्) हमें, (आ वह) प्राप्त कराइए ।

हिन्दी अर्थ—हे वरुण, बृहस्पति, इन्द्र और सविता देवो ! भाइयों पशुओं और पति को हानि न पहुँचाने वाली, योग्य पुत्र को जन्म देने वाली वधू हमें प्राप्त कराइए ।

Eng. Tr.—O Gods Varuna, Bṛhaspati, Indra and Savitar ! May you bless us with a bride, harmless to the brothers, animals and the husband and begetting worthy sons.

अनुशीलन—इस मंत्र में पत्नी के कतिपय कर्तव्यों का निर्देश है। चार देवों से प्रार्थना की गई हैं कि वे सुशील एवं सद्गुण-संपन्न वधू हमें दें। ये चार देव चार गुणों के प्रतीक हैं। वरुण जल का देवता है। यह शान्ति, कोमलता, सुशीलता और सोम्यगुणों का दाता है। बृहस्पति ज्ञान का देवता है। यह ज्ञान, विद्या, शिक्षा और विवेक देता है। इन्द्र शक्ति और ऐश्वर्य का देवता है। यह शक्ति, उत्साह, अव्यवसाय और वैभव देता है। सविता प्रेरणा का स्रोत है। इन चारों देवों से प्रार्थना की गई है कि इन गुणों से युक्त वधू हमें दें।

मंत्र में स्त्री के कर्तव्यों का निर्देश किया गया है कि वह अपने भाइयों को, पशुओं को और अपने पति को कष्ट देने वाली न हो। यदि पत्नी सोम्य और सुशील होगी तो सदा इस बात का ध्यान रखेगी कि उसके किसी कार्य या व्यवहार से उसके पति को और भाइयों को कोई कष्ट न होने पावे। वह पशुओं पर भी दयाभाव रखेगी। इस प्रकार की पत्नी ही कुल की वृद्धि

कर सकती है। ऐसी पत्नी ही योग्य सन्तान को जन्म देगी और कुल का नाम ऊँचा करेगी।

टिप्पणी—(१) अभ्रातृघ्नीम्—भाइयों को हानि न पहुँचाने वाली। भाइयों का नाश न करने वाली। यहाँ हन् धातु का अर्थ वध या हत्या न होकर हानि पहुँचाना है। अ + भ्रातृ (भाई) + हन्+क (अ) + ङीप् (ई) + द्वि० १। हन् धातु से क प्रत्यय होने पर घ्न रूप बनता है। (२) अपशुघ्नीम्—पशुओं को हानि न पहुँचाने वाली। अ+पशु + हन्+क। पूर्ववत्। (३) अपतिघ्नीम्—पति को हानि न पहुँचाने वाली, पति का अशुभ न सोचने वाली। अ + पति + हन् + क। पूर्ववत्। (४) पुत्रिणीम्—पुत्र को जन्म देने वाली। पुत्र + इन् + ङीप् (ई) + द्वि० १। (५) अस्मभ्यम्—हमारे लिए। अस्मद् (हम) + च० ३। (६) आ वह—लाओ, प्राप्त कराओ। वह् (लाना, भ्वादि, पर०) + लोट् म० १।

३५. जागरूक पत्नी की समृद्धि

इह प्रियं प्रजया ते समृध्यताम्,
अस्मिन् गृहे गार्हपत्याय जागृहि।
एना पत्या तन्वं सं सृजस्व,
अधा जिव्री विदथमा वदाथः॥

ऋग् १०-८५-२७, अथर्व० १४-१-२१; निरुक्त ३-२१

अन्वय—इह प्रजया ते प्रियं समृध्यताम्। अस्मिन् गृहे गार्हपत्याय जागृहि। एना पत्या तन्वं सं सृजस्व। अध जिव्री विदथम् आ वदाथः।

शब्दार्थ—(इह) इस पतिकुल में, यहाँ, (प्रजया) सन्तान से, पुत्रादि की प्राप्ति से, (ते) तेरा, (प्रियम्) प्रिय, कल्याण, (समृध्यताम्) वृद्धि को प्राप्त हो। (अस्मिन्) इस, (गृहे) घर में, (गार्हपत्याय) गृहस्वामित्व के लिए गृहस्थ धर्म के लिए, (जागृहि) जागरूक रह। (एना) इस, (पत्या) पति से, (तन्वम्) अपने शरीर को, (सं सृजस्व) मिलाओ, स्पर्श करो। (अध) और,

(जिव्री) वृद्धावस्था तक, (विदथम्) यज्ञ में, ज्ञान-चर्चाओं में, (आ वदाथः) तुम दोनों बोलना, भाषण करना।

हिन्दी अर्थ—(हे वधू) इस पतिकुल में सन्तान-प्राप्ति के द्वारा तेरे कल्याण की वृद्धि हो। इस पतिगृह में गृहस्वामित्व के लिए जागरूक रहना। इस पति से अपने शरीर का स्पर्श कराना और वृद्धावस्था तक ज्ञानचर्चाओं में तुम दोनों बोलना।

Eng. Tr.—O Bride! be fortunate in the family of your husband by giving birth to a son. You ought to remain ever vigilant for the service and security of the family. Be united with your husband. May both of you take part in the academic discussions till the end of your life.

अनुशीलन—इस मन्त्र में स्त्री के चार कर्तव्यों का उल्लेख है:— सन्तान-प्राप्ति, सदा जागरूकता, पति से मिलन, ज्ञान-चर्चाओं में भाग लेना। (क) वंश-परम्परा की अविच्छिन्नता के लिए आवश्यक है कि योग्य सन्तान प्राप्त हो। योग्य सन्तान की प्राप्ति सौभाग्य का सूचक है। योग्य सन्तानों से परिवार की श्रीवृद्धि भी होती है। (ख) मन्त्र का कथन है कि गार्हपत्य धर्म के सुखद निर्वाह के लिए आवश्यक है कि पत्नी सदा जागरूक रहे। आलस्य, प्रमाद, दीर्घसूत्रता एवं अकर्मण्यता पारिवारिक श्रीवृद्धि में बाधक हैं। अतः पत्नी का कर्तव्य है कि वह सदा सभी कार्यों के प्रति जागरूक रहे। परिवार की व्यवस्था सुचारु रूप में चल रही है या नहीं, यह देखना उसका उत्तरदायित्व है।

(ग) पति से मिलना, उसके साथ उठना-बैठना, उस पर अपने हार्दिक भाव प्रकट करना आदि बातें दोनों की आत्मीयता के सूचक हैं। इससे दोनों का स्नेह-सम्बन्ध निरन्तर प्रगाढ होता है। (घ) चतुर्थ पंक्ति में पति-पत्नी दोनों के लिए आदेश है कि वे सभाओं में, शास्त्रार्थों में और ज्ञान-चर्चाओं में भाग लें और बोलें। शास्त्रार्थों आदि में दम्पती तभी भाग ले सकेंगे, जब उनके ज्ञान का स्तर भी पर्याप्त ऊँचा होगा। इसके लिए

आवश्यक होगा कि पति-पत्नी भी ज्ञानी हों, स्वाध्यायशील हों विचारक और चिन्तक हों। यदि स्वाध्याय आदि के प्रति दम्पती की प्रवृत्ति है तो स्वयं ही उनका मार्ग प्रशस्त होगा।

टिप्पणी—(१) **प्रजया**—सन्तान से, सन्तान-प्राप्ति से। प्रजा + तृ० १। (२) **समृध्यताम्**— बढ़े, समृद्ध हो। सम् + ऋध् (बढ़ना, स्वादि, पर०) + कर्मवाच्य लोट् प्र० १। (३) **गार्हपत्याय**—गृहपतित्व के लिए, गृहस्थ धर्म के लिए। गृहपति + ण्य (य) + च० १। (४) **जागृहि**—जागना, जागरूक रहना। जागृ (जागना, अदादि, पर०) लोट् म० १। (५) **एना**—इस। अनेन, एनेन का संक्षिप्तरूप है। इदम् + तृ० १। (६) **सं सृजस्व**—मिलाना, स्पर्श करना। सृज् (बनाना, तुदादि, आ०) + लोट् म०। (७) **अध**—और। छान्दस दीर्घ अधा। (८) **जिव्री**—वृद्धावस्था तक। जॄ (वृद्ध होना) धातु से बना है। इसी अर्थ में जीर्वि शब्द भी है। (९) **विदथम्**—यज्ञ में, ज्ञानचर्चा या शास्त्रार्थ में। (१०) **आवदाथः**—बोलना, भाषण करना। वद् (बोलना, भ्वादि, पर०) + लेट् म० २। (११) **पाठभेद**—अथर्ववेद में यह पाठभेद है—(क) प्रजया के स्थाथ पर प्रजायै (सन्तान के लिए); (ख) संसृजस्व का संस्पृशस्व (छूना, स्पर्श करना), (ग) अत्रा जिव्री के स्थान पर अर्थ जीर्विः (और वृद्धावस्था तक)।

३६. पत्नी सदा जागरूक हो

प्र बुध्यस्व सुबुधा बुध्यमाना
दीर्घायुत्वाय शतशारदाय।
गृहान् गच्छ गृहपत्नी यथासो
दीर्घं त आयुः सविता कृणोतु ॥

अथर्व० १४-२-७५

अन्वय— सुबुधा बुध्यमाना शतशारदाय दीर्घायुत्वाय प्र बुध्यस्व। गृहान् गच्छ, यथा गृहपत्नी असः। सविता ते आयुः दीर्घं कृणोतु।

शब्दार्थ—(सुबुधा) प्रबुद्धता के द्वारा, (बुध्यमाना) जागरूक रहते हुए, (शतशारदाय) सौ वर्ष के, (दीर्घायुत्वाय) दीर्घ आयु के लिए,

(प्र बुध्यस्व) उठो, जागृत हो। (गृहान्) पति के गृह को, (गच्छ) जाओ, (यथा गृहपत्नी) गृहस्वामिनी के तुल्य, (असः) रहना। (सविता) सूर्य, (ते) तेरी, (आयुः) आयु को, (दीर्घम्) दीर्घ, बड़ी, (कृणोतु) करे।

हिन्दी अर्थ—(हे वधू) तू निरन्तर प्रबुद्ध भाव से जागरूक रहते हुए, सौ की दीर्घ आयु के लिए, सावधान रहना। पति के घर जाओ और वहाँ गृहस्वामिनी के तुल्य रहना। सूर्य तुझे दीर्घायु करे।

Eng. Tr.—O Bride ! may you remain ever-vigilant and careful for a life of hundred years. Go to the husband's house and live there as the mistress of the house. May the Sun-god bestow on you a long life.

अनुशीलन—इस मन्त्र में पत्नी के दो कर्तव्यों का निर्देश है—ज्ञान से जागरूक रहना और गृहपत्नी का काम संभालना। मन्त्र का अभिप्राय है कि पत्नी स्वयं विदुषी हो और अपने कर्तव्यों के प्रति जागरूक हो। **'सुबुधा बुध्यमाना'** के द्वारा इस भाव को प्रकट किया गया है। जहाँ सुबोध होगा, वहाँ प्रबुद्धता होगी और कर्तव्यों का ज्ञान होगा। अतः स्त्री के लिए आवश्यक है कि वह विदुषी और ज्ञानवती हो। अपने कर्तव्यों को समझे और जीवन के प्रति सजग रहे। इस प्रवुद्धता का फल बताया गया है—दीर्घ आयु की प्राप्ति एवं शतायु होना।

स्त्री का दूसरा कर्तव्य बताया गया है कि वह पति-गृह में पहुँच कर गृहपत्नी या गृहस्वामिनी का काम संभाले। पत्नी का स्वयं उत्तरदायित्व है कि पति-गृह की सुरक्षा एवं व्यवस्था को अपने हाथ में ले। इस सुरक्षा और व्यवस्था को करते हुए अपने स्वास्थ्य पर पूरा ध्यान रखे, जिससे उसे पूर्ण आयु प्राप्त हो। पूर्ण आयु की प्राप्ति के लिए आहार-विहार, भोजन, भजन, शयन, भ्रमण आदि को नियन्त्रित करना होगा। ऐसा करने से स्त्री को दीर्घ आयु और सुख प्राप्त होगा।

टिप्पणी—(१) प्र बुध्यस्व—उठो, जागो, सावधान हो। बुध् (जागना, दिवादि, आ०) + लोट् म० १। (२) सुबुधा—प्रबुद्धता से, निरन्तर जागरूकता से। सुबुध् (प्रबुद्धता) + तृ० १। (३) बुध्यमाना—जागते हुए, जागरूक रहते हुए। बुध् (जागना, दिवादि) + लट् > शानच् (आन) + टाप् (आ)। (४) दीर्घायुत्वाय—दीर्घ आयु के लिए। दीर्घायु + त्व + च० १। (५) शतशारदाय—शत–सौ, शारदाय–वर्ष के लिए। शरद् (वर्ष) + अण् = शारद + च० १। (६) गच्छ—जाओ। गम् (जाना) + लोट् म० १। (७) असः—होना। अस् (होना, अदादि, पर० + लेट् म० १। (८) कृणोतु—करे। कृ (करना, स्वादि, पर०) + लोट् प्र० १।

३७. पत्नी विदुषी, वक्ता और तेजस्विनी हो

अहं केतुरहं मूर्धाऽहमुग्रा विवाचनी।
ममेदनु क्रतुं पतिः सेहानाया उपाचरेत्॥

ऋग्० १०-१५९-२

अन्वय—अहं केतुः, अहं मूर्धा, अहम् उग्रा विवाचनी (अस्मि)। सेहानायाः मम इत् क्रतुम् अनु पतिः उपाचरेत्।

शब्दार्थ—(अहम्) मैं, (केतुः) ध्वज के तुल्य अग्रगण्य, ज्ञानवती, विदुषी हूँ। (अहम्) मैं, (मूर्धा) सब स्त्रियों में मूर्धन्य हूँ, शिर के तुल्य हूँ। (अहम्) मैं, (उग्रा) प्रबल, तीक्ष्ण, (विवाचनी) बोलने वाली, वक्ता हूँ। (सेहानायाः) विजयिनी, सपत्नियों पर विजय प्राप्त करने वाली, (मम इत्) मेरी ही, (क्रतुम् अनु) बुद्धि के अनुसार, इच्छा के अनुसार, (पतिः) पति, (उपाचरेत्) आचरण करे।

हिन्दी अर्थ—मैं ज्ञान में अग्रगण्य हूँ, मैं स्त्रियों में मूर्धन्य हूँ, मैं उच्च कोटि की वक्ता हूँ। मुझ विजयिनी की इच्छा के अनुसार ही मेरा पति आचरण करे।

Eng. Tr.—I am the most intelligent, foremost and excellent woman orator. I, being victorious, wish my husband to act as per my desire.

अनुशीलन—इस मंत्र में शची के गुणों का वर्णन है। ऋग्वेद के इस सूक्त में ६ मंत्र हैं। इन ६ मंत्रों में शची के गौरव का वर्णन है।

शची और इन्द्राणी बुद्धि के नाम हैं। इस सूक्त में बुद्धि के गौरव का वर्णन है। इन्द्र जीवात्मा है। उसे शचीपति भी कहते हैं, अष्टाध्यायी (५-२-९३) 'इन्द्रियम्०' की व्याख्या में काशिका में स्पष्ट रूप से 'इन्द्र आत्मा' कहा गया है। इन्द्र जीवात्मा है और शची बुद्धि। शरीर-संचालन और कर्तृत्व का सारा काम बुद्धि करती है, अतः वह एक प्रकार से जीवात्मा की भी अधिष्ठात्री है। बुद्धि जैसा कहती है, वैसा जीवात्मा करता है। इसका ही इस मंत्र में वर्णन है। शची स्त्री है, अतः इस मंत्र के द्वारा स्त्री के गुणों पर भी प्रकाश पड़ता है। शची के ये गुण बताए गए हैं :—

(क) **केतुः**— वह ज्ञान में अग्रगण्य है। केतु का अर्थ ध्वजा भी है, वह ध्वजा के तुल्य आगे चलती है। स्त्री का कर्तव्य है कि वह विदुषी हो और ज्ञान में अग्रगण्य हो। कर्तव्य कर्मों में वह ध्वजा के तुल्य आगे चले।

(ख) **मूर्धा**—वह मूर्धन्य है, उत्कृष्ट है और सबसे प्रमुख है। स्त्री का कर्तव्य है कि वह समाज में मूर्धन्य बनकर रहे। उसमें हीनता की भावना न हो और ज्ञान-विज्ञान में श्रेष्ठ हो।

(ग) **उग्रा विवाचनी**—उग्र बोलने वाली है। स्त्री का कर्तव्य है कि वह भाषण आदि कार्यों में उत्कृष्ट हो। सभा संसद् आदि में अपने विचारों को निर्भीकतापूर्वक रख सके। उसमें भय और संकोच की भावना न हो।

(घ) **सेहाना**—वह निरन्तर विजयिनी है। स्त्री का कर्तव्य है कि वह सदा विजयिनी हो। घर, बाहर या युद्ध जहां भी वह जाए, सफलता और विजय प्राप्त करके लौटे। ऐसी ही स्त्री का पति उसके वश में होता है और उसके कथनानुसार कार्य करता है।

टिप्पणी—(१) **केतुः**—ध्वज, ज्ञान। ध्वज के तुल्य अग्रगण्य।

ज्ञानयुक्त, विदुषी। चित् + उ। च् को क्। (२) मूर्धा—सिर के तुल्य उत्कृष्ट, मूर्धन्य, प्रमुख। मूर्धन् + प्र० १। (३) उग्रा—तीक्ष्ण, उत्कृष्ट। (४) विवाचनी—बोलने वाली, वक्ता। वि + वच् (बोलना) + णिच् + ल्युट् (अन) + ङीप् (ई)। (५) मम इत्—मेरे ही। इत्—ही। (६) क्रतुम् अनु—बुद्धि के अनुसार, इच्छा के अनुसार। क्रतु—बुद्धि, इच्छा, कर्म, ज्ञान। (७) सेहानायाः—विजयिनी, सपत्नी आदि पर विजय प्राप्त करने वाली का। सह् (जीतना, भ्वादि, आ०) + लिट् > कानच् (आन), द्वित्व = सेहान + टाप् + ष० १। सेहान—जिसने विजय प्राप्त कर ली है। (८) उपाचरेत्—आचरण करे, कार्य करे। उप + आ + चर् (चलना, भ्वादि, पर०) + विधिलिङ् प्र० १।

३८. स्त्री में शारीरिक सौन्दर्य हो

इदमहं रुशन्तं ग्राभं, तनूदूषिमपोहामि।
यो भद्रो रोचनस्तमुदचामि॥

अथर्व० १४-१-३८

अन्वय—इदम् अहं तनूदूषिं रुशन्तं ग्राभम् अपोहामि। यः भद्रः रोचनः तम् उदचामि।

शब्दार्थ—(इदम्) यह, (अहम्) मैं, (तनूदूषिम्) शरीर को दूषित करने वाले, (रुशन्तम्) दुःखद, सफेद, (ग्राभम्) छूत के रोग को, दाग धब्बों को, (अपोहामि) दूर करती हूँ। (यः) जो, (भद्रः) शुभ, (रोचनः) रंग, वर्ण, रूप है, (तम्) उसको, (उदचामि) ऊपर लाती हूँ, उभारती हूँ।

हिन्दी अर्थ—मैं शरीर को दूषित करने वाले (असुन्दर बनाने वाले) सफेद दागों को दूर करती हूँ और जो सुन्दर रंग है, उसको उभारती हूँ।

Eng. Tr.—I remove all sorts of skin diseases deforming the body and make-up my beauty.

अनुशीलन—इस मंत्र में शिक्षा दी गई है कि स्त्री अपने सौन्दर्य और शरीर-रक्षा के प्रति सदा सावधान रहे। शरीर में किसी प्रकार का भी चर्मरोग, खाज-खुजली, कुष्ठ आदि हो तो उसकी तुरन्त चिकित्सा करे और सभी प्रकार के चर्मरोगों से मुक्त हो। सभी प्रकार के चर्मरोग शारीरिक सौन्दर्य को नष्ट करते हैं, अतः उनका निवारण आवश्यक कर्तव्य है।

साथ ही यह भी शिक्षा दी गई है कि जिन साधनों से शरीर के सौन्दर्य की वृद्धि हो सकती है, उन सभी साधनों को अपनाया जाए। इन साधनों में प्रमुख रूप से इन कार्यों को अपनाया जाए :—दैनिक स्नान, भ्रमण, शारीरिक व्यायाम, प्राणायाम, हलका भोजन, नियमित सोना और जागना तथा संयम का जीवन। इन साधनों से शुद्ध रक्त का संचार होता है और शरीर के सौन्दर्य की वृद्धि होती है।

टिप्पणी—(१) **रुशन्तम्**-दुःखदायी, सफेद रंग के। रुश् (हिंसा करना, तुदादि, पर०) + शतृ + द्वि० १। (२) **ग्राभम्**—पकड़ने वाली बीमारी, दाग-धब्बे की बीमारी। ग्रह् (पकड़ना) + घञ् (अ)। ह् को भ्। (३) **तनूदूषिम्**—तनू-शरीर को, दूषिम्—दूषित करने वाली। (४) **अपोहामि**—दूर करता हूँ, हटाता हूँ। अप + ऊह् (हटाना, भ्वादि, पर०) + लट् उ० १। (५) **भद्रः**—शुभ, कल्याणकारी, सुन्दर। (६) **रोचनः**—रंग, वर्ण, चमकने वाला रंग। रुच् (चमकना, भ्वादि) + अन। (७) **उदचामि**—ऊपर उठाता हूँ, ऊपर लाता हूँ, उभारता हूँ। उद् + अच् (झुकाना, भ्वादि, पर०)+लट् उ० १।

३९. स्त्री में वर्चस्विता हो

यच्च वर्चो अक्षेषु, सुरायां च यदाहितम्।
यद् गोष्वश्विना वर्चः, तेनेमां वर्चसावतम्॥

अथर्व० १४-१-३५

अन्वय—हे अश्विना, यत् च अक्षेषु वर्चः, यत् सुरायां च आहितम्। यत् गोषु वर्चः, तेन वर्चसा इमाम् अवतम्।

शब्दार्थ—(हे अश्विना) हे अश्विनी देवो, (यत् च) जो, (अक्षेषु) आँखों में, (वर्चः) तेजस्विता है, आकर्षण शक्ति है। (यत् सुरायां च) और जो धन-धान्य-समृद्धि में आकर्षण शक्ति, (आहितम्) रखी है। (यत्) जो, (गोषु) गायों में, (वर्चः) तेजस्विता, आकर्षण शक्ति है। (तेन वर्चसा) उस तेज से, उस आकर्षण शक्ति से, (इमाम्) इस वधू की, (अवतम्) रक्षा करो। उस तेज से इसे युक्त करो।

हिन्दी अर्थ—हे अश्विनी देवो ! आँखों में जो आकर्षण शक्ति है, धन-धान्य-समृद्धि में जो आकर्षण शक्ति विद्यमान है, गायों में जो आकर्षण शक्ति है, उस आकर्षण शक्ति से इस वधू को सुरक्षित कीजिए।

Eng. Tr.—O gods Ashvins ! may you guard this bride with that radiance, which exists in the eyes, in the food and in the cows.

अनुशीलन—इस मन्त्र में अश्विनी देवों से प्रार्थना की गई है कि वे वधू को असाधारण आकर्षण शक्ति दें। उदाहरण के रूप में अक्ष, सुरा और गाय को रखा गया है। जिस प्रकार आँखों में, धन-धान्य में और गायों में असाधारण आकर्षण शक्ति है, उसी प्रकार की आकर्षण शक्ति वधू को भी प्राप्त हो।

वर्चस् क्या है ? वस्तु में जो लावण्य, आकर्षण शक्ति और तेज होता है, उसे वर्चस् कहते हैं। वर्चस् सौन्दर्य का निखरा हुआ रूप है। प्रत्येक स्त्री में वर्चस् की आवश्यकता है, इसके द्वारा ही उसमें आकर्षण आता है। जिस वस्तु में आकर्षण होता है, लोग उस पर ही झुकते हैं। स्त्री में यह वर्चस् जितना अधिक होगा, उतनी ही उसकी आकृति मनोहर और आकर्षक होगी।

टिप्पणी—(१) वर्चः—तेज, तेजस्विता। यहाँ आकर्षण शक्ति अर्थ है। जिसे देखकर आकृष्ट होते हैं। वर्चस् + प्र० १। (२) अक्षेषु—आँखों में अक्ष + स० ३। आँखों में आकर्षण शक्ति है। अक्ष का अर्थ जुए की गिट्टियाँ (पासे) भी है। (३) सुरायाम्—अन्नसमृद्धि में। सुरा का अर्थ अन्न है।

'अन्नं सुरा', तैत्ति० ब्रा० १-३-३-५ । सुरा का अर्थ यश भी है। 'यशो हि सुरा' शत० ब्रा० १२-७-३-१४ । सुरा का मदिरा अर्थ भी है। (४) आहितम्—रखा है, है। आ + धा (रखना) + क्त (त)। धा को हि। (५) गोषु—गायों में। (६) अवतम्—रक्षा करो, सुरक्षित रखो। स्त्री अपने आकर्षण शक्ति के द्वारा सुरक्षित रहे। अव् (रक्षा करना, भ्वादि, पर०) + लोट् म० २।

४०. नारी में आत्मिक बल हो

आत्मन्वत्युर्वरा नारीयमागन्
तस्यां नरो वपत बीजमस्याम्।
सा वः प्रजां जनयद् वक्षणाभ्यो
बिभ्रती दुग्धमृषभस्य रेतः।।

अथर्व० १४-२-१४

अन्वय—हे नरः, अत्मन्वती उर्वरा इयं नारी आ आगन्, तस्याम् अस्यां बीजं वपत। सा ऋषभस्य दुग्धं रेतः बिभ्रती, वक्षणाभ्यः वः प्रजां जनयत्।

शब्दार्थ—(हे नरः) हे मनुष्यो, (आत्मन्वती) आत्मिक बल वाली, आत्मविश्वास वाली, (उर्वरा) संतानोत्पादन में समर्थ, (इयम्) यह, (नारी) पत्नी, वधू, (आगन्) पति के घर आई है। (तस्याम् अस्याम्) उस इस वधू में, (बीजं वपत) बीज बोओ, अर्थात् गर्भाधान करो। (सा) वह वधू, (ऋषभस्य) बलिष्ठ पति के, (दुग्धं रेतः) दुग्ध तुल्य वीर्य को, (बिभ्रती) धारण करती हुई, (वक्षणाभ्यः) अपने पेट से, अपने गर्भाशय से, (वः) तुम्हारे लिए, (प्रजाम्) संतान, (जनयत्) उत्पन्न करे।

हिन्दी अर्थ—हे मनुष्यो! आत्मिक बल वाली और सन्तानोत्पादन में समर्थ यह वधू पतिगृह में आई है। इसमें गर्भाधान करो। वह बलिष्ठ पति के दुग्धरूप वीर्य को धारण करती हुई, अपने गर्भाशय से तुम्हारे लिए सन्तान उत्पन्न करे।

Eng. Tr.—O Men ! This self-reliant and fertile bride has come to your house. Let her be impregnated. May she, bearing the semen of her strong husband, bring forth for you a progeny from her womb.

अनुशीलन—इस मंत्र में स्त्री के दो गुणों का उल्लेख है—आत्मन्वती और उर्वरा। आत्मन्वती से अभिप्राय है कि स्त्री में आत्मिक बल होना चाहिए। जहाँ आत्मिक बल है, वहाँ स्वाभिमान और तेजस्विता होती है। आत्मिक बल के साथ ही मनोबल रहता है। जिसका मनोबल जितना प्रबल होगा, उतना ही उसका आत्मिक बल उन्नत होगा। स्त्री के लिए आत्मिक बल की विशेष आवश्यकता है। परिवार में अनेक प्रकार के दुःख, कष्ट, आधि, व्याधि आते रहते हैं। बड़ी से बड़ी समस्याओं को हल करना होता है। स्त्री का अत्मिक बल जितना उच्च होगा, उतनी ही सरलता से वह समस्याओं को हल कर सकेगी। दुःख में दुःखित नहीं होगी। उसमें उतनी ही ऊँची सहनशीलता होगी। उसमें निराशा का भाव उदय नहीं होगा।

स्त्री की दूसरी विशेषता उर्वरापन है। कुल की वृद्धि और संपन्नता के लिए संतान की भी आवश्यकता होती है। इसे उर्वरा स्त्री ही पूर्ण कर सकती है। वंश-वृद्धि का अपना स्वतन्त्र महत्त्व है। परिवार फूलता-फलता रहे, इसके लिए संतान की भी आवश्यकता है। वही माता-पिता आदि का मनोरंजन करता हुआ वंश को समुन्नत करता है।

टिप्पणी—(१) **आत्मन्वती**—आत्मिक बल वाली, आत्मविश्वास वाली। आत्मन् + मतुप् (मत्) + ङीप् (ई)। म् को व्। (२) **आगन्**—आ अगन्, आई है। आ + गम् (आना, भ्वादि, पर०) + लुङ् प्र० १। (३) **वपत**—बोओ, डालो। वप् (बोना, भ्वादि, पर०) + लोट् म० ३। (४) **जनयत्**—उत्पन्न करे। जन् (पैदा करना, भ्वादि) + णिच् + लेट् प्र० १। (५) **वक्षणाभ्यः**—पेट से, गर्भाशय से। वक्षणा (पेट) + पं० ३। (६) **बिभ्रती**—धारण करती हुई। भृ (धारण करना, जुहोत्यादि, पर०)+ शतृ + ङीप्। (७) **ऋषभस्य**—बलिष्ठ पति के। बलवान् के अर्थ में ऋषभ शब्द है।

४१. वधू सास-ससुर को सुख दे

सुमङ्गली प्रतरणी गृहाणां
सुशेवा पत्ये श्वशुराय शंभूः ।
स्योना श्वश्र्वै प्र गृहान् विशेमान् ।।

अथर्व० १४-२-२६

अन्वय—सुमङ्गली, गृहाणां प्रतरणी, पत्ये सुशेवा, श्वशुराय शंभूः, श्वश्र्वै स्योना, इमान् गृहान् प्र विश ।

शब्दार्थ—(सुमङ्गली) सौभाग्य के चिह्नों से युक्त आभूषणादि से अलंकृत, (गृहाणाम्) पति के घरों की, पति के परिवार की, (प्रतरणी) पार करने वाली. कष्टों से उबारने वाली, (पत्ये सुशेवा) पति की विशेष सेवा करने वाली, (श्वशुराय) ससुर के लिए, (शंभूः) कल्याण करने वाली, (श्वश्र्वै) सास के लिए, (स्योना) सुखद, हे वधू तू, (इमान् गृहान्) इन घरों में, (प्रविश) प्रवेश कर ।

हिन्दी अर्थ—आभूषणादि से अलंकृत, पति के परिवार के कष्टों को दूर करने वाली, पति को विशेष सेवा करने वाली, ससुर के लिए कल्याणकारी और सास के लिए सुखद, हे वधू, तू इन घरों में प्रवेश कर ।

Eng. Tr.—O Bride ! enter these houses, being decorated with ornaments, removing the sufferings of the husband's family, serving your husband well, being benevolent to your father-in-law and mother-in-law.

अनुशीलन— इस मन्त्र में स्त्री के कर्तव्यों का निर्देश है । स्त्री का अपने परिवार, अपने पति और अपने सास-ससुर के प्रति क्या कर्तव्य है, इसका स्पष्ट निर्देश दिया गया है । स्त्री परिवार के लिए सुमङ्गली और प्रतरणी होनी चाहिए । सुमङ्गली का भाव है कि वह अपने परिवार के लिए सुखद और मंगलकारिणी होनी चाहिए । प्रतरणी का भाव है कि

वह अपने परिवार को दुःखों से पार लगाने वाली हो। परिवार के कष्ट दूर करे और उनके उद्धार में सहायक हो।

पति के प्रति उसका कर्तव्य बताया गया है कि वह पति की सेवा करे। पति को प्रसन्न रखना स्त्री का सर्वप्रथम कर्तव्य है। पति के हित की चिन्ता, उसकी सुख-सुविधा की चिन्ता और उसका आवश्यक सहयोग यह पत्नी का प्रमुख कर्तव्य है। सास और ससुर की सेवा करना, उनको सदा सुखी रखने का प्रयत्न करना और उनके कष्टों का निवारण करना पत्नी का कर्तव्य है। जो पत्नी इस प्रकार अपने कर्तव्यों का पालन करती है, वह अपना जीवन सुखी बनाते हुए परिवार को भी सुखी और खुशहाल बनाती है।

टिप्पणी—(१) सुमङ्गली—सौभाग्य-चिह्न सिन्दूरदान आदि से युक्त, मांगलिक सुन्दर आभूषणों आदि से युक्त। (२) गृहाणां प्रतरणी—घर को पार लगाने वाली, दुःखों से उबारने वाली। (३) सुशेवा—सुन्दर सेवा करने वाली। शी धातु से शेव है। सु + शेव + टाप् (आ)। (४) शंभूः—कल्याण करने वाली। शम्—कल्याण, सुख, भूः—होना। (५) श्वश्र्वै—सास के लिए। श्वश्रू + च० १। (६) प्रविश—प्रवेश करो। विश् (प्रवेश करना, तुदादि, पर०) + लोट् म० १।

४२. वधू सबकी शुभचिन्तक हो

अदेवृघ्न्यपतिघ्नीहैधि
शिवा पशुभ्यः सुयमा सुवर्चाः।
प्रजावती वीरसूर्देवृकामा
स्योनेममग्निं गार्हपत्यं सपर्य॥

अथर्व० १४-२-१८

अन्वय—अदेवृघ्नी अपतिघ्नी, इह एधि। पशुभ्यः शिवा, सुयमा, सुवर्चाः, प्रजावती, वीरसूः, देवृकामा, स्योना इमं गार्हपत्यम् अग्निं सपर्य।

शब्दार्थ—(अदेवृघ्नी) देवरों को हानि न पहुँचाने वाली, (अपतिघ्नी) पति को हानि न पहुँचाने वाली, (इह एधि) इस घर में रह। (पशुभ्यः) पशुओं के लिए, (शिवा) सुखदायी, (सुयमा) नियमों का पालन करने वाली, सदाचारिणी, (सुवर्चाः) तेजस्विनी, (प्रजावती) सन्तान से युक्त, (वीरसूः) वीर पुत्रों को जन्म देने वाली, (देवृकामा) देवरों के निवास को चाहने वाली, (स्योना) सुख देने वाली, (इमम्) इस, (गार्हपत्यम् अग्निम्) गार्हपत्य अग्नि की, (सपर्य) पूजा कर, यज्ञ कर।

हिन्दी अर्थ—हे वधू ! तू देवरों और पति को हानि न पहुंचाने वाली होकर इस घर में रह। पशुओं के लिए सुखद, सदाचारिणी, तेजस्विनी. सन्तानयुक्त, वीर पुत्रों को जन्म देने वाली, घर में देवरों के निवास को चाहने वाली और सुखदायिनी तू इस गार्हपत्य अग्नि की पूजा करना अर्थात् गार्हपत्य अग्नि में प्रतिदिन यज्ञ करना।

Eng. Tr.--O Bride ! dwell in this house, being harmless either to your husband or husband's brothers. Be well-wisher of the animals. Chaste, radiant, having progeny, producing brave sons, liking the presence of the brothers-in-law and spreading pleasure to all. May you worship the domestic fire daily.

अनुशीलन—इस मन्त्र में वधू को कतिपय शिक्षाएँ दी गई हैं, जिनके पालन से वह परिवार को सुखी बना सकती है। प्रथम शिक्षा है कि वह अपने पति और देवरों से शिष्ट व्यवहार रखे। उन्हें किसी प्रकार हानि न पहुँचावे। पति और देवरों को प्रसन्न रखने से परिवार में शान्ति का वातावरण रहेगा। पशुओं पर भी वह दयालु हो। पशुओं के भी भोजनाच्छादन की सुन्दर व्यवस्था करे।

वधू को दूसरी शिक्षा दी गई है कि उसका जीवन संयमी हो और वह तेजस्विनी हो। जिस स्त्री का जीवन जितना संयमी होगा, उसमें उतनी ही तेजस्विता होगी। संयम और तेजस्विता में साधन-साध्य सम्बन्ध है।

तीसरी शिक्षा दी गई है कि वह वीर सन्तानों को जन्म दे। स्त्री ही अपनी उच्च शिक्षा से बालकों को भी वीर और सुयोग्य बना सकती है। केवल सन्तान-उत्पादन करना ही उसका कर्तव्य नहीं है, अपितु उन्हें हृष्ट-पुष्ट, वीर और योग्य बनाना भी उसका कर्तव्य है।

चतुर्थ शिक्षा यह दी गई है कि वधू नियमित रूप से यज्ञ करे। यज्ञ के द्वारा परिवार के वातावरण में सांमनस्य और सद्भाव आएगा। घर की दूषित वायु के स्थान पर सुगन्धित वायु का प्रवेश होगा। इससे आस्तिकता और सात्त्विकता का प्रसार होगा।

टिप्पणी—(१) **अदेवृघ्नी** - देवरों को हानि न करने वाली। यहाँ हन् धातु का अर्थ हानि पहुँचाना है, हत्या या नाश करना नहीं। अ + देवृ + हन् + क (अ) + ङीप्। देवृ—देवर। (२) **अपतिघ्नी**—पति को हानि न करने वाली। अ + पति + घ्नी। पूर्ववत्, (३) **एधि**—हो, रहो। अस् (होना, अदादि, पर०) + लोट् म० १। (४) **सुयमा**—अच्छे प्रकार से नियमों का पालन करने वाली, सदाचारिणी। सु + यम + टाप् (आ)। (५) **सुवर्चाः**—तेज वाली। सु+वर्चस्+प्र० १। (६) **वीरसूः**—वीर पुत्रों को जन्म देने वाली। वीर + सू (जन्म देना)+प्र० १। (७) **देवृकामा**—परिवार में देवरों की सत्ता को चाहने वाली। पाठभेद–देवकामा है। अर्थ होगा–देवों को चाहने वाली, देवभक्त। (८) **गार्हपत्यम् अग्निम्**—गार्हपत्य अग्नि। विवाहित दम्पती के लिए गार्हपत्य अग्नि में प्रतिदिन यज्ञ करने का विधान है। (९) **सपर्य**—पूजा कर। सपर् + य (पूजा करना, नामधातु) + लोट् म० १।

४३. स्त्री इन्द्राणी के तुल्य प्रबुद्ध हो

आ रोह तल्पं सुमनस्यमाना
इह प्रजां जनय पत्ये अस्मै।
इन्द्राणीव सुबुधा बुध्यमाना
ज्योतिरग्रा उषसः प्रति जागरासि॥

अथर्व० १४-२-३१

अन्वय—सुमनस्यमाना तल्पम् आ रोह । इह अस्मै पत्ये प्रजां जनय । इन्द्राणी इव सुबुधा बुध्यमाना, ज्योतिरग्राः उषसः प्रति जागरासि ।

शब्दार्थ—(सुमनस्यमाना) प्रसन्नचित्त होकर, सुन्दर मन वाली, (तल्पम्) बिस्तर पर, शय्या पर, (आ रोह) चढ़ । (इह) यहाँ, (अस्मै पत्ये) इस पति के लिए, (प्रजाम्) संतान को, (जनय) उत्पन्न कर । (इन्द्राणी इव) इन्द्र की पत्नी इन्द्राणी के तुल्य, (सुबुधा) सुन्दर ज्ञान के कारण, (बुध्य-माना) जागरूक रहते हुए, (ज्योतिरग्राः) जिनके आगे प्रकाश चलता है, ऐसी, (उषसः प्रति) उषाओं से पूर्व, उषाकाल से पूर्व या उषाकाल के समय, (जागरासि) जागना ।

हिन्दी अर्थ—हे वधू ! तू प्रसन्नचित्त होकर बिस्तर पर चढ़ । यहाँ इस पति के लिए संतान उत्पन्न कर । इन्द्राणी के तुल्य सुन्दर ज्ञान से प्रबुद्ध तू प्रकाशयुक्त उषाकाल से पूर्व उठना ।

Eng. Tr.—O Bride ! being cheerful, go to the bed and beget a progeny for your husband. May you be brilliant like the goddess Indrani and getup before the dawn.

अनुशीलन—इस मंत्र में स्त्री के लिए तीन कर्तव्यों का विधान है—कुलवृद्धि के लिए संतान को जन्म देना, ज्ञान-विज्ञान से प्रबुद्ध रहना और उषाकाल से पूर्व नियमित रूप से उठना ।

विवाहित जीवन का एक लक्ष्य यह भी है कि वंश की वृद्धि हो, वंश-परंपरा विच्छिन्न न हो । इसके लिए आवश्यक है कि पत्नी योग्य संतान को जन्म दे । बालक के गर्भकाल में पत्नी जितने सुन्दर विचार रखेगी, उतने ही सुन्दर विचारों वाली सन्तान होती है । बुरे विचारों से कु-संस्कार वाली संतान होती है ।

स्त्री का कर्तव्य है कि वह ज्ञान-विज्ञान से युक्त हो । स्त्री में स्वाध्याय की जितनी प्रवृत्ति होगी, उतना ही उसका ज्ञान निखरेगा । विद्या स्वाध्याय और चिन्तन से प्रस्फुरित होती है । जितना स्वाध्याय की ओर ध्यान दिया जाएगा, उतना ही आत्मिक विकास होगा ।

स्त्री के लिए आवश्यक है कि उषाकाल से पूर्व उठे। उषाकाल से पूर्व न उठने पर गायत्री-जप तथा साधना के अन्य कार्यकलाप संभव नहीं होंगे। ब्राह्ममुहूर्त में बुद्धि शुद्ध रहती है। उस समय ध्यान, साधना एवं जप आदि के कार्य उत्तमता से होते हैं। प्रातः जागरण बौद्धिक, मानसिक और शारीरिक उन्नति के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

टिप्पणी—(१) **आ रोह**—चढ़। आ + रुह् (चढ़ना, भ्वादि, पर०) + लोट् म० १। (२) **सुमनस्यमाना**—प्रसन्न मन से। सु + मनस् + य (नामधातु) + लट् > शानच् (आन) + टाप् (आ)। (३) **जनय**—उत्पन्न कर। जन् (उत्पन्न करना) + णिच् + लोट् म० १। (४) **सुबुधा**—सुन्दर ज्ञान से, निरन्तर जागरूकता से। सु + बुध् + तृ० १। (५) **बुध्यमाना**—प्रबुद्ध या जागरूक रहते हुए। बुध् (जागना, दिवादि, आ०) + लट् > शानच् (आन) + टाप् (आ)। (६) **ज्योतिरग्राः**—ज्योतिः—प्रकाश, अग्राः—जिसके आगे है। जिसके आगे प्रकाश चलता है, ऐसी उषा से पूर्व। (७) **उषसः प्रति**—उषाकाल से पूर्व। (८) **जागरासि**—जागना, उठना, नींद से उठना। जागृ (जागना, अदादि, पर०) + लेट म० १।

४४. पत्नी सुशील हो

अघोरचक्षुरपतिघ्न्येधि
शिवा पशुभ्यः सुमनाः सुवर्चाः।
वीरसूर्देवकामा स्योना
शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे॥

ऋग्० १०-८५-४४; अथर्व० १४-२-१७

अन्वय—(हे वधु) अघोरचक्षुः अपतिघ्नी एधि। पशुभ्यः शिवा, सुमनाः, सुवर्चाः, वीरसूः, देवकामा, स्योना (भव)। नः द्विपदे शं भव, चतुष्पदे शं (भव)।

शब्दार्थ—(हे वधु) हे वधू, तू, (अघोरचक्षुः) कठोर दृष्टि से रहित, कोमल दृष्टि वाली होना। (अपतिघ्नी) पति को हानि न पहुँचाने वाली,

(एधि) होना। (पशुभ्यः) पशुओं के लिए, (शिवा) हितकर होना। (सुमनाः) सुन्दर मन वाली, (सुवर्चाः) सुन्दर तेज वाली, (वीरसूः) वीर पुत्रों को जन्म देने वाली, (देवकामा) देवों को चाहने वाली, देवभक्त, (स्योना) सुखदायी, (भव) होना। (नः) हमारे, हमारे परिवार के, (द्विपदे) मनुष्यों के लिए, (शम्) कल्याणकारी, (भव) होना। (चतुष्पदे) पशुओं के लिए, (शं भव) सुखकर होना।

हिन्दी अर्थ—हे वधू, तू कोमल दृष्टि से देखना। पति का अहित मत करना। पशुओं के लिए हितकर होना। उच्च मन वाली, तेजस्विनी, वीर पुत्रों को जन्म देने वाली, देवभक्त और हितकर होना। हमारे परिवार के मनुष्यों और पशुओं के लिए सुखकर होना।

Eng. Tr.—O Bride! be tender-eyed. Be harmless to your husband. Be benevolent to the cattle. Be well-disposed, brilliant, mother of brave sons, devout and kind-hearted. May you take care of the men and cattle of our family.

अनुशीलन—इस मंत्र के भावार्थ के लिए मंत्र संख्या ३४ और ४२ का अनुशीलन भी देखें। इन मंत्रों में प्रायः ये ही भाव आए हैं। स्त्री का कर्तव्य है कि वह प्रेमपूर्ण दृष्टि से सबको देखे। उसकी दृष्टि में कटुता और क्रूरता न हो। यदि वह कटुता का वातावरण उत्पन्न करेगी तो परिवार का सामंजस्य समाप्त हो जाएगा। उसका जीवन स्वयं दुःखित रहेगा और वह दूसरों के लिए समस्या बन जाएगी।

पति का अहित न सोचना और न करना, यह पत्नी का प्रमुख कर्तव्य है। इसका उसे जीवन भर निर्वाह करना है। परिवार के व्यक्तियों के प्रति उसका व्यवहार प्रेमपूर्ण होना चाहिए। केवल मनुष्य ही नहीं, पशुओं के प्रति भी उसके हृदय में स्नेह का भाव होना चाहिए। अतः मंत्र में कहा गया है कि वह—द्विपदे चतुष्पदे शम्, अर्थात् वह मनुष्य और पशु सभी के लिए सुखदायी हो।

मंत्र में यह भी शिक्षा दी गई है कि वह देवकामा हो। देवकामा का अभिप्राय है कि उसमें ईश-भक्ति, आस्तिकता और अध्यात्म का भाव जागृत होना चाहिए। ईश-भक्ति से मनुष्य में सात्त्विकता, मनोबल और आत्मबल आता है। इससे ही जीवन में प्रगति और विकास होता है। अतः स्त्री को प्रतिदिन सन्ध्या, हवन आदि अवश्य करना चाहिए।

टिप्पणी—(१) अघोरचक्षुः—अघोर—कठोरता या भयंकरता से रहित, चक्षुः—आंखों वाली। अर्थात् विनम्र दृष्टि वाली। (२) अपतिघ्नी—पति को हानि न पहुँचाने वाली। हन् धातु का अभिप्राय कष्ट देने से है। (३) एधि—होना। अस् (होना, अदादि) + लोट् म० १। (४) सुमनाः—सुन्दर मन वाली। सुमनस् + प्र० १। (५) सुवर्चाः—सुन्दर वर्चस् या तेज वाली। सुवर्चस् + प्र० १। (६) वीरसूः—वीरपुत्रों को जन्म देने वाली। वीर + सू (जन्म देना) + प्र० १। (७) देवकामा—देवभक्त। (८) द्विपदे—द्विपाद् अर्थात् मनुष्यों के लिए। द्विपाद् + च० १। (९) चतुष्पदे—चौपाये या पशुओं के लिए। चतुष्पाद् + च० १। पाद् को पद् आदेश। (१०) पाठभेद—अथर्ववेद में यह मन्त्र काफी पाठभेद के साथ है। मंत्र ४२ की व्याख्या और टिप्पणी भी देखें।

४५. वधू परिवार के लिए सुखद हो

स्योना भव श्वशुरेभ्यः, स्योना पत्ये गृहेभ्यः।
स्योनास्यै सर्वस्यै विशे, स्योना पुष्टायैषां भव॥

अथर्व० १४-२-२७

अन्वय—श्वशुरेभ्यः स्योना भव, पत्ये गृहेभ्यः स्योना (भव)। अस्यै सर्वस्यै विशे स्योना (भव), स्योना एषां पुष्टाय भव॥

शब्दार्थ—(श्वशुरेभ्यः) श्वशुरों के लिए, (स्योना) सुख देने वाली (भव) हो। (पत्ये) पति के लिए, (गृहेभ्यः) परिवार के लोगों के लिए, (स्योना भव) सुख देने वाली हो। (अस्यै) इस, (सर्वस्यै) सारे, (विशे)

प्रजावर्ग, परिचारकवर्ग के लिए, (स्योना भव) सुखद हो। (स्योना) सुखद होते हुए, (एषाम्) इनके, (पुष्टाय) पुष्टि या पोषण के लिए, (भव) हो।

हिन्दी अर्थ—(हे वधू) तू श्वशुरों के लिए सुख देने वाली हो। तू पति और परिवार के लोगों के लिए सुख देने वाली हो। तू इस सारे परिजन वर्ग के लिए सुख देने वाली हो। तू सुखद होते हुए इन सबके पोषण के लिए हो, अर्थात् तू इनका पोषण करना।

Eng. Tr.—O Bride! be agreeable to father-in-law, family-members of your husband and servants. May you be beneficial to all.

अनुशीलन—इस मन्त्र में स्त्री को शिक्षा दी गई है कि वह परिवार के सभी व्यक्तियों के हित-चिन्तन में तत्पर रहे। सास-ससुर की सेवा करना, पति की सेवा करना, परिजनों के प्रति प्रेमपूर्ण व्यवहार करना और सभी परिवार वालों के लिए भोजन-आच्छादन आदि की व्यवस्था करना, यह वधू का कर्तव्य है। परिवार की प्रसन्नता में उसकी प्रसन्नता है। परिवार में क्लेश का वातावरण होगा, तो सभी को कष्ट होगा। इसलिए पत्नी का कर्तव्य है कि वह पूरे परिवार के सुख के लिए सदा प्रयत्नशील रहे। अपने सौम्य व्यवहार से छोटे से बड़े तक सभी को प्रसन्न रखे।

टिप्पणी—(१) **स्योना**—सुख देने वाली, सुखकर। स्योन + टाप्। (२) **भव**—हो। भू (होना) + लोट् म० १। (३) **गृहेभ्यः**—घर वालों के लिए, परिवार वालों के लिए। (४) **सर्वस्यै**—सारे। सर्वा + च० १। (५) **विशे**—प्रजा के लिए, परिचारक वर्ग के लिए। विश् + च० १। (६) **पुष्टाय**—पुष्टि या पोषण के लिए।

४६. वधू बड़ों को प्रणाम करे

यदा गार्हपत्यमसपर्यैत्, पूर्वमग्निं वधूरियम्।
अधा सरस्वत्यै नारि, पितृभ्यश्च नमस्कुरु॥

अथर्व० १४-२-२०

अन्वय—यदा इयं वधूः पूर्वं गार्हपत्यम् अग्निम् असपर्येत् । अध हे नारि, सरस्वत्यै पितृभ्यः च नमः कुरु ।

शब्दार्थ—(यदा) जब या जब जब, (इयं वधूः) यह वधू, (पूर्वम्) पहले, (गार्हपत्यम् अग्निम्) गार्हपत्य अग्नि को, (असपर्येत्) पूजा करे । (अध) तब, तदनन्तर, (हे नारि) हे वधू, (सरस्वत्यै) वाग्देवी या विद्यादेवी को, (पितृभ्यः च) और पितृ-तुल्य मान्य जनों को, (नमः कुरु) नमस्कार करना ।

हिन्दी अर्थ—जब यह वधू पहले गार्हपत्य अग्नि की पूजा करे (यज्ञ करे), तब (तदनन्तर) वाग्देवी और मान्य जनों को नमस्कार करे ।

Eng. Tr.—Let the bride worship first the domestic fire. Then she should pay homage to the goddess of learning and the elders of her family.

अनुशीलन—इस मंत्र में वधू को दो शिक्षाएँ दी गई हैं—प्रतिदिन यज्ञ करना और यज्ञ के बाद अपने से बड़ों को प्रणाम करना । प्रतिदिन यज्ञ करना व्यक्तिगत और पारिवारिक शुद्धि के लिए अत्यन्त आवश्यक है । यज्ञ से न केवल वायु शुद्ध होती है, अपितु मनुष्य में सात्त्विक भाव उदय होते हैं । हृदय शुद्ध होता है, मानसिक शान्ति आती है और पारिवारिक सौमनस्य बढ़ता है । पारिवारिक यज्ञ पारिवारिक समृद्धि के लिए अनिवार्य कर्म है ।

मंत्र के उत्तरार्ध में कहा गया है कि यज्ञ के पश्चात् अपने से बड़े व्यक्तियों को प्रणाम किया जाए । ज्येष्ठ व्यक्तियों को प्रणाम करना अपनी विनम्रता और सुशीलता का परिचय देना है । व्यक्ति जितनी अधिक शिष्टता और विनय का परिचय बड़ों को देता है, उतनी ही उसकी उन्नति होती है, श्रीवृद्धि होती है और ज्ञानवृद्धि होती है । दूसरे का सम्मान करने से अपना सम्मान बढ़ता है । यह सबसे सरल वशीकरण मंत्र है । प्रणाम करते ही दूसरे का चित्त द्रवित हो जाता है और वह प्रणाम करने वाले के लिए अनायास ही शुभ वचन कहता है । अतएव संस्कृत का सुभाषित है कि प्रति-

दिन बड़ों को प्रणाम करने वाले की ये चार चीजें बढ़ जाती हैं—आयु, विद्या, यश और बल।

अभिवादनशीलस्य, नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते, आयुर्विद्या यशो बलम्॥

मनु० २-१२१

टिप्पणी—(१) गार्हपत्यम् अग्निम्—विवाहित दम्पती के लिए गार्हपत्य अग्नि में प्रतिदिन यज्ञ करने का विधान है। विशिष्ट यज्ञों के लिए आहवनीय अग्नि है। (२) असपर्यैत्—पूजा की, यज्ञ किया। सपर्य (पूजा करना, नामधातु) + लुङ् प्र० १। (३) अधा—तब, तदनन्तर। अध को छान्दस दीर्घ। (४) सरस्वत्यै—सरस्वती देवी, वाग्देवी या ज्ञान की अधिष्ठात्री देवी को। सरस्वती + च० १। (५) पितृभ्यः—पितरों को, पिता के तुल्य मान्य जनों को। वधू यज्ञ के बाद अपने से बड़े या मान्य जनों को प्रणाम करे। यहाँ मृत पितरों से अभिप्राय नहीं है। (६) नमस्कुरु—प्रणाम करना, अभिवादन करना। नमः + कृ (करना, तनादि, पर०) + लोट् म० १।

४७. पत्नी वीर और ओजस्विनी हो

समजैषमिमा अहं सपत्नीरभिभूवरी।
यथाहमस्य वीरस्य विराजानि जनस्य च॥

ऋग्० १०-१५९-६

अन्वय—अभिभूवरी अहम् इमाः सपत्नीः समजैषम्। यथा अहम् अस्य वीरस्य जनस्य च विराजानि।

शब्दार्थ—(अभिभूवरी) शत्रुओं को तिरस्कृत करने वाली, (अहम्) मैं, मैंने, (इमाः) इन, (सपत्नीः) सपत्नियों को, सौतों को, (समजैषम्) जीता है, जीत लिया है। (यथा) जिससे, जिस प्रकार, (अहम्) मैं, (अस्य वीरस्य) इस वीर या पति की, (जनस्य च) और इसके परिवार की, (विराजानि) स्वामिनी होऊं, एकछत्र सम्राज्ञी होऊं।

हिन्दी अर्थ—शत्रुओं को तिरस्कृत करने वाली मैंने अपनी इन सौतों को जीत लिया है। जिससे मैं इस वीर (पति) की और इसके परिवार की स्वामिनी होऊं।

Eng. Tr.—I am victorious and have conquered all of my rival-wives to became the mistress of my husband and his family.

अनुशीलन—इस मन्त्र में स्त्री को शिक्षा दी गई है कि वह वीर हो, निर्भीक हो और स्वाभिमानिनी हो। जहाँ परिवार में कई स्त्रियाँ हैं, वहाँ जो सबसे अधिक योग्य, निर्भीक और साहसी होगी, वही परिवार में प्रमुख होकर रहेगी। इस मन्त्र में निर्देश है कि ऐसी स्त्री ही अपनी सपत्नियों पर भी अपना प्रभुत्व स्थापित करती है। जहाँ एक ओर लज्जा स्त्री का भूषण है, वहाँ दूसरी ओर उसकी वीरता भी भूषण है। परिवार की स्वामिनी के लिए आवश्यक है कि उसमें स्वाभिमान और अध्यवसाय हो। वह कठिन परिस्थितियों का सामना कर सके और परिवार के सभी लोगों को अपने नियन्त्रण में रख सके। यह नियन्त्रण योग्यता, कर्मठता और चारित्रिक बल पर निर्भर होता है। जिसमें जितनी अधिक योग्यता और कर्मठता होगी, वह उतना ही परिवार पर अपना नियन्त्रण कर सकता है।

टिप्पणी—(१) **समजैषम्**—मैंने जीत लिया है। सम् + जि (जीतना, भ्वादि, पर०)+लुङ् उ० १। लुङ् में अजैषम् रूप बनेगा। (२) **सपत्नीः**—सपत्नियों को, सौतों को। सपत्नी + द्वि० ३। (३) **अभिभूवरी**—अभिभव या तिरस्कार करने वाली। अभि + भू + वन् + ङीप् (ई)। न् को र्। प्रथमा १। (४) **वीरस्य**—वीर की। पति के लिए वीर है। (५) **विराजानि**—राजा होऊँ, स्वामिनी होऊँ, सम्राज्ञी होऊँ। वि + राज् (चमकना, राज्य करना, भ्वादि, पर०) + लोट् उ० १। (६) **जनस्य**—लोगों की, परिवार के लोगों की।

४८. स्त्री लज्जाशील हो

अधः पश्यस्व मोपरि, संतरां पादकौ हर ।
मा ते कशप्लकौ दृशन्, स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ ।।

ऋग्० ८-३३-१९

अन्वय—(हे नारि) अधः पश्यस्व, उपरि मा । पादकौ संतरां हर । ते कशप्लकौ या दृशन् । हि स्त्री ब्रह्मा बभूविथ ।

शब्दार्थ—(हे नारि) हे नारी, (अधः) नीचे की ओर, (पश्यस्व) देखो, देखा करो । (उपरि) ऊपर की ओर, (मा) मत, नहीं । (पादकौ) अपने पैरों को, (संतराम्) मिला हुआ, संश्लिष्ट, (हर) रखो । (ते) तेरे, (कशप्लकौ) दोनों जंघाएँ, (मा) मत, (दृशन्) दिखाई पड़ें । (हि) क्योंकि, (स्त्री) नारी ही, (ब्रह्मा) ज्ञान की स्रोत, आचार की शिक्षक, उत्पत्ति का आधार, (बभूविथ) थी, रही है ।

हिन्दी अर्थ—हे नारी, तू नीचे की ओर देखा कर, ऊपर की ओर नहीं । अपने पैरों को मिलाकर रखा कर । तेरी जंघाएं दिखाई न पड़ें । क्योंकि स्त्री ही ज्ञानदात्री (आचार-शिक्षिका) है ।

Eng. Tr.—O Woman ! look downward and not upward. Put your legs closed. Let not your thighs remain open. A lady is verily the source of knowledge.

अनुशीलन—इस मंत्र में स्त्री को आचार-विषयक दो शिक्षाएँ दी गई हैं—१. नीचे देखो, ऊपर की ओर नहीं, २. कटिभाग को ढका हुआ रखो । साथ ही स्त्री के गौरव का भी वर्णन है कि स्त्री ब्रह्मा है ।

लज्जाशीलता स्त्री का स्वाभाविक गुण है । अतः उसके कार्य और व्यवहार में लज्जाशीलता का परिचय मिलना चाहिए । ऊपर की ओर घूरते हुए या देखते हुए जाना, छाती निकाल कर चलना, कटिभाग का अभद्र प्रदर्शन आदि कार्य निषिद्ध एवं अशिष्ट माने गए हैं । अतएव मंत्र में कहा गया है कि हे स्त्री, तू नीचे की ओर देखकर चल, ऊपर देखते हुए नहीं । इससे उसकी सुशीलता और विनम्रता प्रकट होती है । कटिभाग को खुला

रखना, अनुचित और अशिष्ट माना जाता है। अतः स्त्री को शिक्षा दी गई है कि कटिभाग को ढका रखे, पैरों को खोलकर न बैठे।

मंत्र के अन्तिम चरण में स्त्री के गौरव का वर्णन है। स्त्री ही ब्रह्मा है। ब्रह्मा सृष्टिकर्ता है, स्त्री सन्तानादि के द्वारा परिवार की वृद्धि करती है। ब्रह्मा ज्ञान का और वेदों का दाता है, स्त्री भी शिशुओं को ज्ञान देती है। समस्त ज्ञान का आधार ब्रह्मा है, उसी प्रकार परिवार में स्त्री ज्ञान की आधार है। वही विद्या, शिक्षा और ज्ञान का प्रसार करती है,

टिप्पणी—(१) अधः पश्यस्व—नीचे की ओर देखो। पश्यस्व—दृश् (पश्य्, देखना, भ्वादि, आ०) + लोट् म० १। (२) संतराम्—मिले हुए। (३) हर—रखो, ले जाओ। हृ (ले जाना, भ्वादि, पर०) + लोट् म० १। (४) कशप्लकौ—दोनों जंघाएँ, कटिभाग। (५) मा दृशन्—न देखें, न देख सकें। दृश् (देखना, भ्वादि, पर०) + लुङ् प्र० ३। अडागम नहीं, Inj. है। (६) ब्रह्मा—ज्ञान का अधिष्ठता और आचार का शिक्षक। ब्रह्मा सृष्टिकर्ता भी है। ब्रह्मन् (पुं० + प्र० १। (७) बभूविथ—थी, रही है। भू (होना, भ्वादि, पर०) + लिट् म० १।

४९. स्त्री वीरपुत्रों को जन्म दे

अग्निः सप्तिं वाजंभरं ददाति
अग्निर्वीरं श्रुत्यं कर्मनिष्ठाम्।
अग्नी रोदसी वि चरत् समञ्जन्
अग्निर्नारीं वीरकुक्षिं पुरंधिम्॥

ऋग्० १०-८०-१

अन्वय—अग्निः सप्तिं वाजंभरं ददाति। अग्निः वीरं श्रुत्यं कर्मनिःष्ठान् (ददाति)। अग्निः रोदसी समञ्जन् वि चरत्। अग्निः नारीं वीरकुक्षिं पुरंधिम् (करोति)।

शब्दार्थ—(अग्निः) अग्नि, परमात्मा, (सप्तिम्) घोड़े को, (वाजंभरम्, बल की पूर्णता, उत्तम गतिशीलता, (ददाति) देता है। (अग्निः)

अग्नि, परमात्मा, (वीरम्) वीर पुत्र को, (श्रुत्यम्) प्रशंसनीय, गौरवमय, धर्मसम्बन्धी, (कर्मनिःष्ठाम्) कर्मनिष्ठता, कर्मठता, अपूर्व उत्साह, (ददाति) देता है। (अग्निः) अग्नि, परमात्मा, (रोदसी) द्युलोक और पृथिवी को, (समञ्जन्) समन्वित करते हुए, मिलाते हुए, (वि चरत्) अनेक रूप से व्याप्त रहता है। (अग्निः) परमात्मा, (नारीम्) नारी को, (वीरकुक्षिम्) वीर संतान को जन्म देने वाली, (पुरंधिम्) परिवार की पोषक, पूर्णता-युक्त, विदुषी, (करोति) करता है।

हिन्दी अर्थ—अग्नि (परमात्मा) घोड़े को विशेष शक्ति और गति देता है। परमात्मा पुत्र को प्रशंसनीय कर्मठता देता है। परमात्मा द्युलोक और पृथिवी को मिलाते हुए अनेक रूप से व्याप्त होता है। परमात्मा नारी को वीर संतान से युक्त और विदुषी करता है।

Eng. Tr—The Fire-god, gives vigour and vitality to the horse, bestows laudable diligence on the son, unites the heaven and earth and pervades them in various forms, blesses a lady with brave sons and makes her wise.

अनुशीलन—इस मंत्र में बताया गया है कि परमात्मा की कृपा से ही सृष्टि में शक्ति और समृद्धि है। वही स्त्री को भी सौभाग्यशालिनी बनाता है, उसकी कृपा से ही योग्य पुत्र उत्पन्न होता है और स्त्री विदुषी एवं परिवार-पोषण में दक्ष होती है।

सृष्टि में जहाँ भी ज्ञान, शक्ति या तेज दिखाई पड़ता है, उसका आधार परमात्मा ही है। घोड़ों में विशेष शक्ति दिखाई पड़ती है, उसका कारण परमात्मा ही है। परमात्मा ने घोड़ों में तीव्र दौड़ने की शक्ति दी है। परमात्मा ही योग्य पुत्रों को कर्मनिष्ठता, अध्यावसाय और पुरुषार्थ देता है। परमात्मा ने ही द्यावा-पृथिवी को समन्वित किया है। दोनों एक दूसरे के लिए सहयोगी हैं। उसकी कृपा से ही स्त्री वीर पुत्रों को जन्म देती है। परमात्मा ही स्त्री को सद्बुद्धि देता है, जिससे वह परिवार के

गुरुतर भार को संभाल लेती है और स्वयं को एक विदुषी बना पाती है।

टिप्पणी—(१) **अग्निः**—अग्नि। परमात्मा के लिए है। (२) **वाजंभरम्**—वाज-बल, भरम्-पूर्णता। बल की पूर्णता या उत्तम गतिशीलता। वाज के अर्थ हैं—बल, गति, अन्न, ऐश्वर्य, धन। (३) **ददाति**—देता है। दा (देना, जुहोत्यादि) + लट् प्र० १। (४) **श्रुत्यम्**—प्रशंसनीय, श्रवणीय, गौरवमय। श्रुत्यम् का श्रुति-सम्बन्धी या वैदिक धर्मनिष्ठा, यज्ञनिष्ठा अर्थ भी है। (५) **कर्मनिःष्ठाम्**—कर्म में निष्ठा, कर्मठता, कार्य में एकाग्रचित्तता। (६) **रोदसी**—द्युलोक और पृथिवी। (७) **वि चरत्**—व्याप्त होता है। अनेक प्रकार से गति करता है। चरत्—चर् (चलना, जाना, भ्वादि, पर०) + लुङ् प्र० १। अडागम नहीं, Inj. है। (८) **समञ्जन्**—मिलाते हुए। सम् + अञ्ज् (मिलाना, रुधादि, पर०) + लट् > शतृ प्र० १। (९) **वीरकुक्षिम्**—वीर-पुत्र, कुक्षिम्—कोख में। जो वीर पुत्रों को जन्म देती है। (१०) **पुरंधिम्**—पुर—परिवार को, धि—पालने वाली। परिवार को पालने वाली। पुरंधि के अन्य अर्थ हैं—पूर्णतायुक्त, विदुषी, ऐश्वर्य की देवी, समृद्धि, उर्वरा स्त्री।

५०. सन्तान से पत्नी का सौभाग्य

इन्द्राग्नी द्यावापृथिवी मातरिश्वा
मित्रावरुणा भगो अश्विनोभा।
बृहस्पतिर्मरुतो ब्रह्म सोम
इमां नारीं प्रजया वर्धयन्तु॥

अथर्व० १४-१-५४

अन्वय—इन्द्राग्नी, द्यावापृथिवी, मातरिश्वा, मित्रावरुणा, भगः, उभा अश्विना, बृहस्पतिः, मरुतः, ब्रह्म, सोमः, इमां नारीं प्रजया वर्धयन्तु।

शब्दार्थ—(इन्द्राग्नी, द्यावापृथिवी) इन्द्र और अग्नि, द्युलोक और पृथिवी, (मातरिश्वा) वायु, (मित्रावरुणा) मित्र और वरुण, (भगः) भग देव, ऐश्वर्य देव, (उभा अश्विना) दोनों अश्विनी कुमार, (बृहस्पतिः) बृहस्पति,

(मरुतः) मरुत् देवगण, (ब्रह्म) ब्रह्म, ईश्वर, (सोमः) सोम देवता, (इमां नारीम्) इस नारी या पत्नी को, (प्रजया) सन्तान से, (वर्धयन्तु) बढ़ावें ।

हिन्दी अर्थ—इन्द्र, अग्नि, द्युलोक, पृथिवी, वायु, मित्र, वरुण, भग देवता, दोनों अश्विनी देव, बृहस्पति, मरुत् देवगण, ब्रह्म और सोम देवता, ये सभी देवगण इस वधू को सन्तान देकर बढ़ावें (सौभाग्य युक्त करें) ।

Eng. Tr.—May the gods, viz. Indra, Fire, Heaven, Earth, Wind, Mitra and Varuna, god of wealth, Ashvins, Bṛhaspati, Maruts, Brahman and Soma, bless the bride with a progeny and make her prosperous.

अनुशीलन—इस मन्त्र में इन्द्र अग्नि मित्र वरुण आदि १४ देवों से प्रार्थना की गई कि वे स्त्री को पुत्र-रत्न देकर सौभाग्यवती करें। पृथिवी जल आदि पंच भूतों के माध्यम से सभी देवों के गुण मनुष्य में आते हैं। कोई ज्ञान देता है, कोई शक्ति; कोई सुशीलता देता है, कोई तेजास्विता; कोई वैभव देता है, कोई सद्गुण । इस प्रकार सभी देवों का अंश मनुष्य में आता है। इन सभी देवों से प्रार्थना की गई है कि वे वधू को सुयोग्य पुत्र देकर सौभाग्यवती करें। स्त्री का पुत्रवती होना उसके लिए गौरव की बात है। इससे वंश की वृद्धि होती है, वंश-नाश नहीं होता, कुल-परम्पराएँ अक्षुण्ण रहती हैं और सामाजिक प्रतिष्ठा होती है ।

टिप्पणी—(१) **इन्द्राग्नी**—इन्द्र और अग्नि देवता । (२) **द्यावा-पृथिवी**—द्यावा–द्युलोक, पृथिवी–पृथिवी । द्युलोक और पृथिवी । (३) **मातरिश्वा**—वायु । मातरि–अन्तरिक्ष में, श्वस्–बहने वाला । मातरिश्वन् + प्र० १ । (४) **मित्रावरुणा**—मित्रावरुणौ, मित्र और वरुण । (५) **उभा अश्विना**—उभौ अश्विनौ, दोनों अश्विनी कुमार । (६) **मरुतः**—मरुत् देवता । मरुत् + प्र० ३ । (७) **प्रजया**—सन्तान से, सन्तान देकर, पुत्रलाभ से युक्त करके । प्रजा+तृ० १ । (८) **वर्धयन्तु**—बढ़ावें, सौभाग्यवती बनावें । वृध् (बढ़ना, भ्वादि, पर०) + णिच् + लोट् प्र० ३ ।

५१. स्त्री के अंग सुन्दर सुपुष्ट हों

किं सुबाहो स्वङ्गुरे, पृथुष्टो पृथुजाघने ।
किं शूरपत्नि नस्त्वम्, अभ्यमीषि वृषाकपिं,
विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥

ऋग्० १०-८६-८; अथर्व० २०-१२६-८

अन्वय—हे सुबाहो, स्वङ्गुरे, पृथुष्टो, पृथुजाघने, शूरपत्नि, त्वं नः वृषाकपिं किम् अभ्यमीषि । इन्द्रः विश्वस्मात् उत्तरः ।

शब्दार्थ—(हे सुबाहो) हे सुन्दर बाहु वाली, (स्वङ्गुरे) सुन्दर अंगुलियों वाली, (पृथुष्टो) बड़े केशों वाली, बड़ी चोटी वाली, (पृथुजाघने) विशाल जंघा वाली, (शूरपत्नि) वीर की भार्या, (त्वम्) तू, (नः) हमारी, (वृषाकपिम्) आत्मा पर, वृषाकपि पर, (किम्) क्यों, (अभ्यमीषि) क्रुद्ध होती हो, हानि पहुँचाती हो । (इन्द्रः) इन्द्र, (विश्वस्मात्) सबसे, (उत्तरः) उत्कृष्ट है ।

हिन्दी अर्थ—हे सुन्दर बाहु वाली, सुन्दर उंगलियों वाली, बड़े केश-पाश वाली, विशाल जंघा वाली, वीर की पत्नी, (इन्द्राणी) तू हमारी आत्मा (वृषाकपि) पर क्यों क्रुद्ध होती है ? (हमें क्यों हानि पहुँचाती हो ?) इन्द्र सबसे बढ़कर है ।

Eng. Tr.—O fair-armed, fine-fingered, broad-tufted, broad-hipped, wife of brave Indra ! why are you angry with this Vṛsakapi. Indra is superior to all.

अनुशीलन——इस मन्त्र में स्त्री के शारीरिक सौन्दर्य का वर्णन है । स्त्री के प्रत्येक अंग-प्रत्यंग हृष्ट-पुष्ट और स्वस्थ होने चाहिएं । उसके हाथ, उसकी अंगुलियाँ, उसके केशपाश, उसकी जंघाएँ आदि सभी अंग सुन्दर और पुष्ट होने चाहिएँ । स्त्री के लिए शारीरिक सौन्दर्य का भी बहुत महत्त्व है । स्वस्थ, प्रसन्न, हृष्ट-पुष्ट स्त्री सर्वत्र आदर प्राप्त करती है और अस्वस्थ, चिन्ताग्रस्त एवं क्षीणकान्ति स्त्री का समाज में आदर नहीं होता, अतः स्त्री के लिए शारीरिक सौन्दर्य भी अनिवार्य है ।

इन्द्राणी वुद्धि है और वृषाकपि जीवात्मा है। अनुचित कार्य करने पर इन्द्राणी वृषाकपि पर क्रुद्ध होती है। उसका ही यहां सांकेतिक भाषा में उल्लेख है। जीवात्मा वृषाकपि है। आत्मा वै वृषाकपिः' (ऐत० ब्रा० ६-२९, गोपथ ब्रा० उत्तर० ६-८)। इन्द्र (परमात्मा) स्वामी है, वुद्धि (इन्द्राणी) स्वामिनी है और वृषाकपि (जीवात्मा) पुत्रवत् है। जिस प्रकार माता-पिता पुत्रपर क्रुद्ध होते हैं, उसी प्रकार वुद्धि जीवात्मा पर क्रुद्ध होती है। मन्त्र में कहा गया है कि वह जीवात्मा पर व्यर्थ में ही क्रुद्ध न हो। जीव का कर्तृत्व वुद्धि के द्वारा है, अतः वह कर्मफल के लिए पूर्णतया उत्तरदायी नहीं है। बुद्धि का काम है कि वह उसे सन्मार्ग पर चलावे।

टिप्पणी—(१) **सुबाहो**—हे सुन्दर बाहुओं वाली। (२) **स्वङ्गुरे**—हे सु-सुन्दर, अङ्गुरे—अंगुलियों वाली। स्वङ्गुरि+सं० १। (३) **पृथुष्टो**—हे पृथु-बड़े, स्तु-केशपाश बाल, चोटी वाली। केशपाश के लिए स्तु और स्तुक शब्द हैं। पृथु + स्तु + सं० १। (४) **पृथुजाघने**—पृथु-विशाल, चौड़े, जाघने-जंघा वाली, कटिभाग वाली। पृथु+जाघना + स० १। जघन के अर्थ में जाघन शब्द है। (५) **अभ्यमीषि**—क्रोध करती हो, हानि पहुँचाती हो। अभि + अम् (हानि पहुँचाना, अदादि, पर०) + लट् म० १। (६) **वृषाकपिम्**—वृषाकपि पर। वृषाकपि इन्द्र का पुत्र माना जाता है। वृषाकपि के अर्थ—बादल, सूर्य और जीवात्मा हैं। आदित्यो वै वृषाकपिः (गोपथ० उ० ६-१२), आत्मा वै वृषाकपिः (ऐतरेय ब्रा० ६-२९, गोपथ उ० ६-८)। (७) **उत्तरः**—बढ़कर, उत्कृष्ट। उत् + तर।

५२. पत्नी यज्ञ करे

आ रोह चर्मोप सीदाग्निम्
एष देवो हन्ति रक्षांसि सर्वा।
इह प्रजां जनय पत्ये अस्मै
सुज्यैष्ठ्यो भवत् पुत्रस्त एषः॥

अथर्व० १४-२-२४

अन्वय—चर्म आ रोह, अग्निम् उप सीद। एष देवः सर्वा रक्षांसि हन्ति। इह अस्मै पत्ये प्रजां जनय। ते एषः पुत्रः सुज्यैष्ठ्यः भवतु।

शब्दार्थ—(चर्म) मृगचर्म पर, (आ रोह) चढ़, बैठ। (अग्निम्) अग्नि के, यज्ञिय अग्नि के, (उप सीद) समीप बैठ। (एष देवः) यह अग्नि देव, (सर्वा) सारे, (रक्षांसि) राक्षसों को, (हन्ति) नष्ट करता है। (इह) इस घर में, यहाँ, (अस्मै पत्ये) इस पति के लिए, (प्रजाम्) सन्तान को, (जनय) उत्पन्न कर, जन्म दे। (ते) तेरा, (एष पुत्रः) यह पुत्र, (सुज्यैष्ठ्यः) अत्यन्त उत्कृष्ट, अतिश्रेष्ठ, (भवतु) होवे।

हिन्दी अर्थ—(हे वधू,) तू मृगचर्म पर चढ़ और अग्नि के समीप बैठ (यज्ञ कर)। यह अग्नि-देव सारे राक्षसों को नष्ट करता है। इस घर में इस पति के लिए सन्तान को जन्म दे। तेरा यह पुत्र अत्यन्त उत्कृष्ट हो।

Eng. Tr.—O Bride! be seated on the deer-skin and perform the sacrifice. The fire-god annihilates all the demons. Give birth to a son to grace your husband. May your son also be glorious.

अनुशीलन—इस मंत्र में वर्णन किया गया है कि स्त्री प्रतिदिन यज्ञ करे। स्त्री को योग्य पुत्र मिले।

इस मंत्र में यज्ञ करना और उसका फल दोनों वर्णित हैं। स्त्री का कर्तव्य है कि वह आसन पर बैठकर प्रतिदिन यज्ञ करे। इससे परिवार के सभी दोष दूर होते हैं। यज्ञ से निकला हुआ धूम आस-पास के वातावरण को शुद्ध करता है। रोग आदि के कीटों को नष्ट करता है। इसको ही मंत्र में राक्षसों का नाश कहा गया है। वेदों में यज्ञ का इतना अधिक महत्त्व बताया गया है कि वह शारीरिक, मानसिक और आत्मिक उन्नति के लिए अनिवार्य है। स्त्री का कर्तव्य है कि वह दैनिक यज्ञ न छोड़े।

मंत्र के उत्तरार्ध में बताया गया है कि इस प्रकार की साध्वी स्त्री को सुयोग्य पुत्र प्राप्त होता है। पुत्र के लिए सुज्यैष्ठ्यः शब्द दिया गया है।

इसका अभिप्राय यह है कि पुत्र सभी बातों में सर्वश्रेष्ठ और अग्रगण्य हो। ऐसा पुत्र ही माता-पिता का यश उज्ज्वल करता है।

टिप्पणी—(१) आ रोह—चढ़, चढ़कर बैठ। आ + रुह् (चढ़ना, भ्वादि, पर०)+लोट् म० १। (२) **चर्म**—मृगचर्म पर। चर्मन्+द्वि० १। (३) **उप सीद**—पास में बैठ। सद् (बैठना, भ्वादि, पर०)+ लोट् म० १। (४) **हन्ति**—मारता है, नष्ट करता है। हन् (मारना, अदादि, पर०)+लट् प्र० १। (५) **सर्वा रक्षांसि**—सर्वाणि रक्षांसि, सारे राक्षसों को। सर्वाणि का संक्षिप्त रूप सर्वा है। रक्षस्+द्वि० ३। (६) **जनय**—जन्म दो, उत्पन्न करो। जन् (पैदा होना, भ्वादि, पर०) + णिच् + लोट् म० १। (७) **सुज्यैष्ठ्यः**—अत्यन्त ज्येष्ठता वाला, अत्यन्त महत्त्व वाला। ज्येष्ठ + ष्यञ् (य)। (८) **भवत्**— होवे। भू (होना, भ्वादि, पर०) + लेट् प्र० १।

५३. स्त्रियां यज्ञों में भाग लें

संहोत्रं स्म पुरा नारी, समनं वाव गच्छति।
वेधा ऋतस्य वीरिणी, इन्द्रपत्नी महीयते,
विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥

ऋग्० १०-८६-१०; अथर्व० २०-१२६-१०

अन्वय--पुरा नारी संहोत्रं समनं वाव गच्छति स्म। ऋतस्य वेधाः, वीरिणी इन्द्रपत्नी महीयते। इन्द्रः विश्वस्मात् उत्तरः।

शब्दार्थ--(पुरा) पहले, प्राचीन काल में, (नारी) स्त्री, (संहोत्रम्) सामूहिक यज्ञ में, (समनम्) युद्ध में, विवाहादि उत्सवों में, (वाव) निश्चय से, (गच्छति स्म) जाती थी। (ऋतस्य) सत्य की, यज्ञ की, (वेधाः) विधान करने वाली, निर्मात्री, (वीरिणी) वीर पुत्रों वाली, (इन्द्रपत्नी) इन्द्राणी, शची, (महीयते) पूजा को प्राप्त होती है, महत्त्व को प्राप्त करती है। (इन्द्रः विश्वस्मात् उत्तरः) इन्द्र सबसे बढ़कर है।

हिन्दी अर्थ—प्राचीन काल में स्त्री सामूहिक यज्ञों में और युद्धों में जाती थी। सत्य का विधान करने वाली, वीर पुत्रों से युक्त,

इन्द्राणी की पूजा होती है। इन्द्र सबसे बढ़कर है।

Eng. Tr.--Formerly the ladies used to go to the joint sacrifices and the battles. The goddess Indrāṇī, the protector of natural laws and mother of brave sons, is worshipped. Indra is superior to all.

अनुशीलन--इस मंत्र में स्त्री के गौरव का वर्णन है। इस मंत्र से ज्ञात होता है कि स्त्रियां न केवल गृहकार्य में ही दक्ष होती थीं, अपितु वे सामूहिक यज्ञों आदि में भाग लेती थीं और पति के साथ युद्ध में भी जाती थीं। सामूहिक यज्ञों में जहां पुरुष का महत्त्व है, वहां स्त्रियों का भी महत्त्व कम नहीं है। जो स्त्रियां प्रतिदिन यज्ञ करती हैं, वे सामूहिक यज्ञों में अवश्य जाना चाहेंगी। सामान्यतया स्त्रियां धार्मिक आयोजनों में अधिक श्रद्धा-भक्ति से भाग लेती हैं। उसकी ओर ही मंत्र में संकेत है। जो स्त्रियां वीर हैं, क्षत्राणी हैं और जिन्होंने अस्त्र-शस्त्रों की विधिवत् शिक्षा प्राप्त की है, वे युद्धों में भी जाना चाहती हैं। प्राचीन इतिहास में महाराज दशरथ के साथ कैकेयी का युद्ध में जाना इसी परंपरा का सूचक है। इस मंत्र से यह भी ज्ञात होता है कि स्त्रियों को अस्त्र-शस्त्रादि की शिक्षा भी देनी चाहिए।

मंत्र में इन्द्राणी अर्थात् बुद्धि का महत्त्व बताया गया है कि वह प्राकृतिक नियमों का पालन करती है। वह मनुष्य को प्रेरित करती है कि ऋत-मार्ग, सत्यमार्ग और प्राकृतिक नियमों का पालन करे। अतएव मंत्र में कहा गया है कि ऋत के विधान के कारण ही बुद्धि की सर्वत्र पूजा होती है। बुद्धि का स्वामी परमात्मा संसार में सर्वश्रेष्ठ है। परमात्मा जिसको सद्बुद्धि देता है, वह सन्मार्ग पर चलता है और संसार में उसका ही यश सर्वत्र फैलता है।

टिप्पणी--(१) **संहोत्रम्**--सामूहिक यज्ञों में, विशिष्ट यज्ञों में। (२) **समनम्**--युद्ध में। समनम् के अन्य अर्थ हैं--उत्सव, मांगलिक आयोजन, साथ जीना। निघंटु में समन का अर्थ युद्ध है। (३) **वाव**--

अवश्य, निश्चय से। 'वै एव' का संक्षिप्त रूप है। (४) ऋतस्य--सत्य की, यज्ञ की। (५) वेधाः--विधात्री, निर्माण करने वाली। वेधस् (ब्रह्मा) + प्र० १। (६) वीरिणी--वीर पुत्रों वाली। (७) इन्द्रपत्नी--इन्द्र की पत्नी, शची। शची का अर्थ बुद्धि भी है। (८)महीयते-पूजा को प्राप्त होती है, आदर पाती है। मही (महत्त्व पाना, नामधातु आ०)+य+लट् प्र० १।

५४. वधू पति के साथ यज्ञ करे

वि तिष्ठन्तां मातुरस्या उपस्थान्-
नानारूपाः पशवो जायमानाः।
सुमङ्गल्युप सीदेममग्निं
संपत्नी प्रति भूषेह देवान्॥

अथर्व० १४-२-२५

अन्वय—जायमानाः नानारूपाः पशवः अस्याः मातुः उपस्थात् वि तिष्ठन्ताम्। सुमङ्गली संपत्नी इमम् अग्निम् उप सीद। इह देवान् प्रति भूष।

शब्दार्थ—(जायमानाः) उत्पन्न होने वाले, (नानारूपाः) अनेक प्रकार के, (पशवः) पशु, (अस्याः मातुः) इस माता के, इस मातृरूप वधू के, (उपस्थात्) समीप, (वि तिष्ठन्ताम्) रहें। (सुमङ्गली) मांगलिक चिह्नों से युक्त, आभूषणादि से अलंकृत, (संपत्नी) वधू अपने पति के साथ, पति को साथ लेकर, (इमम् अग्निम्) इस अग्नि के, (उप सीद) समीप बैठे। (इह) यहां, इस यज्ञशाला में, (देवान्) देवों की, (प्रति भूष) पूजा करे, स्तुति करे।

हिन्दी अर्थ—उत्पन्न होने वाले अनेक प्रकार के पशु इस मातृरूप वधू के पास रहें। यह सुमंगली अपने पति के साथ इस अग्नि के समीप बैठे और यहाँ देवों की स्तुति करे।

Eng. Tr.—May all kinds of animals be seated near this mother-like bride. Let this auspicious lady be seated near the fire alongwith her husband and worship the gods.

अनुशीलन—इस मन्त्र में दो बातों की ओर ध्यान आकृष्ट किया गया है—पशुओं से प्रेम करना, पति के साथ नियमित रूप से यज्ञ करना। मन्त्र का अभिप्राय यह है कि वधू का व्यवहार परिवार के व्यक्तियों के साथ ही शिष्टतापूर्ण न हो, अपितु परिवार में जो भी पशु आदि रहते हैं, उनके साथ भी प्रेम और दया का व्यवहार करे। उसके इस प्रेम के आधार पर पशु उसे अपनी माता के तुल्य समझें। अतएव मन्त्र में वधू को माता कहा गया है।

पत्नी को दूसरा उपदेश यह दिया गया है कि वह सौभाग्य की वृद्धि के लिए पति के साथ प्रतिदिन यज्ञ करे और देव-स्तुति करे। यज्ञ के द्वारा सभी देवों की आराधना हो जाती है। यह कार्य केवल पत्नी का ही नहीं है, अपितु पति भी यज्ञ में बैठे। इसलिए मन्त्र में संपत्नी (पति-सहित) शब्द दिया गया है। यज्ञ सौभाग्य की वृद्धि का साधन है, पारिवारिक कल्याण का कारण है और पारिवारिक श्रीवृद्धि का मूल है। इसलिए परिवार में नियमित यज्ञ का होना एक अनिवार्य कार्य है।

टिप्पणी--(१) **वि तिष्ठन्ताम्**—रहें, रुकें। वि + स्था (तिष्ठ्, रुकना, भ्वादि, आ०) + लोट् प्र० ३। (२) **अस्याः मातुः**—इस माता के। वधू के लिए माता शब्द है। पुत्रवती होगी, अतः माता है। मातृ + ष० १। (३) **उपस्थात्**—समीप में। (४) **नानारूपाः**—अनेक प्रकार के। गाय, बैल, भैंस आदि पशु। (५) **जायमानाः**—होने वाले। जन् (पैदा होना, दिवादि, आ०) + शानच् (आन) + प्र० ३। (६) **सुमंगली**—मंगल कृत्यों से युक्त, आभूषणादि से अलंकृत। (७) **उप सीद**—पास में बैठ। सद् (सीद्, बैठना, भ्वादि, पर०) + लोट् म० १। (८) **संपत्नी**—पति-सहित, पति को साथ लेकर। सह (साथ) अर्थ में सम् है। सम् + पति + ङीप् (ई) = संपत्नी। (९) **प्रति भूष**—पूजा करो, स्तुति करो। भूष् (सजाना, भ्वादि, पर०) + लोट् म० १। प्रतिभूष् का अर्थ पूजा करना या स्तुति करना है।

५५. पत्नी सपरिवार यज्ञ करे

उप स्तृणीहि बल्बजम्, अधि चर्मणि रोहिते ।
तत्रोपविश्य सुप्रजा, इममग्निं सपर्यतु ।।

अथर्व० १४-२-२३

अन्वय—रोहिते चर्मणि अधि, बल्बजम् उप स्तृणीहि । तत्र उपविश्य सुप्रजाः इमम् अग्निं सपर्यतु ।

शब्दार्थ—(रोहिते) लाल रंग के, (चर्मणि अधि) मृगचर्म पर, (बल्बजम्) कुशासन को, (उप स्तृणीहि) बिछाओ । (तत्र) वहाँ, (उपविश्य) बैठकर, (सुप्रजाः) योग्य सन्तानों से युक्त, (इमम् अग्निम्) इस अग्नि की, (सपर्यतु) पूजा कर ।

हिन्दी अर्थ—(हे वधू) तू लाल रंग के मृगचर्म पर कुशासन बिछाना और उस पर बैठकर अपनी सन्तानों के साथ इस अग्नि की पूजा करना, अर्थात् (यज्ञ करना) ।

Eng. Tr.—O Bride ! strew the Kusha-seat on the red deer-skin and sitting there, with your progeny, perform the sacrifice.

अनुशीलन—इस मन्त्र में सपरिवार यज्ञ करने का विधान है । साथ ही यह भी बताया गया है कि यज्ञ में स्वच्छ और पवित्र आसनों का उपयोग हो । इसके लिए उदाहरणरूप में मृगचर्म और कुशासन का उपयोग बताया गया है । यज्ञ जितनी स्वच्छता, पवित्रता श्रद्धाभक्ति और निष्ठा से किया जाता है, उतना ही अधिक उसका फल होता है । इस मन्त्र में यह भी स्पष्ट किया गया है कि दम्पती अपने साथ अपने बच्चों को भी यज्ञ में बिठावें । बच्चों का हृदय शुद्ध और कोमल होता है । उनमें जो संस्कार उत्पन्न करने हों, वे बचपन से ही जागृत करने चाहिएँ । माता-पिता के साथ यज्ञ करते रहने से बच्चों में भी आस्तिकता और पवित्रता के भाव जागृत होते हैं । इसकी ओर ही इस मन्त्र में ध्यान आकृष्ट किया गया है ।

टिप्पणी—(१) उप स्तृणीहि—बिछाओ। स्तृ (बिछाना, क्र्यादि, पर०) + लोट् म० १। (२) बल्बजम्—कुशासन। बल्बज कुश के लिए है। कुश का आसन या चटाई। (३) रोहिते—लाल रंग के। रोहित—लाल। (४) चर्मणि अधि—मृगचर्म पर। चर्म मृगचर्म के लिए है। (५) उपविश्य—बैठकर। उप + विश् (बैठना, तुदादि) + ल्यप् (य)। (६) सुप्रजाः—सुन्दर प्रजा या संतान वाली, सुन्दर संतान-सहित। (७) सपर्यतु—पूजा करे। सपर् + य (नामधातु) + लोट् प्र० १।

५६. हाथ से बुने वस्त्र से वशीकरण

अभि त्वा मनुजातेन, दधामि मम वाससा।
यथासो मम केवलो, नान्यासां कीर्तयाश्चन ॥

अथर्व० ७-३७-१

अन्वय—मम मनुजातेन वाससा त्वा अभि दधामि। यथा केवलः मम असः। अन्यासां चन न कीर्तयाः।

शब्दार्थ—(मम) मेरे, (मनुजातेन) विचार या संकल्प से बनाए गए, (वाससा) इस वस्त्र से, (त्वा) तुझको, (अभि दधामि) मैं बाँधती हूँ। (यथा) जिससे, (केवलः) अकेला, एकमात्र, (मम) मेरा, (असः) होओ, रहो। (अन्यासां चन) और किसी स्त्री का, (न) नहीं, (कीर्तयाः) नाम लो, प्रशंसा करो।

हिन्दी अर्थ—(हे पतिदेव!) विचारपूर्वक बनाए गए अपने इस वस्त्र से मैं तुमको बाँधती हूँ। जिससे तुम एकमात्र मेरे होकर रहो और किसी अन्य स्त्री का नाम न लो।

Eng. Tr.—O Husband! I tie you with this well-woven garment, so that you may concentrate on me alone, and never mention the names of other ladies.

अनुशीलन—इस मंत्र [illegible] अपने हाथ से बुना हुआ वस्त्र पति के वशीकरण का अमोघ साधन है। हाथ से

बुना हुआ वस्त्र किस प्रकार पति को वश में कर लेता है, इसका कारण बताया गया है कि यह वस्त्र पत्नी के स्नेह के तन्तुओं से बना होता है। वस्त्र के निर्माण में पत्नी का अक्षय स्नेह एक एक धागे में रमा हुआ है, अतः वह सामान्य वस्त्र न होकर पत्नी के प्रेम का सूचक उपहार है। इस प्रकार के उपहार से पति स्वयं पत्नी के वश में हो जाता है। ऐसी अवस्था में वह पत्नी की न्यूनताओं की ओर ध्यान न देकर उसके गुणों की ओर ही ध्यान देता है, उसकी ही प्रशंसा करता है तथा उसको ही स्मरण करता है। इसका सुखद परिणाम यह होता है कि वह अपनी पत्नी के संमुख न अन्य स्त्रियों का नाम लेता है और न उनका गुणगान करता है।

स्त्रियों के लिए वस्त्रादि बुनना आवश्यक कार्य है। इससे वे अपने अतिरिक्त समय का सदुपयोग करती हैं, घर की आर्थिक स्थिति को सुधारती हैं तथा समय के अपव्यय से होने वाले दुर्गुणों से बचती हैं। दूसरी ओर उनकी कर्मनिष्ठा पति के स्नेह को बढ़ाती है।

टिप्पणी—(१) **मनुजातेन**—मनन या विचारपूर्वक बनाए गए। मनु का अर्थ मनन, विचार, संकल्प है। (२) **अभि दधामि**—बाँधती हूँ। अभि + धा का अर्थ बाँधना है। दधामि—धा (रखना, जुहोत्यादि, पर०) + लट् उ० १। (३) **असः**—होओ, रहो। अस् (होना, अदादि, पर०) + लेट् म० १। (४) **अन्यासां चन**—किसी भी अन्य स्त्री का। अन्या + ष० ३। (५) **कीर्तयाः**— नाम लेना, गुणगान करना। कृत् (गुणगान करना, चुरादि, पर०) + लेट् म० १।

५७. वधू शिशु की निर्मात्री

सर्वे देवा उपाशिक्षन्, तदजानाद् वधूः सती।
ईशा वशस्य या जाया, सास्मिन् वर्णमाभरत् ॥

अथर्व० ११-८-१७

अन्वय—सर्वे देवाः उप अशिक्षन्। तत् सती वधूः अजानात्। वशस्य ईशा या जाया, सा अस्मिन् वर्णम् आ अभरत्।

शब्दार्थ—(सर्वे देवाः) सभी देवों ने, (उप अशिक्षन्) शिक्षा दी। (तत्) उसे, उस शिक्षा को, (सती वधूः) सद्गुणों वाली वधू ने, (अजानात्) जान लिया, समझ लिया, सीख लिया। (वशस्य) इच्छाशक्ति की, (ईशा) स्वामिनी, (या) जो, (जाया) पत्नी है, (सा) वह, (अस्मिन्) इसमें, इस शिशु में, (वर्णम्) रंग, ज्ञान और अच्छे संस्कारों के रंग को, (आ अभरत्) भरती है।

हिन्दी अर्थ—सारे देवों ने जो शिक्षा दी, उसे सद्गुणों वाली वधू ने सीख लिया। इच्छाशक्ति पर नियन्त्रण रखने वाली जो पत्नी होती है, वही इस (शिशु) में रंग भर देती है, अर्थात् ज्ञान और अच्छे संस्कारों के भाव भर देती है।

Eng. Tr.—The virtuous bride learnt all what the gods preached her. A wife, having control on the will-power, imparts knowledge and good notions to her progeny.

अनुशीलन—इस मंत्र में बाल-शिक्षा और शिशु-निर्माण की सुन्दर शिक्षा दी गई है। इस मंत्र का अभिप्राय है कि सुयोग्य गृहिणी ईश्वरीय प्रेरणाओं को बहुत ध्यान से हृदयंगम करती है। यह दैवी शिक्षा है कि माता अपने शिशु का सर्वोत्तम ढंग से निर्माण करे। माता के लिए शिशु हृदय का अंग है। वह उसे अपने प्राणों से भी अधिक प्रिय समझती है। वह बालक को संसार का सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति बनाने की अभिलाषा रखती है। इसके लिए देवों ने कुछ शिक्षा दी और वधू ने उसे समझ लिया। देवों ने क्या शिक्षा दी और वधू ने क्या समझ लिया? इसका मंत्र में उत्तर दिया गया है कि बालक निरीह, निर्लेप, शुद्ध और पवित्र आत्मा है। वह एक स्वच्छ वस्त्र के तुल्य है। चित्रकार जिस प्रकार अपनी तूलिका से अपने मनोवांछित भावों को चित्रपट पर अंकित करता है। तदनुसार उसमें विविध रंगों को भरता है। उसकी सफलता इस बात में होती है कि वह चित्र उसके मनोभावों का ठीक चित्रण कर सके।

यही स्थिति स्त्री या माता के साथ है। वह पुत्र को योग्य बनाना चाहती है। यह कार्य केवल चाहने मात्र से नहीं हो सकता। मंत्र में कहा गया है कि—'ईशा वशस्य या जाया' जिस पत्नी में इच्छा-शक्ति प्रबल है, जो अपने विचारों और संकल्पों पर पूर्ण अधिकार रखती है, वही अपने पुत्र को सुयोग्य बना सकती है। बालक में शुभ संस्कारों का आधान सरल कार्य नहीं है। इसके लिए माता को घोर तपस्या करनी पड़ती है, तभी बालक में शुभ संस्काररूपी रंग निखर कर आते हैं। इस बात को ही मंत्र में स्पष्ट किया गया है कि—'सा अस्मिन् वर्णम् आभरत्' वही स्त्री शिशु में सुन्दर संस्कार और विचाररूपी रंग भर सकती है।

इस मंत्र के द्वारा शिक्षा दी गई है कि बालक के चरित्र-निर्माण आदि का पूर्ण उत्तरदायित्व बालक की माता पर है। वह उसमें उत्तम गुण और संस्कार भरे। इसी उद्देश्य से विभिन्न संस्कारों को करने का विधान है।

टिप्पणी—(१) **उप अशिक्षन्**—शिक्षा दी, सिखाया। शिक्ष् (शिक्षा देना, सिखाना, भ्वादि, पर०) + लङ् प्र० ३। (२) **अजानात्**—जाना, सीखा। ज्ञा (जानना, क्र्यादि, पर०) + लङ् प्र० १। ज्ञा को जा। (३) **सती**—सद्गुणों वाली, भद्र, प्रशस्त। अस् (होना, अदादि) + शतृ (अत्) + ङीप् (ई)। (४) **ईशा**—स्वामिनी, अधिकारिणी। ईश + टाप् (आ)। (५) **वशस्य**—इच्छाशक्ति की, इच्छा की, संयम की। (६) **वर्णम्**—रंग। (७) **आ अभरत्**—भरा। भृ (धारण करना, भरना, भ्वादि, पर०) + लङ् प्र० १। शिशु में रंग भरने का अभिप्राय है, उसमें ज्ञान और अच्छे संस्कार आदि अपनी इच्छा के अनुसार भरना।

५८, सपत्नी दुःखदायी

सं मा तपन्त्यभितः, सपत्नीरिव पर्शवः।
नि बाधते अमतिर्नग्नता, जसु-र्वेर्न वेवीयते मतिः॥

ऋग्० १०-३३-२

अन्वय—मा पर्शवः सपत्नीः इव अभितः सं तपन्ति। अमतिः नग्नता जसुः (माम्) नि बाधते। वेः न मतिः वेवीयते।

शब्दार्थ—(मा) मुझको, (पर्शवः) पसलियां, (सपत्नीः इव) सपत्नी या सौत की तरह (अभितः) दोनों ओर से, (संतपन्ति) दुःख दे रही हैं। (अमतिः) अज्ञान, (नग्नता) वस्त्रादि का अभाव, (जसुः) निर्बलता, क्षीणता, (माम्) मुझको, (निबाधते) कष्ट दे रही है। (वेः न) व्याध से भयभीत पक्षी की तरह, (मतिः) मेरी बुद्धि, (वेवीयते) अत्यन्त कांप रही है। वृद्धावस्था की निर्बलता आदि का वर्णन है।

हिन्दी अर्थ—(मुझ वृद्ध को) मेरी पसलियां दोनों ओर से इसी प्रकार कष्ट दे रही हैं, जैसे सपत्नियां (सौतें)। अज्ञान (बौद्धिक क्षीणता), वस्त्रादि का अभाव और शारीरिक क्षीणता मुझे दुःख दे रही है। (मृत्यु के भय से) मेरी बुद्धि इसी प्रकार अत्यन्त कांप रही है, जैसे (बहेलिए के भय से) पक्षी कांपता है।

Eng. Tr.—My ribs are aching from both sides, like the rival-wives. The ignorance, lack of clothes and physical disability are tormenting me. My mind is trembling with the fear of death just as a bird fearing from the hunter.

अनुशीलन—इस मन्त्र में एक से अधिक विवाह करने के दुष्परिणामों का वर्णन किया गया है। इस मन्त्र में यह भी संकेत किया गया है कि युवावस्था के उन्माद में अनेक विवाह रुचिकर प्रतीत होते हैं, परन्तु वृद्धावस्था आते ही सारा उन्माद समाप्त हो जाता है और जीवन की वास्तविकता का दर्शन होता है। इस समय की जीवन की वास्तविकताओं का चित्रण किया गया है कि शरीर में शक्ति नहीं रह गई है, बुद्धि भ्रष्ट हो गई है, धन की गर्मी समाप्त हो गई है, निर्धनता का प्रकोप हो गया है और वस्त्रादि के अभाव के कारण नग्नता और दिवालिएपन की स्थिति उत्पन्न हो गई है। इस दुःखद स्थिति में सपत्नियों के प्रवाद और विवाद प्रतिक्षण मर्मव्यथा कर रहे हैं। सपत्नियों के वाग्-बाण इसी प्रकार दुःखित और पीड़ित कर रहे हैं, जैसे बहेलिए के बाण पक्षी को।

इस काव्योचित वर्णन के द्वारा शिक्षा दी गई है कि जीवन में बहु-विवाह और बहु-पतित्व विनाश के कारण हैं। जीवन में इस तथ्य को गम्भीरता से गाँठ बाँध लेना चाहिए। बहु-विवाह का अन्त सदा दुःखदायी होता है। सपत्नी कभी भी मनुष्य को सुख से नहीं जीने देती हैं।

टिप्पणी—(१) **सं तपन्ति**—तपाती हैं, दुःख देती हैं। तप् (तपना, तपाना, भ्वादि, पर०) + लट् प्र० ३। (२) **सपत्नीः इव**—जैसे सौत निरन्तर दुःख देती हैं। (३) **पर्शवः**—पसलियाँ, बगल की हड्डियाँ। पर्शु + प्र० ३। (४) **निबाधते**—दुःख देती है। बाध् (कष्ट देना, भ्वादि, आ०) + लट् प्र० १। (५) **अमतिः**—अज्ञान, बौद्धिक क्षीणता या असमर्थता। (६) **नग्नता**—निर्धनता के कारण वस्त्रादि का अभाव। (७) **जसुः**—क्षीणता, निर्बलता। (८) **वेः न**—पक्षी की तरह। वि (पक्षी) + ष० १। न—तुल्य। (९) **वेवीयते**—निरन्तर काँपती है। वी (चलना, जाना, अदादि) + यङ् + लट् प्र० १। अत्यधिक या बार-बार अर्थ में यङ् प्रत्यय है। अतः द्वित्व और आत्मनेपद।

५९. वधू का मार्ग सुखमय हो

मा हिंसिष्टं कुमार्यं, स्थूणे देवकृते पथि।
शालाया देव्या द्वारं, स्योनं कृण्मो वधूपथम्॥

अथर्व० १४-१-६३

अन्वय— हे स्थूणे, देवकृते पथि कुमार्यं मा हिंसिष्टम्। देव्याः शालायाः द्वारं वधूपथं स्योनं कृण्मः।

शब्दार्थ—(हे स्थूणे) हे स्वागत-द्वार के दोनों स्तम्भ, (देवकृते) विद्वानों के द्वारा बनाये गये, (पथि) मार्ग में, (कुमार्यम्) कुमारी वधू को, (मा) मत, (हिंसिष्टम्) हानि पहुँचाना। (देव्याः) दिव्य, (शालायाः) गृह के, (द्वारम्) द्वार को, (वधूपथम्) वधू के मार्ग को, (स्योनम्) सुखद, (कृण्मः) करते हैं।

हिन्दी अर्थ—हे स्वागत-द्वार के दोनों स्तम्भ! विद्वानों के द्वारा बनाए गए इस स्वागत-मार्ग में तुम्हारे द्वारा कुमारी वधू को कोई

हानि न पहुँचे। इस दिव्य (भव्य) भवन के द्वार को तथा वधू के मार्ग को हम सुखद बनाते हैं।

Eng. Tr.—O Two posts of reception-gate! erected by the wise men, manage so, that the bride may not be injured. We make of the door of this palatial building and the path of the bride pleasant.

अनुशीलन—इस मन्त्र में शिक्षा दी गई है कि वधू जब पतिगृह में आवे तो उसका समुचित सत्कार होना चाहिए। उसके स्वागत में सभी प्रकार की सावधानी बरतनी चाहिए। स्वागत के लिए जो द्वार आदि बनाये गये हों, वे कच्चे और कमजोर न हों, जो वर-वधू के ऊपर टूट कर गिर जाएँ और किसी प्रकार का आघात करें। मन्त्र में स्वागत-द्वारों का संकेत करते हुए उपदेश दिया गया है कि वधू के मार्ग को प्रशस्त करें। मन्त्र का यह भी भाव है कि केवल बाहरी सजावट पर ही सावधानी न बरती जाए, अपितु परिवार के अन्दर भी ऐसा वातावरण बनाया जाए, जिससे वधू को कोई कष्ट न हो। इसके लिए ही मन्त्र में निर्देश है कि वधू के मार्ग को प्रशस्त करें। वधू के मार्ग को प्रशस्त करने का उत्तरदायित्व वर के माता-पिता और मान्य जनों पर है। वे यदि स्नेह और सौहार्द का वातावरण वधू को देते हैं तो वधू भी उस परिवार के लिए श्री सिद्ध होगी।

टिप्पणी—(१) **मा हिंसिष्टम्**—हानि न पहुँचाओ। यहाँ हन् धातु का हानि पहुँचाना अर्थ है। मा—मत, हिंसिष्टम्—हिंस् (हिंसा करना, हानि पहुँचाना, रुधादि, पर०) + लुङ् + म० २। अडागम नहीं, Inj. है। (२) **स्थूणे**—दोनों खंभे। वधू के स्वागत-द्वार के दोनों खंभों के लिए है। इनसे वधू को कोई क्षति न पहुँचे। स्थूणा + सं० २। (३) **देवकृते पथि**—देवों अर्थात् विद्वानों के द्वारा बनाये इस मार्ग में। पथिन् (मार्ग) + स० १। (४) **देव्या शालायाः**—देवी शाला के अर्थात् भव्य भवन के। (५) **कृण्मः**—हम करते हैं। कृ (करना, स्वादि, पर०) + लट् उ० ३। (६) **वधूपथम्**—वधू के मार्ग को, वधू के स्वागत-मार्ग को। वधू + पथिन् + अ + द्वि० १। पथिन् के इन् का लोप।

६०. दम्पती का प्रेम अभेद्य हो

यथा नकुलो विच्छिद्य, संदधात्यहिं पुनः ।
एवा कामस्य विच्छिन्नं, सं धेहि वीर्यावति ।।

अथर्व० ६-१३९-५

अन्वय—यथा नकुलः अहिं विच्छिद्य पुनः संदधाति । एवा हे वीर्यावति, कामस्य विच्छिन्नं सं धेहि ।

शब्दार्थ—(यथा) जिस प्रकार, (नकुलः) न्योला, नेवला, (अहिम्) सांप को, (विच्छिद्य) काटकर, (पुनः) फिर, (संदधाति) जोड़ देता है । (एवा) इसी प्रकार से, (हे वीर्यावति) हे वीर्यावती ओषधि, हे वीर्यवर्धक सहस्रपर्णी ओषधि, (कामस्य) काम के, पारस्परिक प्रेमभाव के, (विच्छिन्नम्) टूटे हुए सम्बन्ध को, (सं धेहि) जोड़ दे, मिला दे ।

हिन्दी अर्थ—जिस प्रकार नेवला साँप को काटकर, फिर जोड़ देता है, इसी प्रकार हे वीर्यावती (सहस्रपर्णी ओषधि) तू (दम्पती के) प्रेमभाव के टूटे हुए सम्बन्ध को फिर जोड़ दे ।

Eng. Tr.—As the mongoose cuts a serpent into pieces and unites him, similarly, O herb sahasraparni ! re-unite the broken love of the couple.

अनुशीलन—इस मंत्र में दाम्पत्य प्रेम का मनोवैज्ञानिक वर्णन है । दाम्पत्य प्रेम जीवन की एक अनोखी विशेषता है । इसका विस्तृत वर्णन न संभव है और न अभीष्ट । मनोविज्ञान के अनुसार दम्पती में अपूर्व आकर्षण होता है । जिस प्रकार उत्तरी और दक्षिणी ध्रुवों में अपूर्व आकर्षण है, उसी प्रकार पति और पत्नी में अपूर्व आकर्षण होता है । दोनों के मन एक दूसरे के लिए व्याकुल रहते हैं । इसको वैदिक भाषा में अग्निसोम की का संयोग कहा जाता है । ये आग्नेय और सोमीय तत्त्व मिलकर सृष्टि रचना करते हैं । अतः वेद में 'अग्नीषोमौ' से संबद्ध सैकड़ों मन्त्र हैं । पति-पत्नी में प्रेम का एक ऐसा सूत्र संबद्ध है, जो दोनों को मिलाए रखता है । प्रणय कोप आदि अनेक ऐसे अवसर आते हैं, जब दोनों पृथक् हो जाते हैं,

परन्तु वह प्रेम-तन्तु उन्हें पुनः मिला देता है। इसका ही इस मंत्र में वर्णन है। उदाहरण के रूप में अहि और नकुल की बात कही गई है। यह प्राचीन मान्यता है कि न्योला सांप को छिन्न-भिन्न कर देता है और फिर जोड़ देता है। यह अनुसंधान का विषय है। प्रस्तुत विषय यही है कि प्रेम-तन्तु वियुक्त, विरही और विलग्न पति-पत्नी को पुनः मिला देता है। इस विषय में सहस्रपर्णी ओषधि को विशेष उपयोगी बताया गया है।

टिप्पणी—(१) **यथा नकुलः**—जिस प्रकार न्योला। यह जन-साधारण में मान्यता है कि न्योला सांप के टुकड़े कर देता है और उसे जोड़ देता है। इसका ही यहाँ वर्णन है। (२) **विच्छिद्य**—काटकर। वि + छिद् (काटना, रुधादि) + ल्यप् (य)। (३) **सं दधाति**—जोड़ देता है। सम् + धा (जोड़ना, जुहोत्यादि, पर०) + लट् प्र० १। (४) **एवा**—इसी प्रकार। एवम् के अर्थ में एव अव्यय है। छान्दस दीर्घ। (५) **कामस्य**—कामभावना के, प्रेमभाव के। (६) **विच्छिन्नम्**—टूटे हुए सम्बन्ध को। वि + छिद् (काटना) + क्त। त को न। (७) **सं धेहि**—जोड़ दो। सम् + धा (जोड़ना, जुहोत्यादि, पर०) + लोट् म० १। (८) **वीर्यावति**—वीर्यावती ओषधि का नाम है। इसे सहस्रपर्णी कहते हैं। यह वीर्यवर्धक उत्तेजक ओषधि है। सं० १ का रूप है।

६१. दम्पती में हार्दिक एकता हो

संवननी समुष्पला, बभ्रु कल्याणि सं नुद।
अमूं च मां च सं नुद, समानं हृदयं कृधि ॥

अथर्व० ६-१३९-३

अन्वय—हे बभ्रु, हे कल्याणि, संवननी समुष्पला सं नुद। अमूं च मां च सं नुद। हृदयं समानं कृधि।

शब्दार्थ—(हे बभ्रु) हे पीत वर्ण की सहस्रपर्णी ओषधि, (हे कल्याणि) हे कल्याण करने वाली, तू, (संवननी) मिलाने वाली, वशीकरण करने वाली, (समुष्पला) प्रेमसंबन्ध को उदीप्त करने वाली है। (सं नुद) तू प्रेरणा दे। (अमूं च) इस पत्नी को, (मां च) और मुझको, (सं नुद) प्रेरणा दे। (हृदयम्) हम दोनों के हृदय को, (समानम्) एक, (कृधि) करो, बनाओ।

हिन्दी अर्थ—हे पीत वर्ण की और कल्याण करने वाली सहस्र-पर्णी ओषधि, तू पति-पत्नी को मिलाने वाली और उनके प्रेम-संबन्ध को उद्दीप्त करने वाली है। तू हमें प्रेरित कर। तू इस पत्नी को और मुझे प्रेरणा दे। हम दोनों के हृदय को एक कर।

Eng. Tr.—O Yellow-coloured and beneficial Sahasra-parni herb ! unite the couple and increase their affection. May you impel, incite and unite us.

अनुशीलन—इस मंत्र में पति-पत्नी की हार्दिक एकता की कामना की गई है। पति और पत्नी के हृदय सदा मिले रहें, उनमें एकता हो और परस्पर आकर्षण हो। इस विषय में सहस्रपर्णी ओषधि की उपयोगिता का भी वर्णन किया गया है। सहस्रपर्णी ओषधि का गुण बताया गया है कि यह उत्तेजक होती है और वीर्यवर्धक है। इस ओषधि के सेवन से पति-पत्नी की स्वयं एक दूसरे से मिलने की इच्छा होती है। इस प्रकार पति-पत्नी में हार्दिक एकता होती है।

टिप्पणी—(१) **बभ्रु**—हे पीले रंग वाली। सहस्रपर्णी ओषधि के पत्ते पीले होते हैं। (२) **कल्याणि**—हे कल्याण करने वाली। कल्याणी + सं० १। (३) **संवननी**—मिलाने वाली। संवनन का अर्थ वशीकरण भी है। यह पति-पत्नी को मिलाने वाली है। सम् + वन् (जीतना, तनादि) + ल्युट् (अन) + ङीप् (ई)। (४) **समुष्पला**—प्रेरक, उत्तेजक है। प्रेम को उदीप्त करने वाली। ह्विटनी ने 'समुष्पला' पाठ माना है। (५) **सं नुद**—प्रेरित करो। परस्पर आकृष्ट करो। नुद् (प्रेरित करना, तुदादि) + लोट् प्र० १। (६) **समानम्**—समान, एक। (७) **कृधि**—कर, बना। कृ (करना, तनादि) + लोट् म० १। हि को धि।

६२. दम्पती में अक्षय प्रेम हो

इहेमाविन्द्र सं नुद, चक्रवाकेव दम्पती।
प्रजयैनौ स्वस्तकौ, विश्वमायुर्व्यश्नुताम्॥

अथर्व० १४–२–६४

अन्वय—हे इन्द्र, चक्रवाका इव इमौ दम्पती इह सं नुद। एनौ स्वस्तको प्रजया विश्वम् आयुः व्यश्नुताम् ।

शब्दार्थ—(हे इन्द्र) हे इन्द्र, (चक्रवाका इव) चक्रवाक पक्षी के जोड़े के तुल्य, चकवा-चकवी के तुल्य, (इमौ दम्पती) इस दम्पती को, पति-पत्नी को, (इह) इस संसार में, (सं नुद) प्रेरित करो। (एनौ) ये दोनों, पति-पत्नी, (स्वस्तकौ) सुन्दर घर वाले, (प्रजया) सन्तान से युक्त, (विश्वम्) संपूर्ण, (आयुः) आयु को, (व्यश्नुताम्) प्राप्त करें।

हिन्दी अर्थ—हे इन्द्र ! चक्रवाक-दंपती के तुल्य इस दम्पती को इस संसार में प्रेरित कर। ये दोनों सुन्दर घर वाले संतान से युक्त होकर पूर्ण आयु को प्राप्त करें।

Eng. Tr.—O Indra ! motivate this couple to live, like that of ruddy goose, in this world. May they, having good house and progeny, attain long life.

अनुशीलन—इस मन्त्र में दम्पती के अक्षय प्रेम की कामना की गई है। ऐसी मान्यता है कि चकवा-चकवी सबसे अधिक प्रेमी पक्षी हैं। ये दोनों पक्षी एक दूसरे के बिना नहीं रह सकते हैं। जितने समय इनका वियोग होता है, उतने समय ये व्याकुल रहते हैं। इसी प्रकार पति-पत्नी के विषय में कामना की गई है कि वे दोनों भी इसी भाँति सदा एक दूसरे से मिले रहें और जीवन में कभी भी पृथक् न हों।

दम्पती के विषय में दूसरी कामना यह की गई है कि वे सुयोग्य संतान से युक्त हों और दीर्घायु हों। जैसा कि अन्य मन्त्रों में भी प्रार्थना की गई है दम्पती सुसन्तान से युक्त हों, उसी प्रकार यहाँ भी सुसन्तान की कामना की गई है। साथ ही दम्पती दीर्घायु हों और पूर्ण आयु प्राप्त करें।

टिप्पणी—(१) सं नुद—प्रेरणा दे। अक्षय या अटूट प्रेम के लिए इन्हें प्रेरित कर। (२) **चक्रवाका इव**—चकवा पक्षी के जोड़े के तुल्य। चकवा-चकवी सबसे अधिक प्रेमी पक्षी माने जाते हैं। ये दोनों थोड़े समय

के लिए भी अलग होकर नहीं रह पाते। (३) प्रजया—संतान के साथ। प्रजा + तृ० १। (४) एनौ—ये दोनों। एतौ के स्थान पर एनौ है। एतद् (यह) + प्र० २। (५) स्वस्तकौ—सुन्दर घर वाले होकर। सु—सुन्दर, अस्त—गृह। अस्त या अस्तक का अर्थ घर है। (६) व्यश्नुताम्—प्राप्त करें। वि + अश् (पाना, स्वादि, पर०) + लोट् प्र० २।

६३. पति-पत्नी में अटूट प्रेम हो

अमोऽहमस्मि सा त्वं, सामाहमस्म्यृक् त्वं,
द्यौरहं पृथिवी त्वम्।
ताविह सं भवाव, प्रजामा जनयावहै ।।

अथर्व० १४-२-७१

अन्वय—अहम् अमः अस्मि, सा त्वम् (असि)। अहं साम अस्मि, त्वम् ऋक् (असि)। अहं द्यौः, त्वं पृथिवी। तौ इह सम्भवाव, प्रजाम् आ जनयावहै।

शब्दार्थ—(अहम्) मैं, अर्थात् पति, (अमः असिः) प्राण या बलरूप हूँ। (सा त्वम्) वह तू अर्थात् पत्नी शक्तिरूप है। (अहम्) मैं, (साम अस्मि) सामवेद हूँ, (त्वम्) तू अर्थात् पत्नी, (ऋक् असि) ऋग्वेद या ऋचा है। (अहं द्यौः) मैं द्युलोक हूँ; (त्वं पृथिवी) तू पृथिवी है। (तौ) वे हम दोनों, (इह) यहाँ, इस घर में या इस संसार में, (सं भवाव) मिलें, मिले रहें। (प्रजाम्) सन्तान को, (आजनयावहै) उत्पन्न करें।

हिन्दी अर्थ—मैं (पति) प्राणरूप हूँ और तू (पत्नी) शक्तिरूप है। मैं सामवेद के तुल्य हूँ और तू ऋग्वेद (ऋचा) के तुल्य है। मैं द्युलोक के तुल्य हूँ और तू पृथिवी के तुल्य है। हम दोनों इस संसार में मिलें और सन्तान को उत्पन्न करें।

Eng. Tr.—I (the husband) am the vital air and you (the wife) are the force. I am the Samaveda and you are the Ṛgveda. I am the heaven and you are the earth. May we unite in this world and procure progeny.

अनुशीलन—इस मन्त्र में पति-पत्नी के घनिष्ठ प्रेम की कामना की गई। यह मन्त्र विवाह संस्कार के समय भी पढ़ा जाता है। इसमें सुन्दर उदाहरणों के द्वारा समझाया गया है कि पति और पत्नी एक ही तत्व के दो विभिन्न अंग हैं। एक पूर्वपक्ष है तो दूसरा उत्तर पक्ष। 'साम' में एक 'सा' है और दूसरा 'अम'। पुरुष अम है और स्त्री सा है। इस प्रकार सा + अम = साम बनता है। यदि ऋग्वेद और सामवेद दो वेदों को लें तो पति सामन् या सामवेद है और स्त्री ऋचा या ऋग्वेद। इस प्रकार पति-पत्नी मिलकर साम और ऋग् बनते हैं। तीसरा उदाहरण दिया गया है कि द्युलोक और पृथ्वी मिलकर सृष्टि को चलाते हैं। पुरुष द्युलोक है तो स्त्री पृथ्वी। दोनों का समन्वयन होता है तो सृष्टि चलती है। पृथ्वी भापरूप में जल-समूह देती है और आकाश पृथ्वी को जल देता है। इस प्रकार दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। स्त्री और पुरुष भी इसी प्रकार एक दूसरे के पूरक हैं। दोनों के मिलन से नवीन सृष्टि होती है और वंश-परम्परा का विकास होता है।

टिप्पणी—(१) अमः—बल, शक्ति, प्राण। अम शब्द के अर्थ हैं—बल, शक्ति, वेग, तीव्रता, उत्साह। पति बल या प्राणरूप है तो पत्नी शक्ति-रूप है। (२) साम—सामवेद या सामवेद का मन्त्र। पति सामवेद के तुल्य प्रशंसनीय है और पत्नी ऋग्वेद के तुल्य संमाननीय है। (३) ऋक्—ऋचा या ऋग्वेद। ऋच् + प्र० १। (४) द्यौः—द्युलोक, आकाश। पति द्युलोक के तुल्य बीज का आधान करता है। (५) पृथिवी—पत्नी पृथिवी के तुल्य बीज को ग्रहण करती है। (६) सं भवाव—मिलें, संयुक्त हों। सम् + भू (होना, भ्वादि, पर०) + लोट् उ० २। (७) आ जनयावहै—उत्पन्न करें। जन् (पैदा होना, दिवादि, आ०) + णिच् + लोट् उ० २।

६४. पति-पत्नी के हृदय निश्छल हों

अहं वि ष्यामि मयि रूपमस्या,
वेददित् पश्यन् मनसः कुलायम्।

न स्तेयमद्मि मनसोदमुच्ये,
स्वयं श्रथ्नानो वरुणस्य पाशान् ।।

अथर्व० १४-१-५७

अन्वय—अहं वि ष्यामि। अस्याः रूपं मयि वेदत् इत्, मनसः कुलायं पश्यन्, स्तेयं न अद्मि। स्वयं वरुणस्य पाशान् श्रथ्नानः, मनसा उत् अमुच्ये।

शब्दार्थ—(अहम्) मैं अर्थात् पति, (वि ष्यामि) खोलता हूँ, मुक्त करता हूँ। मैं पत्नी को पितृगृह से मुक्त करता हूँ। (अस्याः रूपम्) इस पत्नी का रूप, (मयि) मेरे विषय में है अर्थात् इसका सौन्दर्य मेरे लिए है। (वेदत् इत्) ऐसा मैं अवश्य जानता हूँ। (मनसः) अपने मन के, (कुलायम्) घोंसला, आश्रयरूप इस पत्नी को, (पश्यन्) देखता हुआ, (स्तेयम्) चुराकर, चोरी से, (न अद्मि) नहीं खाता हूँ अर्थात् चोरी से किसी वस्तु का उपभोग नहीं करता हूँ। (स्वयम्) अपने आप, (वरुणस्य) वरुण के, (पाशान्) पाशों को, बन्धनों को, (श्रथ्नानः) शिथिल करता हुआ, (मनसा) मन से, मनोबल से, (उत् अमुच्ये) मुक्त होता हूँ, अर्थात् सांसारिक बन्धनों से मुक्त होता हूँ।

हिन्दी अर्थ—मैं (पत्नी को पितृगृह से) मुक्त करता हूँ। इसका रूप (सौन्दर्य) मेरे लिए है, यह मैं जानता हूँ। अपने मन के आश्रय रूप इस (पत्नी) को देखता हुआ (अर्थात् जानता हुआ), मैं चोरी से किसी वस्तु का भोग नहीं करता हूँ (अर्थात् करूंगा)। में स्वयं वरुण के पाशों को शिथिल करता हुआ, अपने मनोबल से (सांसारिक बन्धनों से) मुक्त होता हूँ।

Eng. Tr.—I release the bride from her paternal home. I know that her beauty is for me. I, presuming you as an abode of my heart, won't enjoy anything stealthily. I, loosening myself the snares of Lord Varuna, am redeemed from the warldly ties by virtue of my will-power.

अनुशीलन—यह मंत्र विवाह-संस्कार से संबद्ध है। पति पाणिग्रहण के समय इस मंत्र के द्वारा कतिपय प्रतिज्ञाएँ करता है। पति का कथन है कि

मैं पत्नी को पितृकुल से मुक्त करता हूँ। इसका सौन्दर्य मेरे लिए है। यह मेरे हृदय का आश्रय है। मैं इससे छिपाकर किसी वस्तु का उपभोग नहीं करूँगा और अपने पुरुषार्थ से जीवन के बन्धनों से मुक्त होऊँगा।

विवाह के पश्चात् कन्या पितृकुल से मुक्त होती है और उसका पतिकुल से सम्बन्ध हो जाता है। अब वह पतिकुल का एक अंग हो जाती है। पति का दूसरा कथन महत्त्वपूर्ण है कि स्त्री का सौन्दर्य पति के लिए है। इसी बात को कुमारसंभव में कालिदास ने पार्वती के मुँह से कहवाया है कि--'प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारुता' (कुमार० ५-१) अर्थात् स्त्री का सौन्दर्य पति को प्रसन्न करने के लिए होता है। स्त्री का सौन्दर्य और बाह्य प्रदर्शन अन्य जनों को आकृष्ट करने के लिए नहीं है, अपितु पति को ही सर्वात्मना प्रसन्न करने के लिए है। यदि पति पत्नी से प्रसन्न है, तो वह सौभाग्यवती है। पति पत्नी को अपने हृदय का आश्रय या आधार मानता है। पति के जो भी सुखात्मक या दुःखात्मक अनुभव हैं, वह सब पत्नी तक पहुँचने चाहिएँ। पत्नी पति के सुख और दुःख में सहभागिनी है। अतएव पति का यह कथन उपयुक्त है कि--'न स्तेयम् अद्मि' मैं कोई भी वस्तु छिपाकर नहीं खाऊँगा। यह पति और पत्नी दोनों के लिए नियम है। दोनों का कर्तव्य है कि वे एक दूसरे से छिपाकर न कोई वस्तु खावें और न अन्य वस्तुओं का उपभोग करें। दोनों का जीवन एक दूसरे के लिए खुला हुआ पृष्ठ हो।

अन्तिम वाक्य है कि मैं पति अपने पुरुषार्थ से जीवन के बन्धनों को नष्ट करूँगा और मनोबल से मुक्त हो जाऊँगा। मुक्त होना जीवन का लक्ष्य है। पति-पत्नी दोनों को अपने जीवन का लक्ष्य रखना चाहिए कि वे सुखी गृहस्थ जीवन व्यतीत करते हुए अन्त में मोक्ष के अधिकारी हों।

टिप्पणी--(१) **अहं विष्यामि**--मैं मुक्त करता हूँ। सो (सा, सि, बाँधना), वि + सो (सा, सि, खोलना, दिवादि) + लट् उ० १। वि + स्यामि। मैं पति पितृगृह से पत्नी को मुक्त करता हूँ। (२) **मयि रूपम्०**--इसका रूप या सौन्दर्य मेरे लिए है। (३) **वेदत् इत्**--जानामि एव, मैं

ऐसा जानता ही हूँ। वेदत्–विद् (जानना, अदादि, पर०) + लेट् प्र० १। इत्–ही, अवश्य। इद् निश्चयार्थक अव्यय है। (४) मनसः कुलायम्—कुलाय का अर्थ घोंसला है। पक्षियों का आश्रय-स्थान। यह पत्नी मेरे मन का आधार है। (५) पश्यन्—देखते हुए, समझते हुए। दृश् (पश्य, देखना) + शतृ प्र० १। (६) न स्तेयम्०—चोरी से कोई वस्तु नहीं खाता हूँ, अर्थात् छिपाकर कोई काम नहीं करता हूँ। (७) अद्मि—खाता हूं। अद् (खाना, अदादि) + लट् उ० १। (८) मनसा—मनोबल से। (९) उद् अमुच्ये—मुक्त होता हूँ। मनोबल से बन्धनों से मुक्त होता हूँ। उत् + मुच् (छोड़ना, तुदादि) + कर्मवाच्य य + लङ् उ० १। (१०) श्रथ्नानः—ढीला करते हुए। श्रथ् (ढीला करना, क्र्यादि) + लट् > शानच (आन)।

६५. दंपती के हृदय सदा मिले रहें

समञ्जन्तु विश्वे देवाः, समापो हृदयानि नौ।
सं मातरिश्वा सं धाता, समु देष्ट्री दधातु नौ॥

ऋग्० १०-८५-४७

अन्वय—विश्वे देवाः नौ हृदयानि समञ्जन्तु। आपः सम् (अञ्जन्तु)। मातरिश्वा सम् (दधातु), धाता सम् (दधातु), उ देष्ट्री नौ (हृदयानि) सं दधातु।

शब्दार्थ—(विश्वे देवाः) सभी देव, (नौ) हम दोनों के, पति-पत्नी के, (हृदयानि) हृदयों को, (सम् अञ्जन्तु) अच्छे प्रकार से मिलावें। (आपः) जल, (नौ हृदयानि समञ्जन्तु) हम दोनों के हृदयों को मिलावें। जल के तुल्य हमारे हृदय मिल जाएं। (मातरिश्वा) वायु, प्राणवायु, (सं दधातु) हमारे हृदयों को मिलावे। (धाता) सृष्टि का धारक परमात्मा, (सं दधातु) हम दोनों के हृदयों को मिलावे। (उ) और, (देष्ट्री) ज्ञान की देवी, वाग्देवी, सरस्वती, (नौ हृदयानि) हम दोनों के हृदयों को, (सं दधातु) मिलावे, परस्पर अनुकूल बनावे।

हिन्दी अर्थ—सभी देवता और जल-देवता हम दोनों (पति-पत्नी) के हृदयों को अच्छे प्रकार से मिलावें। मातरिश्वा (वायु-देवता), धाता (परमात्मा) और वाग्देवी (विद्यादेवी, सरस्वती) हम दोनों के हृदयों को मिलावें।

Eng. Tr.—May all the gods and the waters unite our hearts. May the Wind-god, the Supreme Being and the goddess of learning unite our hearts.

अनुशीलन—इस मंत्र में दम्पती के हृदयों की एकता की कामना की गई है। पति और पत्नी के हृदय दो जलों के तुल्य मिलकर एक हो जाएं। जिस प्रकार दो विभिन्न स्थानों से लाए हुए जल मिलकर एक हो जाते हैं और उन्हें पृथक् करना संभव नहीं है, उसी प्रकार पति और पत्नी मिलकर एक हो जावें और उन्हें किसी प्रकार पृथक् न किया जा सके। इस कार्य के लिए विभिन्न देवों से प्रार्थना की गई है कि वे दंपती के हृदयों को सदा संयुक्त रखें। इन देवों में विश्वेदेव, जल देवता, वायुदेवता, धाता (विधाता) और वाग्देवी हैं, ये देव पंच तत्त्वों और वाक्तत्त्व के प्रतिनिधि हैं। सभी देवों की कृपा होती है तो पति-पत्नी के हृदय एकरूप होकर रहते हैं।

टिप्पणी—(१) **समञ्जन्तु**—मिलावें। सम् + अञ्ज् (मिलाना, रुधादि, पर०) + लोट् प्र० ३। (२) **आपः**—जल देवता। जल के तुल्य हम दोनों के हृदय मिल जावें। (३) **मातरिश्वा**—वायु देवता, प्राणवायु। मातरि—अन्तरिक्ष में, श्वस्—बहने वाला। मातरिश्वन् + प्र० १। (४) **धाता**—धारण करने वाला, संसार का धारक परमात्मा। (५) **देष्ट्री**—उपदेश देने वाली, ज्ञान देने वाली, वाग्देवी, सरस्वती। दिश् (उपदेश देना) + तृ + ङीप् (ई)। (६) **सं दधातु**—मिलावे, परस्पर अनुकूल बनावें। सम् + धा (मिलाना, जोड़ना, जुहोत्यादि, पर०) + लोट् प्र० १। (७) **नौ हृदयानि**—हम दोनों के हृदयों को। आवयोः के स्थान पर नौ है। अस्मद् + ष० २। आवाम् (हम दोनों) के स्थान पर भी नौ होता है।

६६. पति-पत्नी का मन मिला रहे

अक्ष्यौ नौ मधुसंकाशे, अनीकं नौ समञ्जनम् ।
अन्तः कृणुष्व मां हृदि, मन इन्नौ सहासति ।।

अथर्व० ७-३६-१

अन्वय—नौ अक्ष्यौ मधुसंकाशे (भवेताम्), नौ अनीकं समञ्जनम् । मां हृदि अन्तः कृणुष्व । नौ मनः सह इत् असति ।

शब्दार्थ—(नौ) हम दोनों की, हम दोनों पति-पत्नी की, (अक्ष्यौ) दोनों आँखें, (मधुसंकाशे) मधु के सदृश मीठी, (भवेताम्) होवें । (नौ) हम दोनों के, (अनीकम्) मुख, (समञ्जनम्) अच्छे प्रकार से अलंकृत हों । (माम्) मुझको, (हृदि) अपने हृदय में, (अन्तः) अन्दर, (कृणुष्व) करो, रखो । (नौ) हम दोनों का, (मनः) मन, हृदय, (सह इत्) साथ, (असति) रहे, सदा मिला रहे ।

हिन्दी अर्थ—हम दोनों (पति-पत्नी) की आँखे मधु के तुल्य मधुर हों । हम दोनों के मुख अच्छे प्रकार से अलंकृत हों । मुझे अपने हृदय के अन्दर रखो । हम दोनों का मन सदा मिला रहे ।

Eng. Trans.—May our eyes be as sweet as honey. Let our faces be good-looking. May you put me in your heart and let our hearts remain united forever.

अनुशीलन—इस मन्त्र में कामना की गई है कि पति और पत्नी का हृदय सदा मिला रहे । पति अपने हृदय में पत्नी को प्रतिष्ठित करे और पत्नी पति को । जब यह 'अन्तः कृणुष्व' अपने हृदय में अन्दर रखो की प्रक्रिया पूरी होगी, तब दोनों में वास्तविक एकता स्थापित होगी । 'अन्तः कृणुष्व' में दो शब्द हैं—अन्तः और कृ । इससे ही अन्तःकरण शब्द बनता है । जब पति और पत्नी एक दूसरे को अपने अन्तःकरण के तुल्य हृदय में स्थान देंगे, तभी वास्तविक एकता होगी । इसका ही संकेत इस मन्त्र में किया गया है ।

इसके लिए दो साधनों का भी उल्लेख किया गया है--आँखों में मधुरता हो और मुंह पर आकर्षण और प्रसन्नता। आँख और मुंह आन्तरिक भावों को प्रकट करते हैं। आँखों से हमारी आत्मा दिखाई पड़ती है। आँखों में झाँककर बताया जा सकता है कि उसमें कितना प्रेम या घृणा का अंश है। आँखों में प्रेम, उल्लास और मधुरता होगी तो स्वयं दूसरा व्यक्ति आकृष्ट हो जाएगा। इसी प्रकार मुंह की चमक, प्रसन्नता और रागात्मकता दूसरे में भी राग की भावना जागृत कर देती है।

इस मन्त्र के द्वारा भी शिक्षा दी गई है कि प्रेम से देखें और मुंह से मधुर वचन निकालें। आँख और मुंह के सहयोग से सभी के हृदय को जीता जा सकता है।

टिप्पणी--(१) अक्ष्यौ--दोनों आँखें। अक्षि (आँख)+प्र० २। (२) नौ--हम दोनों की अर्थात् पति-पत्नी की। आवयोः के स्थान पर नौ है। (३) मधुसंकाशे--मधु--शहद, संकाश--सदृश। शहद के तुल्य माधुर्य से युक्त। प्र० २ का रूप है। (४) अनीकम्--मुख। अनीक का अर्थ प्रमुख, अग्रभाग, सेना का अग्रभाग भी है। (५) समञ्जनम्--सम्--अच्छे प्रकार से, अञ्जनम्--सजाया हुआ, चिकना-चुपड़ा। अच्छे प्रकार से अलंकृत, दर्शनीय। आँख का अग्रभाग अंजन से युक्त हो, यह अर्थ भी हो सकता है। (६) अन्तः कृणुष्व--अन्दर रखो। पति-पत्नी एक दूसरे को अपने हृदय में रखें। कृ (करना, स्वादि, आ०)+लोट् म० १। (७) सह इत्--साथ ही। सदा साथ रहें। (८) असति--रहे। अस् (होना, अदादि, पर०)+लेट् प्र० १।

६७. दम्पती का मन एक हो

या दम्पती समनसा, सुनुत आ च धावतः।
देवासो नित्ययाशिरा ॥

ऋग्० ८-३१-५

अन्वय—हे देवासः, या समनसा दम्पती सुनुतः, च आ धावतः। नित्यया आशिरा (युज्येते)।

शब्दार्थ—(हे देवासः) हे देवो, (या-यौ) जो दोनों, (समनसा-समनसौ) समान मन वाले, (दम्पती) पति-पत्नी, (सुनुतः) यज्ञ में सोमरस निकालते हैं। (च) और, (आ धावतः) दौड़ते हैं, कठिन परिश्रम करते हैं। (नित्यया आशिरा) वे सदा दूध आदि से, (युज्येते) युक्त होते हैं। अर्थात् उन्हें सदा दुग्धादि या अन्न समृद्धि प्राप्त होती है।

हिन्दी अर्थ—हे देवो! जो समान हृदय वाले दम्पती सदा यज्ञ में सोमरस निकालते हैं और कठिन परिश्रम करते हैं, वे सदा दुग्धादि से सम्पन्न रहते हैं।

Eng. Tr.—O Gods! the couple, having union of hearts, pressing the Sama-juice and working hard, are blessed with inexhaustible prosperity.

अनुशीलन—इस मन्त्र में दम्पती को दो शिक्षाएँ दी गई हैं—प्रतिदिन यज्ञ करें, निरन्तर परिश्रम करें। इसका फल बताया गया है कि उनके घर में दूध घी आदि की कभी कमी नहीं होती।

प्रथम शिक्षा दी गई है कि दम्पती के हृदय मिले हुए हों और वे नित्य यज्ञ करें। जिस घर में यज्ञ होता है, वहाँ स्नेह का संचार होता है, दूषित वायु का संहार होता है, शुद्ध वायु व्याप्त होती है, जीवन में आस्तिकता आती है और पारिवारिक सौमनस्य बढ़ता है। इसलिए दम्पती का कर्तव्य है कि वे नियमित रूप से प्रतिदिन यज्ञ करें।

दम्पती के लिए दूसरी शिक्षा दी गई है कि वे सदा कर्मठ रहें, प्रयत्नशील रहें और पुरुषार्थ से कभी पीछे न हटें। अतएव वेद ने 'धावतः' का प्रयोग किया है। जो सदा दौड़ते हैं, श्रम करते हैं, शान्ति से नहीं बैठते हैं, नवीन उद्योग करते हैं, उन्हें सदा वैभव प्राप्त होता है।

इसका परिणाम यह बताया गया है कि उस परिवार में दूध घी आदि की कमी नहीं पड़ती है। यह एक सांकेतिक शब्द है। इसका अभिप्राय

यह है कि उस घर में लक्ष्मी का सदा वास होता है, कभी किसी वस्तु की कमी नहीं होती।

टिप्पणी—(१) या—यौ, जो दोनों। यौ के स्थान पर या है। (२) समनसा—समनसौ, समान मन वाले, एक प्रकार से सोचने वाले। समनस् + प्र० २। समनसौ के स्थान पर समनसा है। (३) सुनुतः—निचोड़ते हैं, सोमरस निकालते हैं। प्रतिदिन यज्ञ में सोमरस निकालते हैं। प्रतिदिन यज्ञ में सोमरस भी निकाला जाता था। सु (निचोड़ना, रस निकालना, स्वादि पर०) + लट् प्र० २। (४) आ धावतः—दौड़ते हैं, परिश्रम करते हैं। धाव् (दौड़ना, भ्वादि, पर०)+लट् प्र० २। धाव् धातु का अर्थ साफ करना भी है। तब अर्थ होगा—जो अपने गृहादि को साफ रखते हैं। (५) नित्यया आशिरा—सदा दूध आदि से युक्त होते हैं। आशिर् + तृ० १। आशिर् का अर्थ है—सोमरस में मिलाया जाने वाला दूध, दही या अन्न आदि। आशिर् तीन प्रकार का होता है—गवाशिर्, दध्याशिर, यवाशिर्। सोमरस में मिलाया जाने वाला दूध, दही या अन्न। तीनों के मिलाने पर त्र्याशिर् होता है। (ऋग्० ५-२७-५)

६८. दम्पती के मन और कर्म एक हों

सं वां मनांसि सं व्रता
समु चित्तान्याकरम्।
अग्ने पुरीष्याधिपा भव त्वं न
इषमूर्जं यजमानाय धेहि॥

यजु० १२-५८

अन्वय—वां मनांसि सम् (आकरम्), व्रता सम् (आकरम्), उ चित्तानि सम् आकरम्। हे अग्ने, हे पुरीष्य, त्वं नः अधिपाः भव। यजमानाय इषम् ऊर्जं धेहि।

शब्दार्थ—(वाम्) तुम दोनों के, तुम दोनों पति-पत्नी के, (मनांसि) मन को, (सम् आकरम्) संगत करता हूँ, समन्वित करता हूँ। (व्रता) तुम

दोनों के कर्मों को, (सम् आकरम्) समन्वित करता हूं। (उ) और, (चित्तानि) तुम्हारे चित्त को, (सम् आकरम्) सुसंगत करता हूं। (हे अग्ने) हे अग्नि, (पुरीष्य) हे ऐश्वर्य-संपन्न, (त्वम्) तुम, (नः) हमारे, (अधिपाः) अधिपति, रक्षक, (भव) होओ। (यजमानाय) यज्ञकर्ता को, (इषम्) अन्न, (ऊर्जम्) वल, (धेहि) दीजिए, रखिए।

हिन्दी अर्थ—मैं दम्पती के मन, कर्म और चित्त को सर्वथा संगत (एकरूप) करता हूँ। हे ऐश्वर्यशाली अग्नि (परमात्मन्), तुम हमारे पालक होओ। तुम यजमान को अन्न और बल दो।

Eng. Tr.—I harmonise the minds, actions and hearts of the couple. O bounteous Fire-god ! may you be our guardian. Vouchsafe food and strength on the sacrificer.

अनुशीलन—इस मंत्र में दम्पती को शिक्षा दी गई है कि उनके मन, कर्म और चित्त एक हों। इसका फल बताया गया है कि उन्हें शक्ति और अन्न प्राप्त होता है। उपनिषद् का कथन है कि—

यन्मनसा ध्यायति तद् वाचा वदति, यद् वाचा वदति तत् कर्मणा करोति, यत् कर्मणा करोति तद् अभिसंपद्यते।

अर्थात् मनुष्य जैसा मन से सोचता है, उसी प्रकार की बात कहता है। जैसी बात कहता है, वैसा ही कर्म करता है। जैसा कर्म करता है, उसी प्रकार का हो जाता है। यह मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि मनुष्य का जैसा चिन्तन होगा, वैसा ही उसका जीवन भी होगा।

इस मंत्र में दम्पती को शिक्षा दी गई है कि उनके चिन्तन, विचार और कर्म में एकरूपता हो। उन्हें जीवन में सुखी और संपन्न होना है, अतः उनके विचार भी उच्च होने चाहिएं। विचार मनुष्य के निर्माता हैं। मनुष्य के जैसे विचार होंगे, वह वैसा ही बनता जाएगा। शुभ विचारों से उन्नति और अशुभ विचारों से अवनति होती है। दम्पती का कर्तव्य है कि वे उन्नति का मार्ग अपनावें। इसके फलस्वरूप उन्हें जीवन में शक्ति और धन-धान्य की समृद्धि प्राप्त होगी।

टिप्पणी—(१) वाम्—तुम दोनों के। युवयोः के स्थान पर वाम् है। युष्मद् + ष० २। (२) व्रता—व्रतानि, कर्मों को। व्रत का अर्थ कर्म है। व्रतानि के स्थान पर व्रता है। (३) सम् आकरम्—सम्-अच्छे प्रकार से, आकरम्-संगत करता हूँ। आ + अकरम्—कृ (करना, तनादि, पर०) + लुङ् उ० १। (४) पुरीष्य—हे ऐश्वर्य-सम्पन्न। पुरीष (ऐश्वर्य) + य। पुरीष के अन्य अर्थ हैं—अन्न, जल, बल, पशु, पक्षी, देवता, नक्षत्र, प्राण। ऐश्वर्ययुक्त को पुरीष्य कहते हैं-'पुरीष्य इति वै तमाहुर्यः श्रियं गच्छति' शत० ब्रा० २-१-१-७। (५) अधिपाः—अधिपति, पालक, पोषक। अधि + पा + प्र० १। (६) भव—होओ। भू (होना, भ्वादि) + लोट् म० १। (७) धेहि—रखो, दो। धा (रखना, जुहोत्यादि, पर०) + लोट् म० १।

६९. दम्पती सकुशल रहें

पिता नोऽसि पिता नो बोधि
नमस्ते अस्तु मा मा हिंसीः।
त्वष्टृमन्तस्त्वा सपेम,
पुत्रान् पशून् मयि धेहि,
प्रजामस्मासु धेहि,
अरिष्टाहं सह पत्या भूयासम् ॥

यजु० ३७-२०

अन्वय—(त्वम्) नः पिता असि, पिता नः बोधि। नमस्ते अस्तु, मा मा हिंसीः। त्वष्टृमन्तः त्वा सपेम। मयि पुत्रान् पशून् धेहि। अस्मासु प्रजां धेहि। अहं पत्या सह अरिष्टा भूयासम्।

शब्दार्थ—(त्वम्) तू, हे परमात्मन्, तुम, (नः) हमारे, (पिता असि) पिता हो। (पिता) पिता के तुल्य तुम, (नः) हमें, (बोधि) ज्ञान दो, प्रबुद्ध करो। (नमस्ते अस्तु) तुम्हें नमस्कार हो। (मा) मुझको, (मा) मत, (हिंसीः) हानि पहुँचाओ। (त्वष्टृमन्तः) श्रेष्ठ वाणी से युक्त हम, (त्वा) तेरी, (सपेम) सेवा करें। (मयि) मुझे, मेरे लिए, (पुत्रान्) पुत्र, (पशून्)

पशु, (धेहि) दीजिए। (अस्मासु) हमें, (प्रजां धेहि) सन्तान दीजिए। (अहम्) मैं, (पत्या सह) पति के साथ, (अरिष्टा) सकुशल, अक्षत, (भूयासम्) होऊँ।

हिन्दी अर्थ—हे परमात्मन्, तुम हमारे पिता हो। तुम पिता के तुल्य हमें ज्ञान दो। तुम्हें नमस्कार है। तुम मेरी किसी प्रकार हानि न करो। श्रेष्ठ वाणी-युक्त हम तेरी सेवा (उपासना) करते हैं। तुम मुझे पुत्र और पशु दो। हमें सन्तान दो। मैं अपने पति के साथ सकुशल (अक्षत) रहूँ।

Eng. Tr.—O God ! you are our father. Bestow knowledge on us like a father. We pay homage to you. May you not harm me in any way. We worship you with the melodious hymns. May you confer progeny and animals upon me, so that I may live with my husband comfortably.

अनुशीलन—इस मन्त्र में शिक्षा दी गई है कि परमात्मा ही हमारा पिता है। वही ज्ञान का दाता है। हम पवित्र मन से उसकी उपासना करें। उसकी कृपा से ही संतान और धन-धान्य मिलता है। वही दम्पती के जीवन को सौभाग्यशाली बनाने वाला है।

दम्पती हों या अन्य कोई सबको मूलरूप में यह समझना है कि हम परमात्मा के पुत्र हैं और परमात्मा हमारा पिता है। जिस समय यह विचार मन में उत्पन्न होता है कि परमात्मा हमारा पिता है, रक्षक है और ज्ञान का दाता है, उसी समय से हमारे हृदय में परमात्मा के प्रति श्रद्धा जागृत होती है। यह श्रद्धा ही हमारे ज्ञान और आस्तिकता के विकास में सहायक होती है। श्रद्धा का फल ज्ञान है। ज्ञान का फल आस्तिकता है और आस्तिकता का फल है ईश्वरोपासना। ईश्वरोपासना का फल है—मानव-जीवन का सुखमय होना और धन-धान्य एवं श्री की वृद्धि। यही एक मार्ग है जो दम्पती के जीवन को सकुशल बनाता है। अतः मंत्र के प्रारम्भ में परमात्मा को पिता कहा गया है और मंत्र के अन्त

में जीवन सुखमय होने की बात कही गई है। मध्य में उससे संबद्ध अन्य प्रक्रिया बताई गई है।

जिस मनुष्य में आस्तिकता और सात्त्विकता जागृत नहीं होती है, वह आकृति से मनुष्य होने पर भी साक्षात् पशु है। उसका जीवन पाशविक है। धनार्जन, उदरपूर्ति और सांसारिक सुखों की प्राप्ति मनुष्य के लक्ष्य नहीं है, इन्हें अधम व्यक्ति भी प्राप्त कर सकते हैं। अतः मंत्र में शिक्षा दी गई है कि अपने पिता को देख सकें, उसे जान सकें और उसकी स्तुति से उसे प्राप्त कर सकें तो मनुष्य का जीवन सफल हो सकेगा। तभी उसे सभी प्रकार का सुख और शान्ति मिल सकेगी।

टिप्पणी—(१) नः—हमारे। अस्माकम् के स्थान पर नः है। अस्मत् + ष० ३। (२) बोधि—प्रवुद्ध करो, ज्ञान दो। बुध् (जागना, जगाना, भ्वादि पर०) + लुङ् म० १। अडागम नहीं। (३) मा—मुझको। माम् के स्थान पर मा है। (४) मा हिंसीः—हिंसा मत करना। मुझे हानि न पहुँचाना। हिंस् (हिंसा करना, रुधादि, पर०) + लुङ् म० १। मा के कारण अडागम नहीं, Inj. है। (५) त्वष्टृमन्तः—श्रेष्ठ वाणी से युक्त। 'वाग्वै त्वष्टा' ऐत० ब्रा० २-४। वाणी को त्वष्टा कहते हैं। वाणी से सब कुछ बनाया जाता है। त्वष्टा को पशु, वीर्य और रूप का अधिपति माना जाता है। (६) सपेम—हम सेवा करें। सप् (सेवा करना, भ्वादि, पर०) + विधिलिङ् उ० ३। (७) धेहि—रखो, दो। धा (रखना, जुहोत्यादि, पर०) + लोट् म० १। (८) अरिष्टा—अक्षत, कुशल। अरिष्ट + टाप् (आ)। (९) भूयासम्—होऊँ। भू (होना, भ्वादि, पर०) + आशीर्लिङ् उ० १।

७०. दम्पती का मार्ग प्रशस्त हो

अनृक्षरा ऋजवः सन्तु पन्था

येभिः सखायो यन्ति नो वरेयम्।

समर्यमा सं भगो नो निनीयात्
सं जास्पत्यं सुयममस्तु देवाः ॥

ऋग्० १०-८५-२३; अथर्व० १४-१-३४

अन्वय—(हे देवाः) पन्थाः अनृक्षराः ऋजवः सन्तु। येभिः नः सखायः वरेयं यन्ति। अर्यमा नः सं निनीयात्, भगः सम् (निनीयात्)। हे देवाः, जास्पत्यं सम्, सुयमम् अस्तु।

शब्दार्थ—(हे देवाः) हे देवो, (पन्थाः) हमारे मार्ग, (अनृक्षराः) निष्कंटक, निर्बाध, (ऋजवः) सरल, सुखद, (सन्तु) होवें। (येभिः) जिनसे, जिन मार्गों से, (नः) हमारे, (सखायः) मित्रगण, संबन्धिगण, (वरेयम्) वर के घर को, (यन्ति) जाते हैं। (अर्यमा) अर्यमा देव, न्याय का देवता, (नः) हमें, (सं निनीयात्) अच्छे प्रकार से ले जावे। (भगः) भग देवता, सौभाग्य का देवता, (सं निनीयात्) हमें अच्छे प्रकार ले जावे। (हे देवाः) हे देवो, (जास्पत्यम्) हमारा दाम्पत्य-जीवन, (सम्) कुशलतायुक्त, (सुयमम्) सुन्दर संयम-युक्त, (अस्तु) होवे।

हिन्दी अर्थ—हे देवो! हमारे (दम्पती के) मार्ग निष्कण्टक और सुगम हों, जिनसे हमारे मित्रगण वर के गृह को जाते हैं। अर्यमा (न्याय का देव) और भग (ऐश्वर्य का देव) हमें सुखपूर्वक ले जावें। हमारा दाम्पत्य जीवन सुखद और संयम से युक्त होवे।

Eng. Tr.—O Gods! let the path of the couple, bringing the marriage-party to the husband's house, be smooth and thornless. May the gods Aryaman and Bhaga bestow safety on us. May our conjugal life be peaceful and regulated.

अनुशीलन—इस मंत्र में दो बातों की ओर ध्यान आकृष्ट किया गया है—एक साधन है, दूसरा साध्य। दम्पती के जीवन का मार्ग सरल और निष्कंटक हो, यह साध्य है। इस साध्य को कैसे प्राप्त किया जा सकता है,

इसका उत्तर मंत्र के अन्तिम चरण में दिया गया है—दम्पती का जीवन 'सुयमम् अस्तु' यह साधन है। इससे संजास्पत्यम् अर्थात् सुखी दाम्पत्य जीवन की सृष्टि होती है।

प्रत्येक दम्पती की कामना होती है कि उसका जीवन सुखमय और निष्कटंक हो, परन्तु ऐसा नहीं होता। यह सत्य सिद्धान्त है कि मनुष्य अपने कर्मों का फल भोगता है। जैसा बोएँगे, वैसा काटेंगे। सुख बोएँगे, सुख काटेंगे और दुःख बोएँगे, दुःख काटेंगे। इसकी ओर दम्पती ध्यान नहीं देते हैं। अतः जीवन सदा सुखमय और निष्कंटक नहीं हो पाता है। संजास्पत्यम् अर्थात् सुखमय दाम्पत्य जीवन का रहस्य 'सुयमम्' है। जीवन जितना संयमी, नियमित और कर्मनिष्ठ होगा, उतना ही गृहस्थ जीवन सुखमय होगा। अपनी आवश्यकताओं को संक्षिप्त रखना, मितव्ययिता, कठिन पुरुषार्थ, दुर्गुणों से बचना, कुसंगति से बचना, काम-क्रोध आदि दुर्गुणों से दूर रहना, मदकारक वस्तुओं के सेवन से निवृत्ति आदि ऐसे संयम के उपाय हैं, जो दम्पती के जीवन की सभी विघ्न-बाधाओं को हटाते हैं और उनके जीवन का मार्ग सदा के लिए प्रशस्त करते हैं।

टिप्पणी—(१) **अनृक्षराः**—निष्कंटक, बाधारहित। ऋक्षर—कांटा, अनृक्षर—काँटे से रहित। (२) **ऋजवः**—सरल, सुगम। ऋजु + प्र० ३। (३) **पन्थाः**—मार्ग। पथिन् + प्र० ३। पन्थानः के स्थान पर पन्थाः है। (४) **सखायः**—मित्रगण, सम्बन्धी जन। सखि + प्र० ३। (५) **यन्ति**—जाते हैं। इ (जाना, अदादि, पर०) + लट् प्र० ३। (६) **वरेयम्**—वर-संबन्धी गृह को, वर के घर को। वरेय—वर + एय। वर-सम्बन्धी। (७) **निनीयात्**—ले जावे। नी (ले जाना, भ्वादि, पर०) + विधिलिङ् प्र० १। (८) **सम्**—ठीक ढंग से, सकुशल। (९) **जास्पत्यम्**—दाम्पत्य या दाम्पत्य जीवन। जाया + पति = जास्पति + ण्य (य)। जायापति का संक्षिप्त रूप जास्पति है। उससे जास्पत्य है। (१०) **सुयमम्**—सुन्दर संयम से युक्त। इसका सुन्दर जोड़े वाला अर्थ भी हो सकता है। यम—

जोड़ा, युगल। (११) पाठभेद—अथर्ववेद में पाठ है—'सं भगेन समर्यम्णा सं धाता सृजतु वर्चसा'। अर्थ है—धाता भग और अर्यमा के साथ इसे तेज से युक्त करे।

७१. पति-पत्नी सदा सुखी रहें

प्र त्वा मुञ्चामि वरुणस्य पाशाद्
येन त्वाबध्नात् सविता सुशेवः।
ऋतस्य योनौ सुकृतस्य लोके
अरिष्टां त्वा सह पत्या दधामि ।।

ऋग्० १०-८५-२४; अथर्व० १४-१-१९

अन्वय—त्वा वरुणस्य पाशात् प्र मुञ्चामि, येन सुशेवः सविता त्वा अवध्नात्। ऋतत्य योनौ, सुकृतस्य लोके, अरिष्टां त्वा पत्या सह दधामि।

शब्दार्थ—(त्वा) तुझको, (वरुणस्य) वरुण के, (पाशात्) पाशों से, बन्धन से, (प्र मुञ्चामि) मुक्त करता हूँ। (येन) जिस पाश से, (सुशेवः) सुसेव्य या सुखद, (सविता) सविता देव ने, (त्वा) तुझ वधू को, (अबध्नात्) बाँधा था। (ऋतस्य) सत्य या यज्ञ के, (योनौ) आधार, (सुकृतस्य) सत्कर्म के, (लोके) लोक में या गृह में, (अरिष्टाम्) अक्षत, दुःखरहित, (त्वा) तुझको (पत्या सह) पति के साथ, (दधामि) रखता हूँ।

हिन्दी अर्थ—हे वधू, मैं तुझको वरुण के पाश से मुक्त करता हूँ, जिससे सुखद सविता देव ने तुझे बाँध रखा था। सत्य के आधार रूप एवं सत्कर्मों के स्थान इस गृह में सकुशल तुझको पति के साथ रखता हूँ।

Eng. Tr.—O Bride! I set you free from the noose of Varuṇa, by which the god savitar had restricted you. I put you with your husband in this house, which is the abode of truth and virtues.

अनुशीलन—इस मन्त्र में वरुण के बन्धन से मुक्ति और सुकृत के लोक में निवास की कामना की गई है। वरुण का बन्धन क्या है? क्या दम्पती ही वरुण के पाश से बद्ध हैं? वरुण के बन्धन से मुक्ति का क्या उपाय है?

वरुण का बन्धन या पाश काम-पाश है। इससे दम्पती ही नहीं, सारा संसार बद्ध है। वरुण के पाश से मुक्ति का साधन केवल संयम है। वरुण जल का देवता है। रज और वीर्य दोनों जलीय तत्त्व हैं। इनके सदुपयोग और दुरुपयोग का नियन्त्रण वरुण के द्वारा होता है। वैदिक साहित्य में वरुण सबसे कठोर और न्यायप्रिय देव है। वह किसी को क्षमा नहीं करता है। उसके दूत सारे संसार के कण-कण में व्याप्त हैं। उसने मानव मात्र को रज और वीर्य दिया है। इनका उचित उपयोग ऋत का पालन है, अन्यथा अनृत की ओर प्रवृत्ति है। वरुण ने काम-भावना का पाश या बन्धन संसार में फैलाया हुआ है। जो चाहे इस बन्धन में फँस जाए, जो न चाहे न फँसे। इस वरुण के पाश पर नियन्त्रण ही उसके पाश से मुक्त होना है। जहाँ से इस नियन्त्रण का आरम्भ होता है, वहीं से ऋत का उदय और सुकृत लोक का दर्शन प्रारम्भ होता है।

ऋत का उदय होना संयम का प्रारम्भ होना है। असंयम से ऋत, सत्य और संजीवनी शक्ति का नाश होता है। संयम से '**ऋतस्य योनौ**' ऋत के मूल की स्थापना होती है। जब मनुष्य में संयम की स्थापना होगी तो सुकृत लोक या स्वर्ग लोक स्वयं दिखाई देने लगेगा।

इस मन्त्र में यही शिक्षा दी गई है कि पति पत्नी को असंयम के मार्ग से हटाकर संयम के मार्ग पर लाता है और वह अपना तथा पत्नी का जीवन सुखमय बनाकर परिवार में स्वर्ग की सृष्टि करता है।

टिप्पणी—(१) **प्र मुञ्चामि**—छोड़ता हूँ, मुक्त करता हूँ। मुच् (छोड़ना) तुदादि, पर०) + लट् उ० १। (२) **अबध्नात्**—बाँधा था। बन्ध् (बाँधना, क्र्यादि, पर०)+लङ् प्र० १। (३) **सुशेवः**—सुसेव्य, सुन्दर सेवा करने वाला, मित्र, अतिप्रिय। सु + शेवः। (४) **ऋतस्य योनौ**—पति का

घर ऋत अर्थात् सत्य का आधार है। जहाँ सब सत्य बोलते हैं। ऋत का यज्ञ अर्थ भी है। जहाँ यज्ञ का आधार यज्ञशाला है। (५) सुकृतस्य लोके—सत्कर्मों के लोक में। जिस घर में सभी सुकर्म करने वाले हैं। (६) अरिष्टाम्—अ--नहीं, रिष्ट–क्षति। क्षति या कष्ट से रहित, सुखयुक्त, सकुशल। (७) दधामि—रखता हूँ। धा (रखना, जुहोत्यादि, पर०)+लट् उ० १।

७२. दम्पती का स्नेह सदा बढ़े

अग्ने शर्धं महते सौभगाय
तव द्युम्नान्युत्तमानि सन्तु।
सं जास्पत्यं सुयममा कृणुष्व
शत्रूयतामभि तिष्ठा महांसि॥

ऋग्० ५-२८-३; अथर्व० ७-७३-१०;
यजु० ३३-१२; तैत्ति० ब्रा० २-४-१-१

अन्वय—हे अग्ने, महते सौभगाय शर्धं, तव द्युम्नानि उत्तमानि सन्तु। जास्पत्यं सम्, सुयमम् आ कृणुष्व। शत्रूयतां महांसि अभि तिष्ठ।

शब्दार्थ—(हे अग्ने) हे अग्नि, हे तेजस्वी व्यक्ति या पति, (महते) महान्, विशाल, (सौभगाय) सौभाग्य के लिए, (शर्धं) प्रयत्न करो, कटिबद्ध हो, अपना शक्ति-प्रदर्शन करो। (तव) तेरे, (द्युम्नानि) तेज, यश, ऐश्वर्य, (उत्तमानि) उत्तम, (सन्तु) हों। (जास्पत्यम्) दाम्पत्य जीवन को, (सम्) अच्छा, (सुयमम्) संयमी, जितेन्द्रिय, (आकृणुष्व) करो, बनाओ। (शत्रूयताम्) शत्रुता करने वालों के, (महांसि) तेज को, बल को, शत्रु को, (अभितिष्ठ) रौंद दो, नष्ट कर दो, अभिभूत कर दो।

हिन्दी अर्थ—हे अग्नि (हे तेजस्वी व्यक्ति)! तू अपने महान् सौभाग्य के लिए कटिबद्ध हो। तेरे यश और ऐश्वर्य उत्तम हों। तू अपने दाम्पत्य जीवन को अच्छा और संयमी बना। तू शत्रुता करने वालों के तेज और बल को अभिभूत कर दे (पैर से रौंद दे)।

Eng. Tr.—O Glorious one! strive for the greater prosperity. May your fame and wealth be excellent. Make your conjugal life well-regulated and peaceful. May you crush the glory of the enemies.

अनुशीलन—इस मंत्र में शिक्षा दी गई है कि यदि उत्तम ऐश्वर्य चाहते हो तो कठोर परिश्रम करो। 'शर्ध' के द्वारा निर्देश दिया गया है कि कमर कसो, उठकर तैयार हो जाओ और निरन्तर प्रयत्न करो। जहाँ पुरुषार्थ और उद्योग है, वहाँ श्री का निवास है। श्री पुरुषार्थ की संगिनी है। अतएव ऐतरेय ब्राह्मण में कहा है कि—**चरैवेति, चरैवेति। इन्द्र इच्चरतः सखा।**

बढ़ते रहो, बढ़ते रहो। परमात्मा पुरुषार्थी का मित्र है। इस मंत्र में भी यही भाव दिया गया है कि निरन्तर पुरुषार्थ करो। तुम्हारा सौभाग्य बढ़ेगा और तुम्हारा ऐश्वर्य सर्वोत्कृष्ट होगा। इसके साथ ही मंत्र ७० के तुल्य इस मंत्र में भी संयम के महत्त्व पर बल दिया गया है। संयम से ही दाम्पत्य जीवन सुखमय होगा। दम्पती की शारीरिक, मानसिक और आत्मिक शक्तियों का विकास होगा। इस विकास का परिणाम यह होगा कि शत्रु उनकी ओर दृष्टि उठाकर नहीं देख सकेंगे। वे शत्रुओं के तेज का मर्दन कर सकेंगे। काम, क्रोध, मद, लोभ आदि दुर्गुण भी शत्रु हैं। ये सदा घात लगाए रहते हैं। ये जहाँ छिद्र देखते हैं, वहीं आक्रमण कर देते हैं। इन शत्रुओं पर विजय पाना है तो संयम का मार्ग अपनाना होगा, जीवन को नियमित और कठोर परिश्रमी बनाना होगा। तभी इन शत्रुओं पर विजय प्राप्त होगी।

टिप्पणी—(१) **अग्ने**—हे अग्नि। तेजस्विता के आधार पर तेजस्वी व्यक्ति को भी अग्नि कहते हैं। (२) **शर्ध**—शक्ति प्रदर्शन करो, कटिबद्ध हो, मोर्चा लो। शृध् (शक्ति-प्रदर्शन करना, मोर्चा लेना, भ्वादि, पर०) + लोट् म० १। (३) **महते सौभगाय**—बड़े सौभाग्य के लिए, बड़ी श्रीवृद्धि के लिए। (४) **द्युम्नानि**—तेज। द्युम्न के अर्थ हैं—यश, अन्न, धन, ऐश्वर्य। (५) **सन्तु**—हों। अस् (होना, अदादि) + लट् प्र० ३। (६) **सम्**—अच्छा, सुखद। (७) **जास्पत्यम्**—दाम्पत्य जीवन। जाया + पति का संक्षिप्त रूप

जास्पति है। जास्पति+भाव अर्थ में ष्यञ् (य)। (८) सुयमस्—संयम वाला, नियमित जीवन वाला, जितेन्द्रिय। (९) आ कृणुष्व—करो। कृ (करना, स्वादि, आ०)+ लोट् म० १। (१०) शत्रूयताम्—शत्रुवत् व्यवहार करने वालों का। शत्रु + नामधातु य+शतृ+ष० ३। (११) अभितिष्ठ—दबा दो, पैर से रौंद दो, नष्ट कर दो। अभि+स्था (दबाना, भ्वादि)+ लोट् म० १। (१२) महांसि—तेज, बल। महस् (नपुं०)+द्वि० ३।

७३. दम्पती प्रसन्नचित्त रहें

स्योनाद्योनेरधि बुध्यमानौ
हसामुदौ महसा मोदमानौ।
सुगू सुपुत्रौ सुगृहौ तराथो
जीवावुषसो विभातीः ॥

अथर्व० १४-२-४३

अन्वय—स्योनात् योनेः अधि बुध्यमानौ, हसामुदौ, महसा मोदमानौ, सुगू सुपुत्रौ सुगृहौ, जीवौ, विभातीः उषसः तराथः।

शब्दार्थ—(स्योनात्) सुखदायी, (योनेः अधि) शयनगृह से, शय्या से, (बुध्यमानौ) जागते हुए, उठते हुए, (हसामुदौ) हास्य और आमोद से युक्त, हंसते-खेलते, (महसा) तेज से, शक्ति या महत्त्व से, (मोदमानौ) प्रसन्न रहते हुए, (सुगू) सुन्दर इन्द्रियों और गायों से युक्त, (सुपुत्रौ) योग्य पुत्रों से युक्त, (सुगृहौ) सुन्दर घर वाले, (जीवौ) तुम दोनों जीव अर्थात् तुम दोनों पति-पत्नी, (विभातीः) प्रकाशमय, (उषसः) उषाओं को, (तराथः) पार करते हो, अर्थात् दीर्घ आयु प्राप्त करते हो।

हिन्दी अर्थ—(हे दम्पती!) तुम सुखद बिस्तर से उठकर, हंसते-खेलते, अपने सामर्थ्य से प्रसन्न रहते हुए, सुन्दर इन्द्रियों और गायों से युक्त, योग्य पुत्रों वाले एवं सुन्दर भवन के स्वामी तुम दोनों दम्पती (बहुत समय तक) प्रकाशमय उषाकाल को पार करते रहो।

Eng. Tr.—O Couple ! May you, getting up from the cosy bed, leading a joyous life, pleased with your enterprises, having cows and stout organs, possessing magnificent houses, live for a long time.

अनुशीलन—इस मन्त्र में सुखी गृहस्थ के लिए कतिपय कर्तव्यों का निर्देश है। दम्पती की संक्षिप्त दिनचर्या इस मंत्र में वर्णित है :—प्रातः उषाकाल में उठना, उठकर प्रसन्नचित्त रहना, दिनभर पुरुषार्थ से आनन्दित रहना, घर में गाय रखना और उसकी सेवा करना, बच्चों को शिक्षा और पालन-पोषण पर ध्यान रखना, अपना घर स्वच्छ रखना तथा अपने मकान का स्वामी होना, दीर्घायु होना।

प्रातः उठना और प्रसन्नचित्त रहना, ये दोनों ऐसे गुण हैं, जिनका जीवन में प्रयोग करने पर दीर्घ आयु और सफलता स्वयं प्राप्त होती है। मंत्र में **'हसामुदौ'** बहुत महत्त्वपूर्ण उक्ति है। हँसना और प्रसन्नचित्त रहना, स्वास्थ्य के लिए अनिवार्य है। हँसने और प्रसन्नचित्त रहने से शरीर के सभी स्वास्थ्यवर्धक अणुओं में स्फूर्ति आती है और तेजस्विता की वृद्धि होती है। अतएव मंत्र में आगे कहा गया है कि **'महसा मोदमानौ'** तेजस्विता और सामर्थ्य से सदा प्रसन्न रहते हुए। हँसने से चित्त में आह्लाद होगा, तेज बढ़ेगा और तेज की वृद्धि से स्थायी मानसिक प्रसन्नता प्राप्त होगी।

मंत्र में इस बात का भी निर्देश है कि परिवार के सुन्दर स्वास्थ्य के लिए घर में गाय होनी चाहिए। गाय का दूध घी आदि परिवार के स्वास्थ्य के लिए सर्वोत्तम देन होगी। **'सुपुत्रौ'** के द्वारा निर्देश है कि पुत्र योग्य हों। योग्य पुत्र होने के लिए आवश्यक है कि बच्चे के माता-पिता उसकी शिक्षा, स्वास्थ्य, आचार-विचार आदि पर पूरा ध्यान दें। **'सुगृहौ'** का अभिप्राय है कि दम्पती का अपना सुन्दर मकान होना चाहिए और मकान की सुन्दर स्वच्छता आदि की व्यवस्था होनी चाहिए। इस प्रकार सुव्यवस्थित जीवन बिताने पर दम्पती अवश्य दीर्घायु होंगे।

टिप्पणी---(१) **स्योनात्**—सुखद। स्योन + पं० १। (२) **योनेः**—शय्या से। योनि के अर्थ-गृह, शयनगृह, बिस्तर, गर्भाशय आदि हैं। (३) **बुध्यमानौ**—उठते हुए, जागकर। बुध् (जागना, दिवादि, आ०) + शानच् (आन) + प्र० २। (४) **हसामुदौ**—हँसी और प्रसन्नता वाले। हस + मुद + प्र० २। (५) **महसा**—तेज से। महस् के अर्थ महत्त्व, शक्ति, पूर्णता, महान् भी हैं। (६) **मोदमानौ**—प्रसन्न रहते हुए। मुद् (प्रसन्न होना, भ्वादि, आ०) + शानच् (आन) + प्र० २। (७) **सुगू**—सुन्दर गो अर्थात् इन्द्रियां या गाय वाले। गो का अर्थ-इन्द्रिय और गाय है। सु + गु + प्र० २। (८) **तराथः**—तुम दोनों पार करते हो। तॄ (पार करना, भ्वादि, पर०) + लेट् म० २। (९) **जीवौ**—तुम दोनों जीव अर्थात् पति-पत्नी। (१०) **विभातीः**—प्रकाशमान, तेजोमय। वि + भा (चमकना, अदादि) + शतृ + ङीप् (ई) + द्वि० ३।

७४. दम्पती सपरिवार प्रसन्न रहें

इहैव स्तं मा वि यौष्टं, विश्वमायुर्व्यश्नुतम्।
क्रीडन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिः, मोदमानौ स्वे गृहे ।।

ऋग्० १०-८५-४२, अथर्व० १४-१-२२, निरुक्त १-१६

अन्वय—इह एव स्तम्, मा वि यौष्टम्। विश्वम् आयुः वि अश्नुतम्। पुत्रैः नप्तृभिः क्रीडन्तौ, स्वे गृहे मोदमानौ (स्तम्)।

शब्दार्थ—(इह एव) हे दम्पती, इस घर में ही, (स्तम्) रहो। (मा) मत, (वि यौष्टम्) वियुक्त हो। (विश्वम्) संपूर्ण, (आयुः) आयु को, (वि अश्नुतम्) प्राप्त करो। (पुत्रैः) पुत्रों से, (नप्तृभिः) पौत्रों से, (क्रीडन्तौ) खेलते हुए, (स्वे गृहे) अपने घर में, (मोदमानौ स्तम्) प्रसन्नचित्त रहो।

हिन्दी अर्थ—(हे दम्पती !) तुम दोनों इस घर में ही रहो। कभी भी वियुक्त न हो। तुम दोनों पूर्ण आयु को प्राप्त करो। तुम दोनों पुत्रों और पौत्रों के साथ खेलते हुए, अपने इस गृह में सदा प्रसन्नचित्त रहो।

Eng. Tr.—O Couple! May you remain here and never be separated. May both of you attain full life. May you, playing with your sons and grand-sons, live in this house cheerfully.

अनुशीलन—इस मंत्र में सुखी गृहस्थ को चार विशेषताएं बताई गई हैं—१. पति-पत्नी साथ रहें, वियुक्त न हों। २. दोनों दीर्घायु हों। ३. पुत्रों एवं नाती-पोतों के साथ खेलते-कूदते रहें। ४. घर में सदा प्रसन्न रहें।

जीवन की आवश्यकता के अनुसार उपयुक्त है कि पति-पत्नी जहां तक संभव हो, साथ रहें। उनका वियोग न हो, जो परिवार व्यापार आदि में लगे हैं, उनको बाहर जाना ही पड़ेगा। ऐसी स्थिति में भी जहाँ तक संभव हो पति-पत्नी साथ रहें, एक स्थान पर रहें और वियुक्त न हों।

दम्पती दीर्घ आयु प्राप्त करें, यह सभी की कामना होती है। इसके लिए संयम और स्वास्थ्य के नियमों का पालन अनिवार्य है। सुखी गृहस्थ के लिए आवश्यक है कि उनके पुत्र-पौत्र आदि हों। माता-पिता अपने बच्चों के साथ खेलें और प्रसन्न रहें। इस प्रकार परिवार में प्रसन्नता का वातावरण बना रहना चाहिए। माता-पिता की हार्दिक प्रसन्नता का प्रभाव बच्चों पर पड़ता है। माता-पिता हंसमुख हैं और सदा प्रसन्न रहते हैं तो बच्चे भी प्रसन्नचित्त रहेंगे। इससे उनका शारीरिक, बौद्धिक और मानसिक विकास अधिक तेजी से होगा।

टिप्पणी—(१) स्तम्—तुम दोनों रहो। अस् (होना, अदादि, पर०) + लोट् म० २। (२) मा वि यौष्टम्—वियुक्त मत होना। वि + यु (वियुक्त होना, अदादि, पर०) + लुङ् म० २। मा के कारण अडागम नहीं, Inj. है। (३) वि अश्नुतम्—पाओ। अश् (पाना, स्वादि, पर०) + लोट् म० २। (४) क्रीडन्तौ—खेलते हुए। क्रीड् (खेलना, भ्वादि, पर०) + शतृ (अत्) + प्र० २। (५) मोदमानौ—प्रसन्न रहते हुए, प्रसन्नचित्त। मुद् (प्रसन्न होना, भ्वादि, आ०) + शानच् (आन) + प्र०

२। (६) पाठभेद—अथर्ववेद में 'स्वे गृहे' के स्थान पर 'स्वस्तकौ' पाठ है। इसका अर्थ है–सुन्दर घर वाले।

७५. दम्पती की सर्वतोमुखी उन्नति हो

अभि वर्धतां पयसा-ऽभि राष्ट्रेण वर्धताम्।
रय्या सहस्रवर्चसा, इमौ स्तामनुपक्षितौ ।।

अथर्व० ६-७८-२

अन्वय—पयसा अभि वर्धताम्, राष्ट्रेण अभि वर्धताम्, सहस्रवर्चसा रय्या इमौ अनुपक्षितौ स्ताम्।

शब्दार्थ—(पयसा) दूध से, दूध-घी आदि से, (अभिवर्धताम्) निरन्तर बढ़ें। (राष्ट्रेण) राष्ट्र से, राष्ट्रीय उन्नति से, राष्ट्रीय उन्नति करते हुए, (अभिवर्धताम्) निरन्तर बढ़ें। (सहस्रवर्चसा) हजारों तेज वाले, (रय्या) धन से, ऐश्वर्य से, (इमौ) ये दोनों पति-पत्नी, (अनुपक्षितौ) अक्षत, निरन्तर वृद्धिशील, (स्ताम्) होवें, रहें।

हिन्दी अर्थ—ये पति-पत्नी दुग्धादि से सदा बढ़ते रहें। ये दोनों राष्ट्रीय उन्नति करते हुए निरन्तर बढ़ते रहें। सहस्रों प्रकार के तेज से युक्त ऐश्वर्य से ये दोनों कभी न्यून न होते हुए रहें (बढ़ें)।

Eng. Tr.—May the couple prosper along with the national progress and prosperity. May they, possessing magnificent and in-exhaustible wealth, grow forever.

अनुशीलन—इस मन्त्र में दम्पती को आशीर्वाद दिया गया है और उनके उज्ज्वल भविष्य की कामना की गई है। इसमें तीन आशीर्वाद मुख्य रूप से दिए गए हैं—१. दम्पती दुग्धादि से समृद्ध रहें, २. वे राष्ट्रीय उन्नति के साथ उन्नत हों, ३. उन्हें निरन्तर वृद्धिशील ऐश्वर्य मिले।

इस मंत्र में पयसा का अर्थ केवल दूध नहीं है। इसका अभिप्राय है कि परिवार में पशु-धन हो, जिससे दूध, घी आदि पर्याप्त मात्रा में प्राप्त हो सके। दूध घी आदि से बालकों और बड़ों का स्वास्थ्य उन्नत हो। सभी हृष्ट-पुष्ट हो सकें।

द्वितीय पद का भाव है कि दम्पती राष्ट्रीय उन्नति और सामाजिक कार्यों में भाग लें। वे अपनी व्यक्तिगत उन्नति को ही वास्तविक उन्नति न समझें, अपितु समाज और राष्ट्र की उन्नति में अपनी उन्नति समझें। समाज और राष्ट्र उन्नत होगा तो प्रत्येक व्यक्ति सुखी एवं सम्पन्न होगा।

मन्त्र के उत्तरार्ध में वर्णन किया गया है कि दम्पती को ऐसा वैभव मिले, जो कभी नष्ट न हो और न कम हो। वह ऐश्वर्य सहस्रों तेजस्विताओं से युक्त हो। इसका अभिप्राय यह है कि प्राप्त धन का अनेक उत्तम कार्यों में उपयोग किया जाए, जिससे हजारों गुनी सम्पत्ति प्राप्त हो। विचारपूर्वक धन का उपयोग किया जाएगा तो वह धन सहस्रों गुना हो सकता है। इसकी ही शिक्षा इस मन्त्र में दी गई है।

टिप्पणी—(१) **अभिवर्धताम्**—ये दोनों निरन्तर बढ़ें। अभि—निरन्तर। वृध् (बढ़ना, भ्वादि, पर०) + लोट् प्र० २। (२) **पयसा**—दूध से। यहाँ पयस् शब्द दूध, दही, घी आदि के लिए है। पयस् + तृ० १। (३) **राष्ट्रेण**-राष्ट्र के साथ, राष्ट्र की उन्नति करते हुए। (४) **रय्या**—धन से, ऐश्वर्य से। रयि (धन) + तृ० १। (५) **सहस्रवर्चसा**—सहस्र-हजारों, वर्चस्—तेज + तृ० १। हजारों प्रकार की तेजस्विता से युक्त। (६) **स्ताम्**-ये दोनों होवें। अस् (होना, अदादि, पर०) + लोट् प्र० २। (७) **अनुपक्षितौ**--अन्—नहीं, उपक्षित-न्यूनता या क्षय। क्षय-रहित, अभाव-रहित, अक्षत। दम्पती कभी भी ऐश्वर्य की न्यूनता से युक्त न हों, अर्थात् ये सदा समृद्ध रहें।

७६. दम्पती दीर्घायु हों

त्वष्टा जायामजनयत्, त्वष्टास्यै त्वां पतिम्।
त्वष्टा सहस्रमायूंषि, दीर्घमायुः कृणोतु वाम्॥

अथर्व० ६-७८-३

अन्वय—त्वष्टा जायाम् अजनयत्। त्वष्टा अस्यै त्वां पतिम् (अजनयत्)। त्वष्टा वां सहस्रम् आयूंषि दीर्घम् आयुः कृणोतु।

शब्दार्थ—(त्वष्टा) संसार के रचयिता परमात्मा ने, (जायाम्) स्त्री को, (अजनयत्) उत्पन्न किया। (त्वष्टा) जगन्निर्माता परमात्मा ने, (अस्यै) इस स्त्री के लिए, (त्वाम्) तुझे, (पतिम् अजनयत्) पतिरूप में उत्पन्न किया है। (त्वष्टा) वह सृष्टि-निर्माता परमात्मा, (वाम्) तुम दोनों की, दम्पती की, (सहस्रम् आयूंषि) सहस्रों वर्ष की आयु वाली, (दीर्घम् आयुः) लम्बी आयु, (कृणोतु) करे।

हिन्दी अर्थ—संसार के निर्माता परमात्मा ने इस स्त्री को उत्पन्न किया है। उसने ही तुझे पति के रूप में उत्पन्न किया है। वह निर्माता परमात्मा तुम दोनों (पति-पत्नी) को सहस्रों वर्षों वाली दीर्घ आयु दे।

Eng Tr.—The Creator of the universe has created this woman and it was he who created you too to be a husband. May, the creator of the universe, confer on both of you a long life of thousand years.

अनुशीलन—इस मंत्र का अभिप्राय है कि परमात्मा ने पति के लिए यह पत्नी दी है। गृहस्थ का आधार पति-पत्नी हैं। यह दाम्पत्य संबन्ध भी आकस्मिक नहीं है। वह मनुष्य के अपने कर्मों के अनुसार होता है। यह दो आत्माओं का मिलन है। दो आत्माएँ मिलकर एकरूप हो जाती हैं। पति और पत्नी के भावी जीवन का सुखमय या दुःखमय होना विवाह-संबन्ध पर बहुत कुछ निर्भर है। सुशील पत्नी घर को स्वर्ग बना देती है और दुःशील पत्नी नरक। अतएव विवाह के समय पति और पत्नी के स्वभाव एवं गुणों आदि की परीक्षा की जाती है। विवाह होने पर पति और पत्नी दोनों का कर्तव्य है कि वे एक दूसरे के हित और सुख की चिन्ता करें, पारस्परिक सद्भाव बढ़ावें और ऐसा प्रयत्न करें जिससे दोनों का जीवन सुखमय बना रहे।

मंत्र के उत्तरार्ध में कामना की गई है कि दम्पती दीर्घायु हों और उनकी आयु हजारों गुनी बढ़ जाए। इसका अभिप्राय यह है कि पति-पत्नी

जीवन में ऐसा ढंग रखें, जिससे उनका स्वास्थ्य सदा उत्तम रहे और वे अधिक से अधिक लम्बी आयु प्राप्त कर सकें। इसके लिए उन्हें अपने आचार-विचार पर सदा नियंत्रण रखना होगा।

टिप्पणी---(१) त्वष्टा—बनाने वाला, सृष्टि का निर्माता, परमात्मा। त्वक्ष् (बनाना, भ्वादि) + तृच् प्र० १। त्वष्टृ और तक्षन् शब्द एक ही अर्थ में हैं। (२) अजनयत्—पैदा किया। जन् (पैदा होना, दिवादि, आ०) + णिच् + लङ् प्र० १। (३) सहस्रम् आयूंषि—सहस्रों वर्षों वाली आयु। आयुष् + द्वि० ३। (४) कृणोतु—करे। कृ (करना, स्वादि, पर०) + लोट् प्र० १। (५) वाम्—तुम दोनों की। युष्मद् + ष० २। युवयोः के स्थान पर वाम् है।

७७. यज्ञ से दम्पती की श्रीवृद्धि

श्रदस्मै नरो वचसे दधातन,
यदाशीर्दा दम्पती वाममश्नुतः।
पुमान् पुत्रो जायते विन्दते वसु
अधा विश्वाहारप एधते गृहे॥

यजु० ८-५

अन्वय—हे आशीर्दाः नरः, अस्मै वचसे श्रद् दधातन। यत् दम्पती वामम् अश्नुतः। पुमान् पुत्रः जायते, वसु विन्दते, अध विश्वाहा अरपः गृहे एधते।

शब्दार्थ—(हे आशीर्दाः नरः) हे आशीर्वाद देने वाले प्रतिष्ठित व्यक्तियो, (अस्मै) इस, (वचसे) वचन पर, कथन पर, (श्रद् दधातन) श्रद्धा करो, विश्वास रखो। (यद्) कि, (दम्पती) यज्ञ करने वाले दम्पती, (वामम्) अभीष्ट वस्तुओं को, अभीष्ट धन को, (अश्नुतः) पाते हैं। (पुमान् पुत्रः) उनके योग्य पुत्र, (जायते) होता है। (वसु) धन, (विन्दते) पाता है। (अध) और, (विश्वाहा) सदा, (अरपः) पाप-रहित, निष्पाप, पवित्र, (गृहे) अपने घर में, (एधते) बढ़ता है, उन्नति करता है।

हिन्दी अर्थ—हे आशीर्वाद देने वाले प्रतिष्ठित सज्जनो ! इस कथन पर विश्वास रखिए कि (यज्ञ करने वाले) दम्पती को अभीष्ट धन मिलता है। उनके योग्य पुत्र होता है। वह पुत्र भी ऐश्वर्य प्राप्त करता है और निरन्तर निश्छल जीवन व्यतीत करते हुए अपने घर में बढ़ता है (फूलता-फलता है)।

Eng. Tr.—O Wise-men, expressing benedictions ! believe it that the couple, performing sacrifice, receive desired objects. They get a worthy son, who also being wealthy and pious, leads a prosperous life in their house.

अनुशीलन—इस मंत्र में यज्ञ के महत्त्व पर बहुत अधिक बल दिया गया है। मंत्र का कथन है कि जो दम्पती यज्ञ करते हैं, उन्हें अभीष्ट वस्तुएँ प्राप्त होती हैं, पुत्र प्राप्त होता है, पुत्र को भी ऐश्वर्य मिलता है और वह निष्पाप होकर सदा बढ़ता है, फूलता-फलता है।

इस मंत्र से स्पष्ट है कि यज्ञ पारिवारिक श्रीवृद्धि का मूल है। यज्ञ पारिवारिक सौहार्द का मूल है ही। वह दूषित वातावरण को शुद्ध करता है, साथ ही यज्ञ करने वाले के दूषित मनोभावों को भी पवित्र करता है। दम्पती जब नियम से यज्ञ करते हैं तो उनके मनोरथ भी शीघ्र पूर्ण होते हैं। इस कथन में अत्युक्ति नहीं है कि—जहाँ यज्ञ होता है, वहाँ देवता स्वयं आते हैं। इसका अभिप्राय केवल यही है कि जहाँ यज्ञ होता है, वहाँ देवकृपा होती है। देवकृपा क्या है ? इसका सुन्दर वर्णन महाभारत में मिलता है कि देवता डंडा लेकर मनुष्य की रक्षा नहीं करते हैं, अपितु वे जिसकी रक्षा करना चाहते हैं, उसे सद्बुद्धि दे देते हैं। यही है देवकृपा।

न देवा यष्टिमादाय, रक्षन्ति पशुपालवत्।
यं तु रक्षितुमिच्छन्ति, बुद्ध्या संयोजयन्ति तम्॥ महाभारत

इस देवकृपा का ही फल होता है कि मनुष्य में सूझ-बूझ आती है। अपनी बुद्धि का किस कार्य में उपयोग करना चाहिए, इसका उसे ठीक ज्ञान होता है। इसका फल यह होता है कि वह अपनी बुद्धि को निरन्तर उत्तम

कार्यों और उत्कृष्ट उद्योगों में लगाता है। इससे उसकी सभी मनःकामनाएँ पूर्ण होती हैं। यज्ञ के फलस्वरूप वर्णन किया गया है कि परिवार में पुत्र-रत्न की प्राप्ति होती है। वह पुत्र भी आस्तिक और पवित्र विचारों वाला होता है। वह भी पिता के ऐश्वर्य का स्वामी होता है और उसकी भी निरन्तर श्रीवृद्धि होती है।

टिप्पणी—(१) श्रद् दधातन—श्रद्धा करो, विश्वास रखो। श्रद् + धा से श्रद्धा बनता है। श्रद् का अर्थ सत्य या विश्वास है। दधातन—धा (रखना, जुहोत्यादि, पर०) + लोट् म० ३। त को तन हुआ है। (२) नरः—मनुष्यो, हे विशिष्ट लोगो। नृ (मनुष्य) + सं० ३। (३) वचसे—वचन पर। वचस् + च० १। (४) आशीर्वाः—आशीर्वाद देने वाले। आशिष् + दा + क (अ), आशीर्द + सं० ३। (५) दम्पती—यज्ञ करने वाले पति-पत्नी। (६) वामम्—धन, ऐश्वर्य, अभीष्ट वस्तु। (७) अश्नुतः—पाते हैं। अश् (पाना, स्वादि, पर०) + लट् प्र० २। (८) जायते—उत्पन्न होता है। जन् (पैदा होना, दिवादि, आ०) + लट् प्र० १। (९) विन्दते—पाता है। विद् (पाना, तुदादि, आ०) + लट् प्र० १। (१०) अध—और। छान्दस दीर्घ। (११) विश्वाहा—सदा। विश्वानि अहानि का संक्षिप्त रूप है। (१२) अरपः—पापरहित, निष्पाप, निश्छल, पवित्र। रप और रपस् का अर्थ पाप है। अ—नहीं, रपः—पाप। (१३) एधते—बढ़ता है, फूलता-फलता है। एध् (बढ़ना, भ्वादि, आ०) + लट् प्र० १।

७८. सत्यभाषण से श्री-वृद्धि

युवं भगं सं भरतं समृद्धम्
ऋतं वदन्तावृतोद्येषु।
ब्रह्मणस्पते पतिमस्यै रोचय
चारु संभलो वदतु वाचमेताम्॥
अथर्व० १४-१-३१

अन्वय—युवम् ऋतोद्येषु ऋतं वदन्तौ, समृद्धं भगं सं भरतम्। हे ब्रह्मणस्पते, पतिम् अस्यै रोचय। संभलः एतां वाचं चारु वदतु।

शब्दार्थ—(युवम्) तुम दोनों, पति-पत्नी, (ऋतोद्येषु) सत्य-भाषण के अवसरों पर, (ऋतम्) सत्य, (वदन्तौ) बोलते हुए, (समृद्धम्) समृद्धि से युक्त, (भगम्) ऐश्वर्य को, (सं भरतम्) प्राप्त करो, भरो। (हे ब्रह्मणस्पते) हे ज्ञान के पति, हे परमात्मन्, (पतिम्) पति के विषय में, (अस्यै) इस स्त्री की, (रोचय) रुचि उत्पन्न करो। (संभलः) भर्ता, पति, (एतां वाचम्) इस वाणी को, अपने वचन को, (चारु) सुन्दरतापूर्वक, (वदतु) बोले, अर्थात् पति मधुर वचन बोले।

हिन्दी अर्थ—(हे दम्पती !) तुम दोनों सत्य-भाषण के अवसरों पर सत्य बोलते हुए समृद्धि-युक्त ऐश्वर्य को प्राप्त करो। हे ज्ञान के अधिपति परमात्मन् ! तुम पति के विषय में इस स्त्रो की रुचि उत्पन्न करो। इसका पति अपनी बात मधुर ढंग से बोला करे।

Eng. Tr.—O Couple ! speaking truth on the crucial occasions procure wealth in abundance. O Lord of Knowledge ! cause this lady to lean towards her husband and may her husband respond sweetly.

अनुशीलन—इस मन्त्र में पति-पत्नी को शिक्षा दी गई है कि वे दोनों अपने आचार और व्यवहार में सत्य को ही अपनावें। जहाँ भी आवश्यकता पड़े, वहाँ सत्य ही बोलें। सत्य बोलने से उनकी सदा श्री-वृद्धि होगी।

सत्य क्या है ? सत्य एक अग्नि है। यह स्वयं स्वच्छ और पवित्र रहते हुए इसका उपयोग करने वाले को स्वच्छ और पवित्र बना देता है। मन से पाप को दूर करता है और निर्भयता उत्पन्न करता है। सत्य-भाषण से व्यक्ति निर्भीक हो जाता है। यह एक भ्रान्त धारण है कि असत्य से श्रीवृद्धि होती है। असत्य से क्षणिक श्रीवृद्धि होती है, परन्तु उसका अन्त दुःखद होता है। सत्य से होने वाली श्री-वृद्धि श्रमसाध्य अवश्य होती है, परन्तु वह स्थायी और निरन्तर वर्धमान होती है। मन्त्र में बल देकर इस बात की शिक्षा दी गई है कि सत्य का मार्ग अपनाओ, सत्य बोलो, परीक्षण के अवसरों पर अवश्य सत्य बोलो। इससे निरन्तर श्रीवृद्धि होगी।

मन्त्र में दूसरी शिक्षा दी गई है कि पत्नी पति से प्रेम करे, उसे चाहे और उसे प्रसन्न रखे। इसका फल यह होगा कि पति पत्नी के प्रति सदा आकृष्ट रहेगा। मन्त्र में इसीलिए कहा गया है कि पति भी पत्नी से मधुर वचन बोले। जब पत्नी का व्यवहार पति से प्रेमपूर्ण होगा तो पति का व्यवहार भी पत्नी के साथ सुन्दर होगा। पति भी पत्नी से सुन्दर और मधुर वचन बोलेगा।

इस प्रकार इस मन्त्र में दम्पती को दो शिक्षाएँ दी गई हैं—सदा सत्य बोलें और परस्पर मधुर वचन बोलें।

टिप्पणी—(१) युवम्—तुम दोनों, पति-पत्नी। युवाम् के स्थान पर युवम् है। (२)भगम्—ऐश्वर्य को। भग का अर्थ धन, समृद्धि, ऐश्वर्य है। (३) सं भरतम्—भरो, रखो, प्राप्त करो। भृ (धारण करना, भ्वादि, पर०) + लोट् म० २। (४) ऋतं वदन्तौ—सत्य बोलते हुए। ऋत—सत्य। वदन्तौ–वद् (बोलना, भ्वादि) + शतृ + प्र० २। (५) ऋतोद्येषु—सत्य बोलने के अवसरों पर। ऋत–सत्य, उद्य–बोलना। ऋत + वद् + क्यप् (य) + स० ३। (६) रोचय—रुचि उत्पन्न करो। पति इसको अच्छा लगे। रुच् (अच्छा लगना, भ्वादि) + णिच् + लोट् म० १। (७) संभलः—भर्ता, पति। सं + भरः, अच्छे प्रकार से पालन करने वाला। (८) वदतु—बोले। वद् (बोलना, भ्वादि, पर०) + लोट् प्र० १।

७९. सत्य से जीवन की रक्षा

सा मा सत्योक्तिः परि पातु विश्वतो
　　द्यावा च यत्र ततनन्नहानि च।
विश्वमन्यन्नि विशते यदेजति
　　विश्वाहापो विश्वाहोदेति सूर्यः॥

ऋग्० १०-३७-२

अन्वय—सा सत्योक्तिः मा विश्वतः परि पातु। यत्र द्यावा च अहानि च ततनन्। अन्यत् विश्वम् यद् एजति (तत्) नि विशते। विश्वाहा आपः (स्यन्दन्ते), विश्वाहा सूर्यः उदेति।

शब्दार्थ—(सा) वह, (सत्योक्तिः) सत्य बोलना, सत्य-भाषण, (मा) मुझको, (विश्वतः) चारों ओर से, (परि पातु) बचावे, रक्षा करे। (यत्र) जिसमें, जिस सत्य में, (द्यावा च) द्युलोक और पृथिवी, (अहानि च) दिन और रात, (ततनन्) फैले हुए हैं। (अन्यत्) और, (विश्वम्) सब, सारे प्राणी, (यत्) जो, (एजति) कांपता है, गतिशील है, चर है, (तत्) वह सब जिसमें, (निविशते) प्रवेश करता है, निवास करता है। सत्य के आधार पर ही, (विश्वाहा) सदा, (आपः स्यन्दन्ते) जल या नदियाँ बहती हैं। (विश्वाहा) सदा, (सूर्यः) सूर्य, (उदेति) उदय होता है।

हिन्दी अर्थ—मेरा वह सत्य बोलना मेरी चारों ओर से रक्षा करे। उस सत्य में ही द्युलोक और पृथिवी, दिन और रात फैले हुए हैं। अन्य सारे प्राणी, जो गतिशील हैं, उस सत्य में ही निवास करते हैं, (सत्य के आधार पर ही) सदा नदियां बहती हैं और निरन्तर सूर्य उदय होता है।

Eng. Tr.—Let my truth-speaking give me a close protection. The heaven and the earth, the day and the night are extending by the virtue of truth. All the moving creature dwell in the truth. The rivers flow and the Sun rises daily by observing the natural laws.

अनुशीलन—इस मंत्र में भी सत्य के महत्त्व पर प्रकाश डाला गया है। सत्य संसार का जीवन है। सत्य ही इस सृष्टिचक्र को चला रहा है। जहाँ सत्य है, वहाँ धर्म है, वहाँ ब्रह्म है और वहाँ देवों का निवास है। सत्य से ही संसार रुका हुआ है। सत्य मनुष्य को देव बनाता है और असत्य मनुष्य को राक्षस। सत्य से निर्भीकता है, पापों से सुरक्षा है, विपत्ति से रक्षा है और आपत्तियों का निरोध है।

मंत्र में वर्णन किया गया है कि सत्यभाषण मुझे सभी ओर से सुरक्षित रखे। सत्य एक रक्षक अस्त्र है। अतएव सूक्ति है कि—'सांच को आँच नहीं'। सत्य को कोई जला नहीं सकता। सत्य घोर विपत्तियों में भी मनुष्य

की रक्षा करता है। सत्य-भाषण, सत्य-व्यवहार और सत्य-निष्ठा ये संस्कार के रूप में एकत्र होते रहते हैं और विपत्ति के समय अमोघ अस्त्र के रूप में व्यक्ति को सुरक्षा प्रदान करते हैं। गीता के शब्दों में कह सकते हैं कि सत्य का अंशमात्र भी मनुष्य को संकटों से बचाता है।

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति, प्रत्यवायो न विद्यते।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य, त्रायते महतो भयात्॥ गीता० २-४०

मंत्र में सत्य के महत्त्व का वर्णन करते हुए कहा गया है कि द्युलोक और पृथिवी, दिन और रात, सभी कुछ सत्य में ही फैले हुए हैं। सत्य में ही सारा संसार हैं। सत्य से ही समुद्रों की स्थिति है और सत्य से ही सूर्य उदित होता है। सत्य के इसी महत्त्व का वर्णन वेदों में अनेक स्थानों पर आया है। अथर्ववेद का कथन है कि—सत्य से ही पृथिवी रुकी हुई है और सत्य से ही सूर्य प्रतिष्ठित है।

सत्येनोत्तभिता भूमिः।...ऋतेनादित्यास्तिष्ठन्ति०। अथर्व० १४-१-१
सत्यं बृहद् ऋतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति।
अथर्व० १२-१-१

ब्राह्मण ग्रन्थों में भी इसी प्रकार सत्य को धर्म का सर्वस्व, संसार का आधार बताया गया है—

यो वै धर्मः सत्यं वै तत्। शतपथ ब्रा० १४-४-२-२६
सत्यमेव देवा अनृतं मनुष्याः॥ शतपथ ब्रा० १-१-१-४
सत्यमेव ब्रह्म। शतपथ ब्रा० २-१-४-१०

टिप्पणी—(१) मा—मुझको। माम् का संक्षिप्त रूप है। (२) सत्योक्तिः—सत्य-वचन या सत्य-भाषण। सत्य+उक्ति। उक्ति—ब्रू (वच्, कहना, अदादि)+क्तिन् (ति)। (३) परिपातु—विशेष रूप से रक्षा करे। पा (रक्षा करना, अदादि, पर०)+लोट् प्र० १। (४) द्यावा च—द्युलोक और पृथिवी। च (और) से पृथिवी। (५) अहानि च—दिन और रात। च से रात्रि। (६) ततनन्—फैले हुए हैं। तन् (फैलना, तनादि, पर०)+लेट् प्र० ३। (७) नि विशते—प्रविष्ट होता है, निवास करता है,

रहता है। विश् (प्रवेश करना, तुदादि, आ०) + लट् प्र० १। (८) एजति—कांपता है, चलता है। एज् (कांपना, भ्वादि, पर०) + लट् प्र० १। (९) विश्वाहा—सदा। विश्वानि अहानि का संक्षिप्त रूप है। (१०) उदेति—उदय होता है। उत् + इ (जाना, अदादि, पर०) + लट् प्र० १।

८०. दम्पती दुर्जन-संगति छोड़ें

अश्मन्वती रीयते सं रभध्वम्
उत्तिष्ठत प्र तरता सखायः।
अत्रा जहाम ये असन्नशेवाः,
शिवान् वयमुत्तरेमाभि वाजान्॥

ऋग्० १०–५३–८; अथर्व० १२–२–२६;
यजु० ३५–१०; तैत्ति० आर० ६–३–२

अन्वय—हे सखायः, अश्मन्वती रीयते, सं रभध्वम्, उत्तिष्ठत, प्र तरत। अत्र ये अशेवाः असन्, (तान्) जहाम। वयं शिवान् वाजान् अभि उत्तरेम।

शब्दार्थ—(हे सखायः) हे मित्रो, (अश्मन्वती) पत्थरों वाली नदी अर्थात् दुःखद संसाररूपी नदी, (रीयते) जा रही है, बह रही है। (सं रभध्वम्) प्रयत्न करो, पुरुषार्थ करो। (उत्तिष्ठत) उठो, तैयार हो जावो। (प्र तरत) अच्छे ढंग से पार कर जाओ। (अत्र) इस संसार में, (ये) जो, (अशेवाः) दुःखद, दुर्जन व्यक्ति, (असन्) हैं, होवें, (तान्) उनको, (जहाम) छोड़ दें। (वयम्) हम, (शिवान्) सुखदायी, कल्याणकारी, (वाजान् अभि) शक्ति या ऐश्वर्य के लिए, (उत्तरेम) पार पहुँचें, उतरें।

हिन्दी अर्थ—हे मित्रो! यह पत्थरों वाली (संसाररूपी) नदी बह रही है। प्रयत्न करो, उठो और इसे पार कर जाओ। यहाँ जो दुर्जन व्यक्ति हैं, उन्हें छोड़ दो। हम कल्याणकारी शक्ति या ऐश्वर्य के लिए पार पहुँचें।

Eng. Tr.—O Friends! the sinful and sorrowful world is passing like a river, the flow of which is obstructed by

heavy boulders. Persevere, arise and cross it. Leave the company of the un-righteous. Cross the river of life for the attainment of welfare and prosperity.

अनुशीलन—संसार सुख की शय्या नहीं है। इसमें पग-पग पर कठिनाई और विघ्न हैं। इन विघ्नों को हटाने पर ही जीवन में सफलता मिलती है। इसके लिए इस मन्त्र में दो उपाय बताए गए हैं—१. पुरुषार्थ का आश्रय लेना, २. दुर्जनों की संगति को छोड़ना। ये दोनों उपाय बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। जिस प्रकार सड़क पर पड़े हुए पत्थर को हटाए बिना मार्ग साफ नहीं होता है, उसी प्रकार संसार में प्रतिदिन सामने आने वाले विघ्नों को हटाए बिना जीवन में उन्नति नहीं हो सकती। मन्त्र में संसार को पत्थर वाली नदी कहा गया है। इसका अभिप्राय यह है कि जिस प्रकार नदी का तीव्र वेग बड़े-बड़े पत्थरों को बहा देता है और अपना मार्ग बना लेता है, उसी प्रकार दुःखमय और क्लेशबहुल संसार को भी सुखमय बनाया जा सकता है। आवश्यकता है—केवल पुरुषार्थ और तीव्र इच्छा-शक्ति की। जहाँ तीव्र इच्छाशक्ति होगी, वहाँ विघ्न रुक नहीं सकते। जीवन को सुखमय बनाने के लिए दूसरा उपाय बताया गया है—कुसंगति का परित्याग। मनुष्य के पतन का मुख्य कारण कुसंगति या दुर्जन व्यक्तियों का सम्पर्क है। ये दुर्जन ही मनुष्य को पतित करते हैं, अतः सुख की कामना है तो इन दुर्जनों का साथ सदा के लिए छोड़ देना चाहिए।

टिप्पणी—(१) **अश्मन्वती**—पत्थरों वाली नदी। अश्मन्—पत्थर। संसाररूपी सिन्धु के लिए रूपक है। (२) **रीयते**—बहती है। री (बहना, दिवादि, आ०) + लट् प्र० १। (३) **सं रभध्वम्**—यत्न करो। रभ् (पकड़ना, भ्वादि, आ०) + लोट् म० ३। (४) **उत् तिष्ठत**—उठो। उत् + स्था (उठना, भ्वादि) + लोट् म० ३। (५) **प्रतरत**—पार करो। तॄ (पार करना, भ्वादि) + लोट् म० ३। छान्दस दीर्घ। (६) **अत्रा**—अत्र, यहाँ। छान्दस दीर्घ। (७) **जहाम**—छोड़ते हैं। हा (छोड़ना, जुहोत्यादि, पर०) + लेट् उ० ३। (८) **असन्**—हों। अस् (होना,

अदादि) + लेट् प्र० ३ । (९) अशेवाः—दुःखदायी । शेव—सुख, अशेव—दुःखद व्यक्ति । (१०) उत् तरेम—उतरें । तॄ (पार करना) + विधिलिङ् उ० ३ । (११) वाजान्—शक्ति, ऐश्वर्य, बल ।

८१. विषय-भोगों में न फँसें

न यातव इन्द्र जूजुवुर्नो
न वन्दना शविष्ठ वेद्याभिः ।
स शर्धदर्यो विषुणस्य जन्तो-
र्मा शिश्नदेवा अपि गुर्ऋतं नः ॥

ऋग्० ७-२१-५; निरुक्त ४-१९

अन्वय—हे इन्द्र, यातवः नः न जूजुवुः । हे शविष्ठ, वन्दनाः वेद्याभिः न (जूजुवुः) । स अर्यः विषुणस्य जन्तोः शर्धत् । शिश्नदेवाः नः ऋतं मा अपि गुः ।

शब्दार्थ—(हे इन्द्र) हे ऐश्वर्यशाली परमात्मन्, (यातवः) जादूगर, कपटी, मायावी, (नः) हमें, (न) नहीं, (जूजुवुः) हानि पहुँचावें । (हे शविष्ठ) हे बलशाली, हे बलिष्ठ, (वन्दनाः) चाटुकार, चापलूस, (वेद्याभिः) अपनी धूर्तताओं से, (नः न जूजुवुः) हमें हानि न पहुँचा सकें । (स अर्यः) वह स्वामी, वह प्रभु, (विषुणस्य) विषम, नीच, अधम, (जन्तोः) प्राणी को, (शर्धत्) दण्ड देता है, अपने अधिकार में रखता है, नीचा दिखाता है । (शिश्नदेवाः) विषय-भोग के देव, कामदेव, (नः) हमारे, (ऋतम्) सत्य को, ब्रह्मचर्य को, (मा) मत, (अपि गुः) प्राप्त हों, मत नष्ट करें ।

हिन्दी अर्थ—हे ऐश्वर्यशाली परमात्मन् ! मायावी हमें हानि न पहुँचा सकें । चाटुकार अपनी धूर्तताओं से हमें हानि न पहुँचा सकें । वह प्रभु विषम (अधम) व्यक्तियों को अपने अधीन रखता है । कामदेव हमारे ऋत (सत्य, वीर्य) को न पा सके, अर्थात् हमारे ब्रह्मचर्य को नष्ट न कर सके ।

Eng. Tr.—O Lord Indra ! May the sorcerer not harm us. May the flatterers not befool us by their flattery. The Lord Indra controls the wicked persons. May the cupid not harm our chastity.

अनुशीलन—इस मन्त्र में जीवन के लिए एक बहुत महत्त्वपूर्ण शिक्षा दी गई है। जीवन के दो पक्ष हैं—१. भौतिक उन्नति, भौतिकता और सांसारिक विषयों की ओर प्रवृत्ति, २. नैतिकता, चारित्रिक बल, संयम, आत्मिक उन्नति और आध्यात्मिक प्रवृत्ति। दोनों के कतिपय लाभ हैं और कुछ न्यूनताएं हैं। जहाँ एकांगी पक्ष है, वहाँ कुछ त्रुटियां रहती हैं। आत्मिक उन्नति के लिए भी भौतिक सुविधाओं को ग्रहण करना होगा। गृहस्थ जीवन में सन्तानोत्पत्ति भी आवश्यक है। परन्तु इसको अपने असंयम का आधार नहीं बना सकते हैं।

मन्त्र का अभिप्राय है कि जीवन के प्रलोभन मनुष्य को अपनी ओर आकृष्ट करते हैं। अप्रौढ़ विचारों वाले व्यक्ति उधर आकृष्ट हो जाते हैं। जिन दुर्गुणों से हमें सावधान रहना है, उनकी चर्चा की गई है कि—१. काम-भावना एवं विषय-भोगों से सावधान रहें, २. मायावी हमें आकृष्ट न कर लें, ३. चाटुकार हमें अपने वश में न करें।

शिश्नदेव से अभिप्राय कामदेव से है। काम-भावना हमें अपने वश में न करे। हमें सत्य मार्ग से विचलित न करे और हमारे जीवन के साररूप वीर्य को नष्ट न करे। असंयम मनोहर होने पर भी जीवन की सारी शक्ति को नष्ट कर देता है। इसलिए शिश्नोदर-परायण (विषयी और पेट-पालक) व्यक्ति जीवन में कभी उन्नति नहीं कर सकते हैं। संयम से चरित्र का निर्माण होता है, जीवनी शक्ति बढ़ती है, मनोबल बढ़ता है और इच्छा-शक्ति विकसित होती है। इस प्रकार जीवन सुख और शान्ति से युक्त होता है।

इन विषय-भोगों के अतिरिक्त कुटिल व्यक्ति नाना प्रकार के दुर्गुणों में मनुष्य को फँसाते हैं। इन्हें मन्त्र में यातु या जादूगर कहा गया है। ये काम, क्रोध आदि में लोगों को फँसाते हैं। इसी प्रकार चाटुकार लोग

मिथ्या प्रशंसा करके अपना स्वार्थ सिद्ध करते हैं और व्यक्ति को दुरभिमान, दंभ, पाखंड आदि का शिकार बनाते हैं। अतः मन्त्र में शिक्षा दी गई है कि इन सभी कुटिल और निकृष्ट व्यक्तियों से सदा सावधान रहें।

टिप्पणी—(१) **यातवः**—जादू या जादूगर। यातु(जादू) + प्र० ३। मायावी या कपटी के लिए यातु शब्द है। इसका ही अपभ्रंश जादू है। जादूगर को यातुधान कहते हैं। इनकी गणना राक्षसों में है। (२) **जूजुवुः**—हिंसा करें, हानि पहुँचावें। जू (हिंसा करना, तेज चलना, क्र्यादि, पर०) + लिट् प्र० ३। (३) **वन्दनाः**—चाटुकार, चापलूस, देखने में नम्र। (४) **शविष्ठ**—बलिष्ठ। शवस् (बल) + इष्ठ। (५) **वेद्याभिः**—चालाकी या धूर्तताओं से। वेद्या—चालाकी। (६) **शर्धत्**—अधिकार में रखता है, दबाकर रखता है। शृध् (दबाना, भ्वादि, पर०) + लुङ् प्र० १। अडागम नहीं, Inj. है। (७) **अर्यः**—स्वामी, मालिक, प्रभु। (८) **विषुणस्य**—विषम, दुष्ट, नीच, अनेक रूप बनाने वाले। विषुण + ष० १। (९) **शिश्नदेवाः**—विषय भोग के देव, कामदेव, Sex-Gods। (१०) **मा अपि गुः**—मत प्राप्त करें, न नष्ट कर सकें। अपि + इ (गा, जाना, अदादि, पर०) + लुङ् प्र० ३। इ को गा आदेश। अडागम नहीं, Inj. है। (११) **ऋतम्**—सत्य। यहाँ पर वीर्य या ब्रह्मचर्य अर्थ है। वही शरीर का सत्य या सारभाग है।

८२. विषयी व्यक्ति को चिन्ताएं

सूषो न शिश्ना व्यदन्ति माध्यः,
स्तोतारं ते शतक्रतो।
सकृत् सु नो मघवन्निन्द्र मृडया-
ऽधा पितेव नो भव॥

ऋग्० १०-३३-३

अन्वय—हे शतक्रतो, ते स्तोतारं मा शिश्ना आध्यः मूषः न वि अदन्ति। हे मघवन् इन्द्र, नः सकृत् सु मृडय, अध नः पिता इव भव।

शब्दार्थ—(हे शतक्रतो) हे सैकड़ों कर्म करने वाले, परमात्मन्, (ते) तेरे, (स्तोतारम्) स्तुति करने वाले, उपासक, (मा) मुझको, (शिश्ना) विषय-भोग-जन्य, (आध्यः) आधियाँ, मानसिक व्यथाएँ, चिन्ताएँ, (मूषः न) चूहे की तरह, (वि अदन्ति) अत्यधिक खा रही हैं। (हे मघवन् इन्द्र) हे ऐश्वर्ययुक्त इन्द्र, (नः) हमें, (सकृत्) एकबार, (सु मृडथ) अच्छे ढंग से सुखी कीजिए। (अध) और, (नः) हमारे, (पिता इव) पिता के तुल्य रक्षक, (भव) होओ।

हिन्दी अर्थ—हे अनेक कर्मों को करने वाले परमात्मन्! तेरे उपासक मुझको विषय-भोग-जन्य मानसिक चिन्ताएं चूहे की तरह खा रही हैं। हे ऐश्वर्ययुक्त इन्द्र! तुम हमें एकबार अच्छे ढंग से सुखी कर दो और हमारे पिता के तुल्य (रक्षक) होओ।

Eng. Tr.—O Lord Indra! the anxieties, resultants of the sex-hunger, are devouring me like a mouse. O Bounteous Indra! Make us prosperous for once and protect us like a father.

अनुशीलन—इस मंत्र में भी विषय-भोग से होने वाली हानियों का उल्लेख किया गया है। विषय-भोग, असंयम और चारित्रिक पतन जीवन को नष्ट करने वाले तत्त्व हैं। शिश्न शब्द से इन दुर्गुणों का ग्रहण है। शिश्न और अंग्रेजी का sex शब्द मूलरूप में एक ही शब्द हैं। काम-भावना, विषय-भोग और चरित्र-भ्रंश जीवन की उदात्तता को नष्ट करके पतन की ओर ले जाते हैं। विषयभोग प्रारम्भ में मधुर लगते हैं, परन्तु इनका अन्त सदा दुःखद होता है। अत एव भारवि कवि ने अपने महाकाव्य किराता-र्जुनीयम् में कहा है कि—

आपातरम्या विषयाः, पर्यन्तपरितापिनः ॥ किराता० ११-१२

मंत्र में वर्णन किया गया है कि विषय-भोग से अनेक प्रकार की मानसिक व्याधियां हो जाती हैं। मनुष्य चिन्ताग्रस्त हो जाता है। शारीरिक शक्ति के क्षीण होते ही धनागम कम हो जाता है, निर्बलता रहती है, मान-

सिक उद्वेग रहता है और चिन्ताएँ घर कर जाती हैं। ऐसी स्थिति में मानसिक चिन्ताएँ मनुष्य के शरीर को इसी प्रकार खा जाती हैं, जैसे चूहे किसी वस्त्रादि को। अतएव मंत्र में परमात्मा से प्रार्थना की गई है कि वह पिता के तुल्य हमारा मार्ग-दर्शन करे, दुर्गुणों से बचावे और जीवन को सुखी बनावे। परमात्मा मनुष्य को सुबुद्धि देता है। उससे उसके जीवन में पवित्रता आती है, आस्तिकता आती है और सात्त्विकता आती है। इस सात्त्विकता के आने से वह विषय-भोगों से बचता है और जीवन में संयम के पालन के द्वारा सभी प्रकार की मानसिक चिन्ताओं एवं कष्टों से मुक्त होता है।

टिप्पणी—(१) मूषः न—मूषः-चूहा, न-जैसे। जिस प्रकार चूहा वस्त्रादि को काटता है। (२) वि अदन्ति—खाती हैं, काटती हैं। अद् (खाना, अदादि, पर०) + लट् प्र० ३। (३) शिश्ना आध्यः—विषय भोग से होने वाली मानसिक चिन्ताएँ। शिश्न—जननेन्द्रिय, आधि—मानसिक दुःख, चिन्ताएँ। शिश्न शब्द और अंग्रेजी का sex शब्द मूलरूप में एक ही शब्द हैं। आधि + प्र० ३। (४) शतक्रतो—हे इन्द्र। शत—सौ, क्रतु—कर्म। सैकड़ों प्रकार के कर्म करने वाला। (५) मृडय—सुखी करो, सुख दो। मृड् (सुख देना, दया करना, तुदादि, पर०) + णिच् + लोट् म० १। (६) अघ—और। अध को छान्दस दीर्घ।

८३. दम्पती शत्रुओं को नष्ट करें

मा विदन् परिपन्थिनो, य आसीदन्ति दम्पती।
सुगेभिर्दुर्गमतीताम्, अप द्रान्त्वरातयः॥

ऋग्० १०-८५-३२; अथर्व० १४-२-११

अन्वय—ये परिपन्थिनः दम्पती आसीदन्ति, (ते) मा विदन्। सुगेभिः दुर्गम् अतीताम्, अरातयः अप द्रान्तु।

शब्दार्थ—(ये) जो, (परिपन्थिनः) लुटेरे, बटमार, (दम्पती) दम्पती को, (आसीदन्ति) प्राप्त होते हैं, पास आते हैं, (ते) वे, (मा विदन्) उनको प्राप्त न हो सकें। (सुगेभिः) सुगम मार्गों से, (दुर्गम्) कठिन मार्ग को,

(अतीताम्) पार हो जाएँ। (अरातयः) शत्रु, (अप द्रान्तु) भाग खड़े हों, दूर भाग जाएँ।

हिन्दी अर्थ—जो लुटेरे (मार्ग में) दम्पती के पास आते हैं, वे उनको प्राप्त न हो सकें। सरलता से कठिन मार्गों को भी पार कर जाएं। शत्रु दूर भाग जाएं।

Eng. Tr.—May the robbers not access the couple. May the couple cross the difficult path easily and set their enemies away.

अनुशीलन—इस मंत्र में दम्पती को दो शिक्षाएँ दी गई हैं—१. चोरों आदि से सावधान रहें, २. सरल मार्ग से चलें। दम्पती के लिए ये दोनों शिक्षाएँ महत्त्वपूर्ण हैं।

विवाह के पश्चात् यात्रा आदि के समय चोर, उचक्के, डाकू आदि उन्हें लूटने का प्रयत्न करते हैं। उनसे पूर्ण सावधानी अपेक्षित है। इसके लिए मुख्यरूप से दो साधन अपनाने चाहिएँ—१. जागरूकता, २. साहस। अपने सामान की स्वयं सुरक्षा का ध्यान रखें। दूसरे के भरोसे सामान न छोड़ दें। मार्ग में सदा सावधान रहें। दूसरी आवश्यकता यह है कि मन में निर्बलता का भाव न आने दें। साहस और हिम्मत से काम लें। शत्रु या डाकू से डरें नहीं और साहस से उनका प्रतिरोध करें। चोर या डाकू असावधानी का लाभ उठाते हैं। उनमें साहस की कमी होती है, अतः वे प्रतिरोध होते ही भाग खड़े होते हैं। नीति का श्लोक है कि ऐसे भय या खतरे के समय अपने विवेक से काम लें।

आगतं तु भयं वीक्ष्य, नरः कुर्याद् यथोचितम् ॥

हितोपदेश, मित्र० ५६

मन्त्र में दूसरी शिक्षा दी गई है कि सरल मार्ग को अपनाकर कठिन मार्ग को भी पार कर जाएँ। ऋजु-मार्ग, सरल मार्ग, निश्छलता का मार्ग जीवन में सबसे अधिक सुख देता है। सरलता से, विनय से, नम्रता से जो काम अनायास सिद्ध हो जाता है, वह कुटिलता या छल-प्रपंच से

सिद्ध नहीं होता है। इस सरलता से जीवन की बड़ी से बड़ी कठिनाई भी दूर हो जाती है। दुर्गम मार्ग सुगम हो जाता है, दुष्कर कार्य सुकर हो जाता है और जीवन की कठिनाइयां सरलता में परिवर्तित हो जाती हैं।

टिप्पणी—(१) **मा विदन्**—न पा सकें। लुटेरे दम्पती का कुछ भी धनादि न पा सकें। विद् (पाना, तुदादि, पर०)+लुङ् प्र० ३। अडागम नहीं, Inj. है। (२) **परिपन्थिनः**—लुटेरे, वटमार। रास्ता रोक कर लूटने वाले। परिपन्थिन्+प्र० ३। (३) **आसीदन्ति**—पास आते हैं, मिलते हैं। आ+सद् (सीद्, समीप आना, भ्वादि, पर०)+लट् प्र० ३। (४) **सुगेभिः**—सुगमता से, सुगम मार्गों से। सु—सरलता से, ग—जाने योग्य। सुग+तृ० ३। (५) **दुर्गम्**—कठिनाई से पार होने योग्य। दुः—कठिनता से, ग—जाने योग्य। (६) **अतीताम्**—दोनों पार हों। अति+इ(जाना, अदादि, पर०)+लोट् प्र० २। अति+इताम्। (७) **अप द्रान्तु**—भाग जाएँ, भाग खड़े हों। अप+द्रा (भाग जाना, अदादि, पर०)+लोट् प्र० ३। (८) **अरातयः**—शत्रु। अ—नहीं, राति—देने वाला। अराति कंजूस के लिए है। समाज का शत्रु होने से शत्रु अर्थ हो गया।

८४. पति से पत्नी का सौभाग्य

उत त्वः पश्यन् न ददर्श वाचम्,
उत त्वः शृण्वन् न शृणोत्येनाम्।
उतो त्वस्मै तन्वं वि सस्रे
जायेव पत्य उशती सुवासाः॥

ऋग्० १०-७१-४; निरुक्त १-८

अन्वय—त्वः उत पश्यन् वाचं न ददर्श, त्वः उत शृण्वन् एनां न शृणोति। उतो त्वस्मै तन्वं वि सस्रे, उशती सुवासाः जाया पत्ये इव।

शब्दार्थ—(त्वः) एक, कोई, कुछ लोग, (उत पश्यन्) देखते हुए भी, (वाचम्) वाक्तत्त्व को, (न) नहीं, (ददर्श) देख पाते हैं। (त्वः) कुछ लोग,

(उत शृण्वन्) सुनते हुए भी, (एनाम्) इस वाक्तत्त्व को, (न) नहीं, (शृणोति) सुन पाता है, सुनता है। (उतो) अपि तु यह, (त्वस्मै) कुछ को, किसी विशिष्ट व्यक्ति को, (तन्वम्) अपने शरीर को, अपने स्वरूप को, (वि सस्रे) प्रकट करती है, खोलती है। (उशती) चाहती हुई, कामभाव-युक्त, (सुवासाः) सुन्दर वस्त्रों को धारण किए हुए, (जाया) पत्नी, (पत्ये इव) जैसे अपने पति के लिए।

हिन्दी अर्थ—कुछ लोग देखते हुए भी वाक्तत्त्व को नहीं देख पाते हैं। कुछ लोग सुनते हुए भी वाक्तत्त्व को नहीं सुन पाते हैं। किन्तु यह वाक्तत्त्व कुछ विशिष्ट व्यक्तियों को ही अपना स्वरूप प्रकट करता है, जैसे कामभावयुक्त एवं सुन्दर वस्त्रों से अलंकृत स्त्री अपने पति को ही अपना स्वरूप प्रकट करती है।

Eng. Tr.—Some even seeing the Goddess of learning do not see her. Some even hearing the Goddess of learning do not hear her. The Goddess of learning exposes herself to a wise-man, just as a well-dressed and desiring woman unveils herself to her husband.

अनुशीलन—यह दार्शनिक मन्त्र है। इसका सम्बन्ध वाक्-तत्त्व या ब्रह्म से है। इसमें उदाहरण के रूप में दम्पती की चर्चा की गई है।

मंत्र का अभिप्राय है कि वाक्तत्त्व, ब्रह्म या आत्मा बहुत सूक्ष्म तत्त्व है। सरलता से इसे न देखा जा सकता है और न प्राप्त ही किया जा सकता है। देखने और सुनने वाले इसकी गंभीरता को अनुभव नहीं करते हैं, अतः वे इसके रहस्य को नहीं समझ पाते हैं।

इस आत्मतत्त्व को कैसे प्राप्त किया जा सकता है? मंत्र में इसका सरल उपाय बताया गया है—आत्मसमर्पण या ईश्वरार्पण। आत्मसमर्पण यह एक ऐसा सरल और अमोघ उपाय है, जिससे असंभव भी संभव हो जाता है और दुर्गम भी सुगम हो जाता है। जो आत्म-समर्पण के द्वारा आत्मा को प्रसन्न कर लेता है, उसे आत्मतत्त्व अपना स्वरूप स्वयं प्रकट कर देता है।

उदाहरण के रूप में पति-पत्नी को रखा गया है। जब पति अपने कार्य, व्यवहार और तादात्म्य की भावना से पत्नी को प्रसन्न कर लेता है तो पत्नी भी अपने स्वरूप को पूर्ण रूप से पति के लिए प्रकट कर देती है। पति और पत्नी का परस्पर एक दूसरे को वश में करने का सरल उपाय है – आत्मसमर्पण, समर्पण की भावना। यह भावना तुरन्त दूसरे के हृदय को जीत लेती है।

टिप्पणी—(१) त्वः—एक, कोई, कुछ लोग, बहुत से लोग। त्व सर्वनाम है। (२) उत पश्यन्—देखते हुए भी। उत—भी। दृश् (पश्य्, देखना, भ्वादि, पर०) + शतृ प्र० १। (३) ददर्श—देखते हैं, देख पाते हैं। दृश् (देखना, भ्वादि) + लिट् प्र० १। (४) वाचम्—वाणी को, वाक्तत्त्व को। ब्रह्म या आत्मतत्त्व के लिए वाच् शब्द है। (५) उत शृण्वन्—सुनते हुए भी। श्रु (सुनना, स्वादि) + शतृ प्र० १। (६) शृणोति—सुन पाता है। श्रु (सुनना, स्वादि, पर०) + लट् प्र० १। श्रु को शृ। (७) उतो—अपि तु, किन्तु। उत + उ अव्यय है। (८) त्वस्मै—किसी को, किसी विरले के। त्व + च० १। (९) तन्वम्—शरीर को, अपने स्वरूप को। (१०) वि सस्रे—खोलती है, प्रकट करती है, वि + सृ (बहना, जुहोत्यादि, आ०) + लिट् प्र० १। (११) उशती—चाहती हुई, कामभाव से युक्त। वश् (चाहना, अदादि, पर०) + शतृ + ङीप् (ई)। (१२) सुवासाः—सुन्दर वस्त्रों से युक्त। सु + वासस् (वस्त्र) + प्र० १।

८५. पति भगवान् है

भगस्ते हस्तमग्रहीत्, सविता हस्तमग्रहीत्।
पत्नी त्वमसि धर्मणा, अहं गृहपतिस्तव ॥

अथर्व० १४-१-५१

अन्वय—भगः ते हस्तम् अग्रहीत्, सविता हस्तम् अग्रहीत्, त्वं धर्मणा पत्नी असि, अहं तव गृहपतिः (अस्मि)।

शब्दार्थ—(भगः) भग देव के तुल्य ऐश्वर्ययुक्त मुझ पति ने, (ते) तेरा, (हस्तम्) हाथ, (अग्रहीत्) पकड़ा है। (सविता) सूर्य देव के तुल्य तेजस्वी मैंने, (हस्तम्) तेरा हाथ, (अग्रहीत्) पकड़ा है। (त्वम्) तू, (धर्मणा) धर्म से, (पत्नी असि) मेरी पत्नी है। (अहम्) मैं, (तव) तेरा, (गृहपतिः अस्मि) गृहपति अर्थात् स्वामी हूँ।

हिन्दी अर्थ—(हे वधू !), भग देव के तुल्य ऐश्वर्यशाली मुझ पति ने तेरा हाथ पकड़ा है। सूर्य देव के तुल्य तेजस्वी मैंने तेरा हाथ पकड़ा है। तू धर्म से मेरी पत्नी है और मैं तेरा गृहपति (स्वामी) हूँ।

Eng. Tr.—O Bride ! I, the husband, hold your hand, in the form of the Lord of wealth and the Sun. You are my wife and I am your legitimate husband now.

अनुशीलन—इस मंत्र में पति के उत्तरदायित्व और महत्त्व की चर्चा की गई है। पति भगवान् है, ऐश्वर्यशाली है, सतत कर्मशील है और सूर्य के समान तेजस्वी है। पति अपने उत्तरदायित्व की चर्चा करते हुए कहता है कि वह भग, भगवान् या ऐश्वर्य का देवता है। वह पत्नी को अपने जीवन में कभी भी दुःख और दारिद्रय से पीडित नहीं होने देगा। वह सदा प्रयत्नशील रहेगा कि ऐश्वर्य का स्वामी रहे और धन-धान्य से परिपूर्ण रहे।

सविता शब्द के दो अर्थ हैं—सूर्य और प्रेरणा देने वाला। पति का कथन है कि वह सूर्य के समान तेजस्वी है और सदा प्रेरणा का स्रोत है। जिसमें तेजस्विता होगी, जो निरन्तर गतिशील है, कर्मठ है और प्रेरणा देने वाला है, वह जीवन में सदा उन्नति की ओर अग्रसर होगा, समृद्ध होगा और तेजस्वी होगा। सूर्य अन्धकार का नाशक है, ज्योति का पुञ्ज है। इसी प्रकार पति भी अपने परिवार से अज्ञानरूपी अन्धकार को नष्ट करेगा और ज्ञान के प्रकाश को फैलाएगा।

उपर्युक्त प्रतिज्ञा के साथ पति पत्नी को स्वीकार करता है और कहता है कि पत्नी अब गृह की स्वामिनी है और मैं गृहपति या गृहस्वामी हूँ। 'धर्मणा' का अभिप्राय है कि धर्मानुकूल, शिष्ट और अभ्युदयकारी कर्मों के

लिए ही वधू पत्नी है। धर्म से पत्नी है, अधार्मिक या अनुचित कार्यों के लिए नहीं। जीवन में उन्नति और अभ्युदय के लिए वह पत्नी है, पतन के लिए नहीं।

टिप्पणी—(१) **भगः**—ऐश्वर्य का देवता। पति भगवान् रूप है, अतः उसे भग कहा गया है। (२) **अग्रहीत्**—पकड़ा। ग्रह् (पकड़ना, क्र्यादि, पर०) + लुङ् प्र० १। (३) **सविता**—सूर्य। सूर्य के तुल्य तेजस्वी पति के लिए है। (४) **धर्मणा**—धर्म से। धर्मन् (धर्म) + तृ० १। (५) **गृहपतिः**—गृहस्वामी अर्थात् तेरा स्वामी हूँ।

८६. ऐश्वर्य में सर्वश्रेष्ठ हों

उदेहि वेदिं प्रजया वर्धयैनां
नुदस्व रक्षः प्रतरं धेह्येनाम्।
श्रिया समानानति सर्वान्त्स्याम
अधस्पदं द्विषतस्पादयामि॥

अथर्व० ११-१-२१

अन्वय—वेदिम् उदेहि, एनां प्रजया वर्धय, रक्षः नुदस्व, एनां प्रतरं धेहि। सर्वान् समानान् श्रिया अति स्याम। द्विषतः अधस्पदं पादयामि।

शब्दार्थ—(वेदिम्) यज्ञवेदी पर, (उदेहि) चढ़ो, अर्थात् यज्ञ करो। (एनाम्) इस वधू को, (प्रजया) सन्तान से, (वर्धय) बढ़ाओ, समृद्ध करो। (रक्षः) राक्षसों अर्थात् पापियों को, (नुदस्व) हटाओ, भगावो, धक्का देकर निकाल दो। (एनाम्) इस वधू को, (प्रतरम्) उत्कृष्ट अवस्था में, (धेहि) रखो। (सर्वान्) सभी, (समानान्) समान स्थिति वाले लोगों को, (श्रिया) ऐश्वर्य या समृद्धि से, (अति स्याम) अतिक्रमण कर जाएँ, उनसे बढ़कर हों। (द्विषतः) द्वेष: करने वालों को, शत्रुओं को, (अधस्पदम्) पैर के नीचे, (पादयामि) रखूं, कुचल दूँ।

हिन्दी अर्थ—(हे पति !) तुम यज्ञवेदी पर चढ़ो। इस वधू क सन्तान से समृद्ध करो। पापियों को दूर हटाओ। इस वधू को

उच्चतर स्थिति में लाओ। हम अपने बराबर की स्थिति वाले लोगों से ऐश्वर्य में बढ़ जाएं। मैं अपने शत्रुओं को पैर से कुचल दूँ।

Eng. Tr.—O Husband ! get up to the sacrificial hall. Let the wife prosper with the progeny. Drive the evil-doers out. Elevate the status of your wife. May we excel to our equals. May I crush my enemies.

अनुशीलन—इस मन्त्र में दम्पती को ये शिक्षाएं दी गई हैं—१. यज्ञ करो, २. सन्तान प्राप्त करो, ३. पापियों को दूर भगाओ, ४. पत्नी की स्थिति को उन्नत करो, ५. ऐश्वर्य में सबसे उत्कृष्ट हों, ६. शत्रुओं को नष्ट कर दें।

दम्पती का कर्तव्य है कि वे प्रतिदिन यज्ञ करें। यज्ञ से गृहस्थ-जीवन सुखी रहता है, दुर्भावनाएँ दूर होती हैं, उच्च भावनाएँ मन में आती हैं, जीवन में विकास होता है और श्री-वृद्धि होती है। दम्पती का दूसरा कर्तव्य है कि वे सन्तान से युक्त हों। वंश-परंपरा को अविच्छिन्न रखने का यही एकमात्र उपाय है। सुखी गृहस्थ के लिए यह भी आवश्यक है कि उनका परिचय और संबन्ध सुसंस्कृत परिवारों या व्यक्तियों से ही हो। सज्जनों की संगति और दुर्जनों का परित्याग करने से ही जीवन में प्रगति होती है। ऐसा करने से स्त्री को भी अपने उत्तरदायित्व और कर्तव्य का बोध होता है। इससे स्त्री का विकास होता है और समाज में आदर बढ़ता है। इस ओर ही मंत्र में संकेत है कि स्त्री की स्थिति उन्नत करो, समाज में उसका आदर बढ़ाओ।

आगे मन्त्र में कहा गया है कि ऐश्वर्य में हम अपने सभी साथियों से आगे रहें। सबसे आगे किस प्रकार हो सकते हैं ? इसके लिए कठोर परिश्रम करना पड़ेगा, जीवन को उन्नत करना होगा, आय के साधनों को बढ़ाना होगा और योगक्षेम की व्यवस्था करनी होगी। निरन्तर उन्नति करने का फल यह होगा कि शत्रु स्वयं पराजित हो जाएँगे। जो कटु आलोचक हैं, वे स्वयं अपमानित होंगे। इस प्रकार जीवन का मार्ग प्रशस्त होगा।

टिप्पणी—(१) उदेहि—उत्-ऊपर, एहि-आवो, चढ़ो। उत् + आ + इ (जाना, अदादि, पर०) + लोट् म० १। (२) वर्धय—वढ़ाओ। वृध् (वढ़ना, भ्वादि, पर०) + णिच् + लोट् म० १। (३) नुदस्व—हटाओ, भगाओ। नुद् (हटाना, तुदादि, आ०) + लोट् म० १। (४) प्रतरम्—अधिक अच्छी स्थिति में। प्र + तर। (५) धेहि—रखो। धा (रखना, जुहोत्यादि, पर०) + लोट् म० १। (६) समानान्—समान या वरावर की स्थिति वाले लोगों को। (७) अति स्याम—वढ़ कर हों, उनसे ऊँचे हों। स्याम-अस् (होना, अदादि)+विधिलिङ् उ० ३। (८) अधस्पदम्—अधः—नीचे, पदम्-पैर के। (९) द्विषतः—द्वेष करने वालों को, शत्रुओं को। द्विषत् + द्वि० ३। (१०) पादयामि—रखूं, डालूं। पद् (जाना, दिवादि, आ०) + णिच् + उ० १। शत्रुओं को पैर से कुचल डालूं।

८७. सुन्दर नए वस्त्र पहनें

नवं वसानः सुरभिः सुवासा
उदागां जीव उषसो विभातीः।
आण्डात् पतत्रीवामुक्षि
विश्वस्मादेनसस्परि ॥

अथर्व० १४-२-४४

अन्वय—नवं वसानः सुरभिः सुवासाः जीवः विभातीः उषसः उत् आगाम्। आण्डात् पतत्री इव विश्वस्मात् एनसः परि अमुक्षि।

शब्दार्थ—(नवं वसानः) नए वस्त्र पहने हुए, (सुरभिः) सुगन्धयुक्त, सुगन्ध लगाए हुए, (सुवासाः) सुन्दर वस्त्र पहने हुए, (जीवः) मैं सजीव मानव, पति, (विभातीः) प्रकाशमान, (उषसः) उषा काल में, (उत् आगाम्) उठा, उठता हूँ। (आण्डात्) अंडे से, (पतत्री इव) पक्षी की तरह, (विश्वस्मात्) सारे, (एनसः) पापों से, (अमुक्षि) मुक्त हुआ, मुक्त होता हूँ।

हिन्दी अर्थ—मैं नये एवं सुन्दर वस्त्र पहने हुए, सुगन्ध लगाए हुए, सजीव (उत्साह-सहित) प्रकाशयुक्त उषाकाल में उठता हूँ। जिस

प्रकार पक्षी अण्डे से मुक्त होता है, उसी प्रकार मैं सारे पापों से मुक्त होता हूँ।

Eng. Tr.—I, well-dressed, fragrant and energetic, get up early in the morning. I am redeemed from all the sins, like a bird coming out of the egg.

अनुशीलन—इस मन्त्र में नैत्यिक कर्मों के करने की उपयोगिता बताई है। नैत्यिक या दैनिक कर्तव्य क्या हैं ? प्रातः उषाकाल में उठना, शौच आदि से निवृत्त होकर स्नान करना, सुन्दर वस्त्र पहनना, शरीर को स्वच्छ और सुगन्धित रखना, यज्ञ करना आदि।

इन कार्यों की उपयोगिता बताई गई है कि जिस प्रकार पक्षी अंडे से मुक्त होकर स्वतन्त्र हो जाता है और उसकी गति-विधि अपने अधीन होती है। वह बन्धन से मुक्त हो गया है। इसी प्रकार नैत्यिक कर्मों को करने से मनुष्य की शारीरिक शिथिलता दूर हो जाती है। रात्रि में आलस्य आदि के कारण उसे जो शिथिलता आदि आ गई थी, वह स्नान-ध्यान आदि से दूर हो गई। उसके मन में जो अशुभ भाव, दुर्विचार आदि रात्रि में आए थे, वे अब स्नान एवं यज्ञादि से दूर हो गए हैं। अब वह सुन्दर वस्त्रों से अलंकृत है, आभूषण आदि से सुसज्जित है और इत्र आदि से सुगन्धित है। इस प्रकार पूर्णतया सुसज्जित होकर प्रसन्नचित्त से अपने दैनिक कार्यों में लगता है। परिणाम यह होता है कि वह जीवन में सफल होता है। उसकी श्रीवृद्धि होती है और उसके सारे पाप धुल जाते हैं।

टिप्पणी—(१) वसानः—पहने हुए। वस् (पहनना, अदादि, आ०) + शानच् (आन) + प्र० १। (२) सुरभिः—सुगन्धित, सुगन्ध लगाए हुए। (३) सुवासाः—सुन्दर वस्त्र पहने। सु + वासस् (वस्त्र) + प्र० १। (४) उत् आगाम्—उठा। उत् + आ + इ (गा, जाना, अदादि, पर०) + लुङ् उ० १। इ को गा आदेश। (५) जीवः—सजीव, उत्साह-युक्त। (६) विभ्रातीः—कान्तियुक्त। (७) पतत्री इव—पक्षी की तरह। पतत्र (पंख) + मत्वर्थ में इन् + प्र० १। (८) अमुक्षि—मुक्त हुआ। मुच् (छूटना, तुदादि, आ०) + लुङ् उ० १। (९) एनसः—पापों से। एनस् (पाप) + पं० १।

८८. पत्नी द्वारा बुने वस्त्र सुखद

ये अन्ता यावतीः सिचो, य ओतवो ये च तन्तवः।
वासो यत् पत्नीभिरुतं, तन्नः स्योनमुप स्पृशात् ॥

अथर्व० १४-२-५१

अन्वय—ये अन्ताः यावतीः सिचः, ये ओतवः, ये च तन्तवः, यत् वासः पत्नीभिः उतम्, तत् नः स्योनम् उप स्पृशात् ।

शब्दार्थ—(ये) जो, (अन्ताः) अन्त, छोर, झालरें हैं, (यावतीः) जितनी, जो, (सिचः) किनारियाँ हैं। (ये) जो (ओतवः) बाने हैं, (ये च) और जो, (तन्तवः) तन्तु हैं, धागे हैं, ताने हैं। (यत्) जो, (वासः) वस्त्र, (पत्नीभिः) पत्नियों ने, स्त्रियों ने, (उतम्) बुना है। (तत्) वह, (नः) हमें, (स्योनम्) सुखद रूप में, (उप स्पृशात्) स्पर्श करे, अर्थात् पहनने में सुखद हो।

हिन्दी अर्थ—जो छोर हैं, जो किनारियाँ हैं, जो बाने हैं, और जो ताने हैं। जो वस्त्र स्त्रियों ने हमारे लिए बुना है, वह हमारे लिए सुखद स्पर्श वाला हो।

Eng. Tr.—May the clothes, with their ends and borders, sewn cross-wise and length-wise by the ladies, be comfortable to us.

अनुशीलन—इस मंत्र में पत्नी के द्वारा बुने और बनाए हुए वस्त्रों की प्रशंसा की गई है। बाजार के बने हुए वस्त्रों आदि में किसी प्रकार के स्नेह की मात्रा नहीं होती है। पत्नी अपने पति के लिए जो भी वस्त्र बुनती है या बनाती है, उसमें स्नेह का संचार है। प्रत्येक धागे में, प्रत्येक गाँठ में, प्रत्येक ताने और बाने में तन्तु के साथ ही उसका स्नेह-तन्तु भी अविच्छिन्न रूप से अनुस्यूत रहता है। दोनों को पृथक् नहीं किया जा सकता है। अत एव पत्नी के द्वारा बुने हुए वस्त्रों में आत्मीयता, स्नेह, ममता और आकर्षण होता है। उन वस्त्रों को पहनकर शरीर को सुख मिलता है और शान्ति का भाव जागृत होता है।

इस मंत्र के द्वारा शिक्षा दी गई है कि जहाँ तक संभव हो पत्नी पति के लिए स्वयं वस्त्र आदि बुने। ऐसे वस्त्र आत्मीयता के प्रतीक होते हैं। इनसे दोनों का परस्पर स्नेह बढ़ता है। इसप्रकार स्त्री के समय का सदुपयोग होता है और परिवार की अर्थ-व्यवस्था भी ठीक रहती है।

टिप्पणी—(१) अन्ताः—अन्त, छोर, वस्त्र का अन्तिम भाग। (२) यावतीः—जितनी। यावत् + ङीप् + प्र० ३। (३) सिचः—किनारियां। सिच् (किनारी) + प्र० ३। (४) ओतवः—बाना, बुनाई में पड़ा डाला हुआ धागा। ओतु + प्र० ३। (५) तन्तवः—धागे, ताना, बुनाई में लंबाई में डाले हुए धागे। दोनों को ताना और बाना कहते हैं। (६) वासः—वस्त्र। वासस् (वस्त्र, नपुं०) + प्र० १। (७) उतम्—बुना है। वे (बुनना) + क्त (त)। वे को उ हो जाता है। (८) स्योनम्—सुख, सुखद। (९) उपस्पृशात्—स्पर्श करे, छुए। स्पृश् (छूना, तुदादि, पर०) + लेट् प्र० १।

८९. दम्पती दुर्व्यसन छोड़ें

न मा मिमेथ न जिहीड एषा
शिवा सखिभ्य उत् मह्यमासीत्।
अक्षस्याहमेकपरस्य हेतो-
रनुव्रतामप जायामरोधम्॥

ऋग्० १०-३४-२

अन्वय—एषा मा न मिमेथ, न जिहीड। सखिभ्यः उत मह्यं शिवा आसीत्। अहम् एकपरस्य अक्षस्य हेतोः अनुव्रतां जायाम् अप अरोधम्।

शब्दार्थ—(एषा) यह मेरी पत्नी, (मा) मुझको, (न) नहीं, (मिमेथ) क्रुद्ध करती थी। (न जिहीड) न मुझपर क्रुद्ध होती थी। (सखिभ्यः) मित्रों के लिए, (उत) और, (मह्यम्) मेरे लिए, (शिवा) शुभ, सुखकर, (आसीत्) थी, (अहम्) मैंने, (एकपरस्य) एकमात्र, (अक्षस्य हेतोः) जुए के कारण, (अनुव्रताम्) पतिव्रता, सुशील, (जायाम्) पत्नी को, (अप अरोधम्) निकाल दिया। (घर से बाहर निकाल दिया या छोड़ दिया)।

हिन्दी अर्थ—यह (मेरी पत्नी) न मुझको क्रुद्ध करती थी और न मुझपर क्रुद्ध होती थी। यह मित्रों के लिए और मेरे लिए सुखकर थी। मैंने एकमात्र जुए के कारण अपनी पतिव्रता स्त्री को निकाल दिया है (छोड़ दिया है)।

Eng. Tr.—This woman, my wife, neither annoyed me, nor was ever angry with me. She was agreeable to me and my friends. I, being a gambler, have driven my faithful wife out.

अनुशीलन—यह आचार-शिक्षा का मन्त्र है। इसमें द्यूत खेलने के दुष्परिणामों का उल्लेख है। एक जुआरी का अपना अनुभव इसमें वर्णन किया गया है कि उसकी पत्नी पतिव्रता है, मधुर स्वभाव की है, न क्रुद्ध होती है और न क्रोध का अवसर देती है, परन्तु पति के जुआ खेलने के कारण उसका जीवन दुःखमय हो गया है। पति निर्धन हो गया है, ऋणी हो गया है, ऋण उतारने के लिए उसके पास धन नहीं है। वह सारा आक्रोश अपनी पत्नी पर निकालता है और विवश करता है कि उसकी पत्नी उसे छोड़कर चली जाए।

यह एक जुआरी का अनुभव है। द्यूत क्या है ? अपने विचारों पर संयम न होने के कारण मनुष्य अपनी भावनाओं को तृप्त करने के लिए दुर्गुणों की ओर झुक जाता है। इन दुर्गुणों में जुआ खेलना भी एक है। मनुष्य सोचता है—जुए से सद्यः लाभ होगा, विना परिश्रम किए धन की प्राप्ति होगी और जीवन सुखी होगा। परन्तु यह दुर्व्यसन इतना बद्धमूल हो जाता है कि जुआरी को जुआ खेले बिना शान्ति नहीं होती। वह जुए में अपना धन, अपने बाल-बच्चे, अपनी भूमि आदि तथा अपनी स्त्रियों तक को दांव पर लगा देता है और जीवन भर दुःखी रहता है। दुर्व्यसनों में मदिरापान आदि के तुल्य जुआ खेलना भी घातक व्यसन है। मंत्र में शिक्षा दी गई है कि जुआ न खेलें। यह मंत्र केवल जुए का ही निषेध नहीं करता है, अपितु संकेतरूप में सभी दुर्व्यसनों को छोड़ने का आदेश देता है।

टिप्पणी--(१) मा--मुझको। माम् का संक्षिप्त रूप है। (२) मिमेथ--क्रुद्ध करती थी। मिथ् (क्रुद्ध करना, भ्वादि, पर०)+लिट् प्र० १। (३) न जिहीड--न मुझपर क्रोध करती थी। हीड् (क्रोध करना, भ्वादि, पर०)+लिट् प्र० १। (४) शिवा--शुभ, सुखकर। शिव +टाप्+प्र० १। (५) आसीत्--थी। अस् (होना, अदादि, पर०)+ लङ् प्र० १। (६) एकपरस्य—एकमात्र, एक जुआ हो जिसके लिए मुख्य है। (७)अनुव्रताम्—पतिव्रता, पति के कथन में रहने वाली। (८) अप अरोधम्--निकाल दिया, बाहर कर दिया। अप + रुध् (निकालना, रुधादि, पर०)+लुङ् उ० १।

९०. पुत्र पवित्र एवं तेजस्वी हो

स वह्निः पुत्रः पित्रोः पवित्रवान्
पुनाति धीरो भुवनानि मायया।
धेनुं च पृश्निं वृषभं सुरेतसं
विश्वाहा शुक्रं पयो अस्य धुक्षत॥

ऋग्० १-१६०-३

अन्वय—पित्रोः पुत्रः पवित्रवान् धीरः स वह्निः मायया भुवनानि पुनाति। पृश्नि धेनुं सुरेतसं वृषभं च (पुनाति)। विश्वाहा अस्य शुक्रं पयः धुक्षत।

शब्दार्थ—(पित्रोः) माता-पिता का, (पुत्रः) पुत्र, (पवित्रवान्) पवित्रतायुक्त, (धीरः) धीर, बुद्धिमान्, (स वह्निः) वह अग्नि-तुल्य तेजस्वी पुत्र, (मायया) अपने कर्मों से, अपनी सामर्थ्य से या अपने ज्ञान से, (भुवनानि) संसार को, लोकों को, (पुनाति) पवित्र करता है। (पृश्नि धेनुम्) चित्र-विचित्र पृथ्वी-रूपी गाय को, (सुरेतसं वृषभं च) और शक्तिशाली द्युलोकरूपी वृषभ को, (पुनाति) पवित्र करता है। (विश्वाहा) सदा, (अस्य) इसके, (शुक्रं पयः) शक्तिशाली दूध को, सामर्थ्य को, (धुक्षत) दुहो।

हिन्दी अर्थ—माता-पिता का पवित्र धीर और अग्नितुल्य तेजस्वी वह पुत्र अपनी शक्ति से संसार को पवित्र करता है। वह चित्र-विचित्र पृथ्वीरूपी गाय तथा शक्तिशाली द्युलोकरूपी वृषभ को पवित्र करता है। निरन्तर उसके शक्तिरूपी दूध को दुहो (सार्वजनिक काम में लावो)।

Eng. Tr.—That man, the son of noble parents, pious, brave and radiant like the Fire-god, purifies the world, the cow-like earth and the bull-like heaven, by his might. May you (the couple) be blessed with the energy-like milk of such man.

अनुशीलन—इस मन्त्र में पुत्र के गुणों का वर्णन किया गया है। पुत्र की तुलना अग्नि से की गई है। दो अरणियों की रगड़ से अग्नि उत्पन्न होती है। इसी प्रकार माता-पिता से पुत्र का जन्म होता है। अग्नि पवित्र है। अग्नि प्रकाश देता है और संसार को पवित्र करता है। उसमें अपूर्व शक्ति है। उसकी अपूर्व शक्ति का लाभ उठाया जा सकता है। इसी प्रकार पुत्र के लिए भी कर्तव्य बताया गया है कि वह धीर, वीर हो, पवित्र आचरण वाला हो, अपने गुणों से प्रकाशित हो, सबको प्रकाशित करे और सर्वत्र ज्ञान का प्रसार करे। वह अपनी शक्ति को जन-हित, समाज-हित और विश्व-हित में लगावे। संसार के लिए कुछ दे सके, द्यावा-पृथिवी का कुछ हित कर सके और विश्व में ख्याति अर्जित कर सके, यह उसका लक्ष्य होना चाहिए।

टिप्पणी—(१) वह्निः—अग्नि, अग्नि के तुल्य तेजस्वी। (२) पित्रोः—माता-पिता का। पितृ (माता-पिता) + ष० २। (३) पवित्रवान्—पवित्रता से युक्त। (४) पुनाति—पवित्र करता है। पू (पवित्र करना, क्र्यादि, पर०) + लट् प्र० १। (५) धीरः—धैर्ययुक्त, बुद्धिमान्। धी + र। (६) मायया—माया से। माया के अर्थ हैं—शक्ति, सामर्थ्य, ज्ञान, दिव्य-शक्ति। (७) पृश्निं धेनुम्—नानावर्ण की गाय को। यहाँ पृथिवी को गाय

कहा गया है। (८) सुरेतसम्--अधिक सामर्थ्य वाले, शक्तिशाली। सु+रेतस् (वीर्य) + द्वि० १। (९) वृषभम्--बैल। यहाँ जल की वर्षा करने वाले आकाश को वृषभ कहा गया है। (१०) विश्वाहा--सदा, निरन्तर। विश्वानि अहानि का संक्षिप्त रूप है। (११) शुक्रं पयः--शक्तिशाली दूध, शक्तिरूपी दूध को। (१२) दुक्षत--दुहो। दुह् (दुहना, अदादि पर०) + लुङ् म० ३। अडागम नहीं, Inj. है।

९१. पिता के गुण पुत्र में

यद् भद्रस्य पुरुषस्य, पुत्रो भवति दाधृषिः।
तद् विप्रो अब्रवीदु, तद् गन्धर्वः काम्यं वचः॥

अथर्व० २०-१२८-३

अन्वय—यत् भद्रस्य पुरुषस्य पुत्रः दाधृषिः भवति, तत् काम्यं वचः विप्रः अब्रवीत्, उ तत् गन्धर्वः (अब्रवीत्)।

शब्दार्थ—(यत्) जो, जो कि, (भद्रस्य) तेजस्वी, श्रेष्ठ, (पुरुषस्य) मनुष्य का, (पुत्रः) पुत्र, संतान, (दाधृषिः) निडर, साहसी, धर्षक, (भवति) होता है। (तत्) वह, (काम्यं वचः) सुन्दर वचन, सुभाषित, (विप्रः) विद्वान् या मेधावी ने, (अब्रवीत्) कहा है। (उ तत्) और यही, (गन्धर्वः) गन्धर्व ने, संयमी ने, (अब्रवीत्) कहा है।

हिन्दी अर्थ—यह निश्चय है कि तेजस्वी पुरुष का पुत्र भी तेजस्वी (निर्भीक) होता है। यह मेधावी और जितेन्द्रिय का शुभ वचन (सुभाषित) है।

Eng. Tr.—Verily the son of an illustrious father becomes noble. This is the saying of a wise and virtuous man.

अनुशीलन—इस मंत्र में नृवंश-विज्ञान संबन्धी एक तथ्य का उल्लेख किया गया है और कहा गया है कि यह तत्त्वज्ञ विद्वानों का सुभाषित है। नृवंश-विज्ञान के अनुसार माता-पिता के गुण और संस्कार बालक में भी

आते हैं। ये संस्कार उद्बुद्ध और अनुद्बुद्ध दो प्रकार के होते हैं। कुछ संस्कार बाल्यकाल से ही प्रकट हो जाते हैं, इन्हें उद्बुद्ध संस्कार कहते हैं। कुछ संस्कार छिपे या अन्तर्निहित रहते हैं। ये मनोयोग या श्रम से उद्बुद्ध होते हैं। ये दोनों प्रकार के संस्कार वंश-परंपरा के अनुसार सात पीढ़ी तक जाते हैं। अगली पीढ़ियों में उनकी मात्रा कम होती चली जाती है।

अपने स्वयं के पूर्वजन्म के कर्म और माता-पिता के संस्कारों का समन्वय बालक में होता है। उसके फल-स्वरूप वह अपने जीवन में किसी एक दिशा में प्रवृत्त हो जाता है और उसका जीवन उसी प्रकार का हो जाता है। वर्चस्विता, तेजस्विता, उग्रता, सहनशीलता, सात्त्विकता, आस्तिकता और उदारता आदि गुण ऐसे हैं, जो अपने पूर्वकृत कर्मों और माता-पिता के संस्कारों से आते हैं। जिस प्रकार माता-पिता से सद्गुण या दुर्गुण बालक में आते हैं, इसी प्रकार पैतृक एवं आनुवंशिक रोग आदि भी बालकों में आते हैं।

इस मंत्र के द्वारा शिक्षा दी गई है कि माता-पिता स्वयं तेजस्वी एवं उदार हों, जिससे उनकी संतान भी तेजस्वी और उदार हो सके।

टिप्पणी—(१)**यत्**—कि, जो कि, निश्चय से। यद् अव्यय है। (२) **भद्रस्य**—तेजस्वी। तेजस्वी, और यशस्वी को भद्र कहते हैं। (३) **दाधृषिः**—तेजस्वी, साहसी, निर्भीक, न दबने वाला, दूसरों को अपने दबाव में रखने वाला। धृष् (साहसी होना, स्वादि) से दाधृषि बना है। (४) **विप्रः**—मेधावी, विद्वान्। विशेष ज्ञानी एवं ऋषियों के लिए विप्र शब्द है। 'एते वै विप्रा यद् ऋषयः' शत० ब्रा० १-४-२-७। ऋषि विप्र हैं। (५) **अब्रवीत्**—कहा है। ब्रू (बोलना, कहना, अदादि) + लङ् प्र० १। (६) **गन्धर्वः**—गन्धर्व। जितेन्द्रिय एवं सोम्य स्वभाव वाले के लिए गन्धर्व शब्द है। 'तमेते गन्धर्वाः सोमरक्षा जुगुपुः' शत० ब्रा० ३-६-२-९। 'प्राणो वै गन्धर्वः' जैमि० उप० ब्रा० ३-३६-३। सोम के रक्षक और प्राणशक्तियुक्त के लिए गन्धर्व शब्द है।

९२. सदा पुरुषार्थ और दान करो

शतहस्त समाहर, सहस्रहस्त सं किर ।
कृतस्य कार्यस्य, चेह स्फार्ति समावह ॥

अथर्व० ३-२४-५

अन्वय—हे शतहस्त, समाहर । हे सहस्रहस्त, सं किर । कृतस्य कार्यस्य च इह स्फार्ति सम् आवह ।

शब्दार्थ—(हे शतहस्त) हे सौ हाथों वाले मनुष्य, अर्थात् सैकड़ों हाथ वाले होकर हे मनुष्य, (समाहर) लाओ, धन-संपत्ति का संग्रह करो । (हे सहस्रहस्त) हे हजार हाथ वाले मनुष्य, अर्थात् हजार हाथों वाले होकर हे मनुष्य, (सं किर) फैलाओ, दो, बाँटो । (कृतस्य) किए हुए, (कार्यस्य च) और आगे करने योग्य कार्य की, (इह) इस संसार में, (स्फातिम्) समृद्धि को, (सम् आवह) लाओ , प्राप्त करो ।

हिन्दी अर्थ—हे मनुष्य ! तुम सौ हाथ वाले होकर धन-संग्रह करो । हे मनुष्य ! तुम हजार हाथ वाले होकर (उस धन को) बाँट दो (दान कर दो) । इस प्रकार तुम अपने किए हुए और आगे करने योग्य कार्यों की समृद्धि को संपन्न करो ।

Eng. Tr.—O Man ! Procure wealth with one-hundred hands and distribute it in charity with one-thousand hands. Thus you attain perfection of the work done and to be done.

अनुशीलन—वेदों के अत्यन्त प्रिय सुभाषितों में यह मंत्र है । इस मंत्र का सारांश है—एक हाथ से कमाओ, दूसरे हाथ से दान करो । कमाने के विषय में मंत्र का कथन है कि सौ हाथों से कमाओ । इसका अभिप्राय यह है कि मनुष्य दो हाथों वाला होकर भी इतना उद्यमी हो सकता है कि उसकी श्रीवृद्धि सौ हाथों से कमाने के बराबर हो । जो व्यक्ति जितना पुरुषार्थी होगा, उतनी ही उसकी श्रीवृद्धि होगी । इसलिए नीति-ग्रन्थों में कहा गया है कि उद्यमी पुरुषों को ही लक्ष्मी मिलती है, अकर्मण्यों को नहीं ।

मंत्र में धनसंग्रह के साथ ही आदेश दिया गया है कि सौ हाथ से लाओ तो हजार हाथ से दान करो। वेदो में सैकड़ों मंत्रों में दान का महत्त्व बताया गया है। वस्तुतः दान धन की सुरक्षा का एक अप्रत्यक्ष साधन है। धन दान से जितना सुरक्षित रहता है, उतना संग्रह से नहीं।

टिप्पणी—(१) **शतहस्त**—सौ हाथ वाला, अर्थात् उत्साह से अपने को सौ हाथ वाला समझते हुए। मनुष्य के लिए संबोधन है। (२) **समाहर**—अच्छे प्रकार से लाओ अर्थात् अच्छे ढंग से धन-संग्रह करो। सम् + आ + हृ (लाना, भ्वादि, पर०) + लोट् म० १। (३) **सहस्रहस्त**—हजार हाथ वाला, अर्थात् अपने आपको हजार हाथ वाला मानकर उन्मुक्त ढंग से दान दो। (४) **सं किर**—अच्छे प्रकार से बखेरो, डालो, दो। सम् + कॄ (बखेरना, डालना, तुदादि, पर०) + लोट् म० १। (५) **कार्यस्य**—करने योग्य कामों के। कार्य—करणीय, करने योग्य। (६) **स्फातिम्**—समृद्धि को, सफलता को। स्फाय् (बढ़ाना, मोटा होना) + क्तिन् (ति)। (७) **सम् आवह**—लाओ, प्राप्त करो, संपन्न करो। सम् + आ + वह् (लाना, भ्वादि, पर०) + लोट् म० १।

९३. सद्बुद्धि से श्री-वृद्धि

वाममद्य सवितर्वाममु श्वो
दिवेदिवे वाममस्मभ्यं सावीः।
वामस्य हि क्षयस्य देव भूरे-
रया धिया वामभाजः स्याम॥

ऋग्० ६-७१-६; यजु० ८-६;
तैत्ति० सं० १-४-२३-१; २-२-१२-२

अन्वय—हे सवितः, अस्मभ्यम् अद्य वामं सावीः, उ श्वः वामं (सावीः), दिवेदिवे वामं (सावीः)। हे देव, हि वामस्य भूरेः क्षयस्य (दाता असि), अया धिया वामभाजः स्याम।

शब्दार्थ—(हे सवितः) हे संसार के प्रेरक परमात्मन्, (अस्मभ्यम्) हमारे लिए, (अद्य) आज, (वामम्) अभीष्ट पदार्थ, धनादि, (सावीः) प्रेरित कीजिए, दीजिए। (उ) और, (श्वः) कल भी, (वामं सावीः) अभीष्ट धनादि दीजिए। (दिवे दिवे) प्रतिदिन, (वामं सावीः) अभीष्ट धनादि दीजिए। (हे देव) हे दिव्य गुणयुक्त देव, (हि) क्योंकि, (वामस्य) अभीष्ट, सुन्दर, (भूरेः) अनेक, (क्षयस्य) निवास-स्थानों, भवनों के, (दाता असि) देने वाले हो। (अया) इस, (धिया) श्रद्धायुक्त बुद्धि से, (वामभाजः) अभीष्ट धनादि के प्राप्त करने वाले, (स्याम) होवें।

हिन्दी अर्थ—हे संसार के उत्पादक परमात्मन्! आप हमें आज, कल और प्रतिदिन अभीष्ट धन दीजिए। हे देव! आप अनेक अभीष्ट भवनों के दाता हैं। हम इस सद्बुद्धि से अभीष्ट धनादि के स्वामी हों।

Eng. Tr.—O God, creator of the universe! Bestow the desired wealth on us today, to-morrow and every day. O God! you are bestower of grand mansions. May we acquire the desired wealth by our intelligence.

अनुशीलन—इस मंत्र में परमात्मा से प्रार्थना की गई है कि वह हमें प्रतिदिन अभीष्ट धन दें। हमें जीवन में कभी भी धन का अभाव न हो। मंत्र में 'वाम' शब्द का प्रयोग किया गया है। वाम का अर्थ है—वननीय, अभीष्ट। हम जो कुछ सुखद और अभीष्ट समझते हैं, वह सब वामम् में है।

प्रत्येक मनुष्य चाहता है कि उसका जीवन सुखमय हो। जीवन सुखी रखने के लिए आवश्यक है कि उसे धनागम भी हो। धन और अभीष्ट पदार्थों की प्राप्ति हमें सुखी रखती है। महाभारत में जीवन के ६ सुख गिनाए गए हैं। इनमें अर्थागम अर्थात् धन-प्राप्ति प्रथम सुख बताया है। अन्य सुख हैं—नीरोगता, प्रिय भार्या, प्रियवादिनी स्त्री, आज्ञाकारी पुत्र, अर्थकरी विद्या।

टिप्पणी—(१) **वामम्**—वननीय, अभीष्ट, अभीष्ट वस्तुएं, धन। वामम् में चाही गई सभी वस्तुएं आ जाती हैं। इनमें धन मुख्य है। (२) **सवितः**—हे सविता देव, हे सृष्टि के प्रेरक परमात्मन्। सवितृ—सू (प्रेरणा देना) + (तृ) + सं० १। (३) **दिवेदिवे**—प्रतिदिन। दिव् (दिन) + च० १। (४) **अस्मभ्यम्**—हमारे लिए। अस्मद् (मैं) + च० ३। (५) **सावीः**—प्रेरित करो, दो। सू (प्रेरणा देना, तुदादि, पर०) + लुङ् म० १। अडागम नहीं, Inj. है। (६) **वामस्य**—सुन्दर, अभीष्ट। (७) **क्षयस्य**—गृह के, निवासस्थान के। वेद में क्षय का अर्थ घर है। (८) **भूरेः**—अनेक, बहुत। भूरि (बहुत) + ष० १। (९) **अया**—इस। अनया का संक्षिप्त रूप है। इदम् (यह, स्त्री०) + तृ० १। (१०) **धिया**—बुद्धि से, सद्बुद्धि से। (११) **वामभाजः**—वाम—अभीष्ट के, भाजः—पाने वाले। भज् से भाज्, वामभाज् + प्र० ३। (१२) **स्याम**—होवें। अस् (होना, अदादि, पर०) + विधिलिङ् उ० ३।

९४. शुभ संकल्प से श्री-वृद्धि

समित ँ संकल्पेथा ँ संप्रियौ
रोचिष्णू सुमनस्यमानौ।
इषमूर्जमभि संवसानौ॥

यजुः १२-५७

अन्वय— (हे दम्पती) संप्रियौ रोचिष्णू सुमनस्यमानौ इषम् ऊर्जम् अभि संवसानौ समितं संकल्पेथाम्।

शब्दार्थ—(हे दम्पती) हे पति-पत्नी, तुम दोनों, (संप्रियौ) परस्पर अत्यन्त प्रेमभाव-युक्त, (रोचिष्णू) तेजस्वी, (सुमनस्यमानौ) परस्पर सौमनस्य वाले, (इषम्) अन्न, (ऊर्जम्) बल, पराक्रम को, (अभि संवसानौ) धारण करते हुए, (समितम्) मिलकर चलो। (संकल्पेथाम्) शुभ विचार रखो, शुभ संकल्प वाले हो।

हिन्दी अर्थ—हे दम्पती ! तुम दोनों परस्पर अत्यन्त प्रेमभाव-युक्त, तेजस्वी, परस्पर सौमनस्य-युक्त, अन्न-समृद्धि और शक्ति-संचय को धारण करते हुए मिलकर चलो और शुभ विचार रखो।

Eng. Tr.—O Couple ! May both of you, having whole-hearted love, mutual co-operation, food and energy, go together and think alike.

अनुशीलन—इस मन्त्र में सुखी जीवन बिताने के लिए दम्पती को कतिपय शिक्षाएँ दी गई हैं। दोनों धन-धान्य और शक्ति की प्राप्ति के लिए ये गुण अपनावें—तेजस्वी हों, प्रसन्नचित्त रहें। साथ मिलकर चलें और शुभ विचार रखें।

श्रीवृद्धि के लिए आवश्यक है कि व्यक्ति प्रसन्नचित्त रहे। मनुष्य तभी प्रसन्नचित्त रह सकता है, जब उसका हृदय शान्त हो। अशान्त हृदय व्यक्ति प्रसन्न नहीं रह सकता। अतः अपनी श्रीवृद्धि करनी है तो मनुष्य को शान्त और प्रसन्नचित्त रहना चाहिए। अतएव गीता में कहा गया है कि—प्रसन्नचित्त रहने से सारे मानसिक क्लेश दूर हो जाते हैं।

प्रसादे सर्वदुःखानां, हानिरस्योपजायते ।। गीता २-६५

जहाँ प्रसन्नचित्तता है, वहाँ तेजस्विता स्वयं आ जाती है। प्रसन्नचित्त व्यक्ति के मुख पर एक प्रकार की आकर्षक कान्ति आ जाती है, यही तेजस्विता है। यह मानव की शान्तिप्रियता और ओजस्विता की सूचक है।

टिप्पणी—(१) **समितम्**—सम्—मिलकर, इतम्—चलो। परस्पर मिले हुए रहो। सम् + इ (जाना, अदादि, पर०) + लोट् म० २। (२) **संकल्पेथाम्**—शुभ संकल्प रखो। सम् + क्लृप् (संकल्प करना, विचार रखना, भ्वादि, आ०) + लोट् म० २। (३) **संप्रियौ**—सम्—अच्छे प्रकार से, प्रियौ-प्रेमभावयुक्त। (४) **रोचिष्णू**—तेजस्वी, प्रकाशमान, चमकते हुए चेहरे वाले। रुच् (चमकना) + इष्णु + प्र० २। (५) **सुमनस्यमानौ**—सुन्दर मन वाले, परस्पर सौहार्द रखने वाले। सु + मनस् + नामधातु य +

शानच् (आन) + प्र० २ । (६) इषम्—अन्न को । इष् + द्वि० १ । (७) ऊर्जम्—बल, शक्ति, पराक्रम को । ऊर्ज् + द्वि० १ । (८) अभि संवसानौ—धारण करते हुए । अभि + सम् + वस् (धारण करना, पहनना, अदादि, आ०) + शानच् (आन) + प्र० २ ।

९५. प्रेम और धैर्य से समृद्धि

इह रतिरिह रमध्वम्, इह धृतिरिह स्वधृतिः स्वाहा ।
उपसृजन् धरुणं मात्रे, धरुणो मातरं धयन् ।
रायस्पोषमस्मासु दीधरत् स्वाहा ॥

यजु० ८–५१

अन्वय—इह रतिः, इह रमध्वम् । इह धृतिः, इह स्वधृतिः स्वाहा । मात्रे धरुणम् उपसृजन्, धरुणः मातरं धयन्, अस्मासु रायस्पोषं दीधरत् स्वाहा ।

शब्दार्थ—(इह) यहाँ, इस परिवार में, (रतिः) प्रेम हो । (इह) इस परिवार में, (रमध्वम्) रमो, प्रेम से रहो । (इह) इस परिवार में, (धृतिः) धैर्य, स्थिरता हो । (इह) इस परिवार में, (स्वधृतिः) स्वयं स्थिरता, स्वावलम्बन हो । (स्वाहा) एतदर्थ आहुति देते हैं । (मात्रे) माता के लिए, (धरुणम्) धारक, परिवार के धारक पुत्र को, (उपसृजन्) जन्म देते हुए, (धरुणः) पुत्र, (मातरं धयन्) माता का दूध पीते हुए रहे । (अस्मासु) हमें, (रायस्पोषम्) धन-समृद्धि, (दीधरत्) दे, प्राप्त करावे ।

हिन्दी अर्थ—इस परिवार में प्रेम हो । यहाँ सब प्रेम से रहें । यहां धैर्य और स्थिरता हो । यहां स्वावलम्बन हो । माता के लिए पुत्र को जन्म दें और पुत्र माता का दूध पीवे । वह पुत्र हमारे परि- में ऐश्वर्य की समृद्धि करे ।

Eng. Tr.—May there be love in the family. May all live here offectionately. May there be patience, stability and self-reliance. May the mother be blessed with a son

and give suckings to him. May the son increase the wealth of the family.

अनुशीलन—इस मन्त्र में सुखी गृहस्थ जीवन के लिए तीन साधन बताये गये हैं। इनके अपनाने से परिवार में सुख-समृद्धि और धन-धान्य की वृद्धि होती है। ये गुण हैं—१. प्रेम का वातावरण होना, २. धैर्य, ३ स्वावलम्बन।

परिवार में प्रेम और स्नेह का वातावरण होगा तो परिवार के सभी व्यक्ति प्रसन्न रहेंगे। सभी एक दूसरे के कार्य में सहयोग देंगे और परिवार में सामूहिक कर्म-निष्ठा का भाव जागृत होगा। मिलकर और बाँट कर काम करने से बड़े से बड़े काम बहुत सरलता से निबट जाते हैं। प्रेम का वातावरण सुख और शान्ति की सृष्टि करता है, आह्लाद और आनन्द देता हैं तथा नीरसता में सरसता का मनोहर वातावरण बनाता है।

जीवन में धैर्य के बिना काम नहीं चलता है। इसको ही मन्त्र में धृतिः शब्द से कहा गया है। जीवन संग्राम है। इसमें सुख भी है और दुःख भी। सुख सुखद होता है।

तीसरी शिक्षा दी गई है—स्वधृतिः या स्वावलम्बन। वेद में स्वधा शब्द भी स्वावलम्बन के लिए आता है। स्वावलम्बन का अभिप्राय है—अपने काम को अपने आप करना, अपने उत्तरदायित्व को स्वयं निभाना।

टिप्पणी—(१) रतिः—प्रेम, पारस्परिक स्नेह। रम् + क्तिन् (ति)। **(२) रमध्वम्**—रमें, प्रेम से रहें। रम् (आनन्द लेना, भ्वादि, आ०) + लोट् म० ३। **(३) धृतिः**—धैर्य, स्थिरता, सन्तोष। **(४) स्वधृतिः**—स्वयं धारण करना अर्थात् स्वावलम्बन। इस अर्थ में स्वधा शब्द भी है। **(५) उपसृजन्**—बनाते हुए, जन्म देते हुए। उप + सृज् (बनाना, तुदादि, पर०) + शतृ प्र० १। **(६) धरुणम्**—धारक या आश्रय। परिवार का धारक का आश्रय होने से पुत्र को धरुण कहा गया है। **(७) मात्रे**—माता के लिए। पुत्र माता के लिए आनन्द का स्रोत है। **(८) मातरं धयन्**—माता का दूध पीते हुए। धे (दूध पीना, भ्वादि, पर०) + शतृ प्र० १।

(९) रायस्पोषम्—रायः-धन, पोष-पुष्टि। धन की पुष्टि या समृद्धि। (१०) दीधरत्—रखे, करे। धृ (रखना, भ्वादि, पर०) + णिच् + लुङ् प्र० १। अडागम नहीं, Inj. है।

९६. श्रद्धा और पुरुषार्थ से श्रीवृद्धि

अन्वारभेथामनुसंरभेथाम्,
एतं लोकं श्रद्दधानाः सचन्ते।
यद् वां पक्वं परिविष्टमग्नौ
तस्य गुप्तये दम्पती सं श्रयेथाम्॥

अथर्व० ६-१२२-३

अन्वय—हे दम्पती, अनु आरभेथाम्, अनु संरभेथाम्। एतं लोकं श्रद्दधानाः सचन्ते। यत् वां पक्वम्, अग्नौ परिविष्टम्, तस्य गुप्तये सं श्रयेथाम्।

शब्दार्थ—(हे दम्पती) हे दम्पती, (अनु आरभेथाम्) अनुकूलता के साथ कार्य को प्रारम्भ करो। (अनु संरभेथाम्) उसको परिश्रमपूर्वक आगे बढ़ावो। (एतं लोकम्) इस लोक को, इस संसार को, (श्रद्दधानाः) श्रद्धा-युक्त लोग ही, (सचन्ते) प्राप्त करते हैं, अर्थात् वे ही यहाँ सफल होते हैं। (यत्) जो, (वाम्) तुम दोनों का, (पक्वम्) पकाया हुआ अन्न है, (अग्नौ) और जो अग्नि में, (परिविष्टम्) डाला गया है, (तस्य) उसकी, (गुप्तये) रक्षा के लिए, (सं श्रयेथाम्) तुम दोनों मिलकर चलो, एक दूसरे का आश्रय लो।

हिन्दी अर्थ—हे दम्पती! तुम दोनों पारस्परिक अनुकूलता के साथ शुभ कार्य आरम्भ करो और उसको परिश्रमपूर्वक आगे बढ़ाओ। श्रद्धायुक्त लोग ही इस संसार को पाते हैं, अर्थात् वे ही इस संसार में सफल होते हैं। तुम दोनों ने जो कुछ अन्न पकाया है और जो कुछ अग्नि में डाला है, उसकी सुरक्षा के लिए परस्पर मिलकर चलो।

Eng. Tr.—O Couple ! Persevere and persist. Only sincere persons succeed in the world. May you remain united for the safety of that food, which you have cooked or offered to the fire.

अनुशीलन—इस मंत्र में दम्पती को तीन शिक्षाएँ दी गई हैं—

मंत्र की प्रथम शिक्षा है कि जीवन में सुख चाहिए तो कुछ करो। कोई भी नया काम या उद्योग प्रारम्भ करो। उसे प्रारम्भ करके बीच में छोड़ न दो। उसमें लगे रहो। यह लगन ही तुम्हारी सफलता की कुञ्जी होगी।

दूसरी शिक्षा यह है कि जिस कार्य या मार्ग को अपनाओ, उसमें श्रद्धा या निष्ठा रखो। जिस कार्य में जितनी श्रद्धा होगी, उतनी ही उसमें सफलता मिलेगी। श्रद्धा मानव का सूक्ष्म रूप है। अतएव गीता में कहा गया है कि—मनुष्य श्रद्धारूप है। जिसमें जितनी श्रद्धा है, उसको उतनी ही सफलता मिलती है।

तीसरी शिक्षा यह दी गई है कि दम्पती ने जीवन में जो कुछ कमाया है, उसकी सुरक्षा के लिए वे दोनों मिलकर चलें। जीवन के अन्तिम क्षणों तक दम्पती का मिलकर चलना, एक दूसरे का साथ देना और पारस्परिक सहयोग एवं समवेदना आवश्यक है।

टिप्पणी—(१) **अनु आरभेथाम्**—शुभ कार्य प्रारम्भ करो। अनु—पारस्परिक अनुकूलता के साथ। आ + रभ् (आरम्भ करना, भ्वादि, आ०) + लोट् म० २। (२) **अनु संरभेथाम्**—पुरुषार्थ के साथ काम को आगे बढ़ाओ। सम् + रभ् (पुरुषार्थ करना, भ्वादि, आ०) + लोट् म० २। (३) **श्रद्दधानाः**—श्रद्धा करने वाले, श्रद्धालु, दृढ़ विश्वास वाले। श्रद् + धा (रखना, जुहोत्यादि, आ०) + शानच् (आन) + प्र० ३। (४) **सचन्ते**—पाते हैं। सच् (पाना, भ्वादि, आ०) + लट् प्र० ३। (५) **पक्वम्**—पकाया गया, पका हुआ अन्न। पच् (पकाना, भ्वादि) + क्त (ति)। त को व। (६) **परिविष्टम्**—डाला गया। परि + विष् (परोसना, जुहोत्यादि) + क्त (त)। (७) **गुप्तये**—रक्षा के लिए। गुप् (रक्षा करना) + क्तिन् (ति) + च० १।

गुप्ति—रक्षा। (८) सं श्रयेथाम्—सम्–अच्छे प्रकार से, श्रयेथाम्–एक दूसरे का आश्रय लो, अर्थात् दोनों मिलकर चलो। सम् + श्रि (आश्रय लेना, भ्वादि, आ०) + विधिलिङ् म० २।

९७. धर्माचरण से समृद्धि

प्र स क्षयं तिरते वि महीरिषो
यो वो वराय दाशति।
प्र प्रजाभिर्जायते धर्मणस्परि
अरिष्टः सर्व एधते॥

ऋग्० ८-२७-१६

अन्वय—स क्षयं प्र तिरते, महीः इषः वि (तिरते), यः वराय वः दाशति। धर्मणः परि प्रजाभिः प्रजायते। अरिष्टः सर्वः एधते।

शब्दार्थ—(सः) वह मनुष्य, (क्षयम्) घर को, (प्र तिरते) प्राप्त करता है। (महीः इषः) महान् अन्न-समृद्धि को, (वि तिरते) प्राप्त करता है। (यः) जो, (वराय) वरणीय धन के लिए, (वः) तुम देवों को, (दाशति) देता है। (धर्मणः परि) धर्माचरण के बाद, (प्रजाभिः) संतानों से, (प्र जायते) विशिष्ट रूप से युक्त हो जाता है। (अरिष्टः) अक्षत, निर्विघ्न, (सर्वः) समग्ररूप से, सर्वथा, (एधते) बढ़ता है, समृद्ध होता है।

हिन्दी अर्थ—वह मनुष्य निवास-स्थान को प्राप्त करता हैं और महान् अन्न-समृद्धि को प्राप्त करता है, जो ऐश्वर्य के लिए देवों को (हवि) देता है। वह मनुष्य धर्माचरण के द्वारा सुसन्तानों से युक्त होता है और निर्विघ्न सर्वतोभावेन बढ़ता है।

Eng. Tr.—He, who offers oblations to the gods, gets a residence and plenty of food. He is blessed with the progeny on account of his virtues and rises with all-round prosperity, without any hindrance.

अनुशीलन—इस मंत्र में धर्माचरण पर बल दिया गया है। धर्म के आचरण से गृह, धन-धान्य, सुयोग्य संतान और स्थायी सुख की प्राप्ति होती है। धर्माचरण में भी यज्ञ को विशेष महत्त्व दिया है। जो देवों को यज्ञ द्वारा भोग देता है, उसे देवता भी सभी प्रकार का भोग देते हैं। इसी भाव को गीता में कहा गया है कि—

देवान् भावयतानेन, ते देवा भावयन्तु वः।
परस्परं भावयन्तः, श्रेयः परमवाप्स्यथ॥ गीता ३-११

वेदों में यज्ञ को सर्वश्रेष्ठ कर्म कहा गया है। यज्ञ के द्वारा देवों से तादात्म्य स्थापित किया जाता है। अतः यज्ञ को सर्वश्रेष्ठ धर्म भी माना गया है। मंत्र में कहा गया है कि इस धर्माचरण से मनुष्य दुःखों और पापों से बचता है तथा सदा समृद्धि की ओर जाता है। सदा समृद्धि का मार्ग है—धर्माचरण और नियमित यज्ञ करना।

यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म। शतपथ ब्रा० १-७-१-५। यजु० १-१।

टिप्पणी—(१) **क्षयम्**—निवास-स्थान को, घर को। क्षय का अर्थ घर है। (२) **प्र तिरते**—पार करता है, प्राप्त होता है। तॄ (पार करना, तुदादि, आ०) + प्र० १। (३) **महीः**—महान्। महतीः का संक्षिप्त रूप है। (४) **इषः**— अन्नों को, अन्न-समृद्धि को। इष् (अन्न) + द्वि० ३। (५) **वि तिरते**—पाता है। (६) **वराय**—वर अर्थात् श्रेष्ठ धन के लिए। (७) **वः**—तुम्हें। युष्मभ्यम् के लिए है। युष्मद् + च० ३। (८) **दाशति**—देता है। दाश् (देना, हवि देना, स्वादि, पर०) + लट् प्र० १। (९) **प्र जायते**—प्रजायुक्त होता है। जन् (उत्पन्न होना, दिवादि, आ०) + लट्० प्र० १। (१०) **धर्मणः परि**—धर्माचरण के बाद, धर्माचरण के फल-स्वरूप। परि के कारण पंचमी है। धर्मन् + पं० १। (११) **अरिष्टः**—अक्षत, निर्विघ्न। (१२) **सर्वः**—सभी। यहाँ सभी रूप से, सर्वथा अर्थ है। (१३) **एधते**—बढ़ता है, फूलता-फलता है। एध् (बढ़ना, स्वादि, आ०) + लट् प्र० १।

९८. सौन्दर्य के लिए वस्त्रधारण

त्वष्टा वासो व्यदधाच्छुभे कं
बृहस्पतेः प्रशिषा कवीनाम् ।
तेनेमां नारीं सविता भगश्च
सूर्यामिव परि धत्तां प्रजया ॥

अथर्व० १४-१-५३

अन्वय—त्वष्टा बृहस्पतेः कवीनां प्रशिषा शुभे कं वासः व्यदधात् । तेन इमां नारीं सविता भगः च सूर्याम् इव प्रजया परि धत्ताम् ।

शब्दार्थ—(त्वष्टा) त्वष्टा ने, निर्माता ने, शिल्पी ने, (बृहस्पतेः) बृहस्पति की, (कवीनाम्) कवियों या विद्वानों की, (प्रशिषा) आज्ञा से, आदेशानुसार, (शुभे कम्) वस्तुतः सौन्दर्य या कान्ति के लिए, (वासः) वस्त्र को (व्यदधात्) बनाया है। (तेन) उस वस्त्र से, (इमाम्) इस, (नारीम्) नारी को, (सविता भगः च) सविता और भग देवों ने, (सूर्याम् इव) जैसे सूर्या को वस्त्र पहनाया था, उसी प्रकार, (प्रजया) सन्तान से, (परिधत्ताम्) युक्त करें।

हिन्दी अर्थ—त्वष्टा (शिल्पी) ने बृहस्पति और विद्वानों के आदेशानुसार वस्तुतः सौन्दर्य के लिए वस्त्र को बनाया है। जिस प्रकार सविता और भग देवों ने वस्त्र से सूर्या (सूर्य-पुत्री) को सजाया था, उसी प्रकार ये दोनों देव इस वस्त्र के द्वारा इस स्त्री को संतान से युक्त करें।

Eng. Tr.--The god Tvaṣṭṛ, the fashioner of the universe, with the permission of Bṛhaspati and wise-men, made clothes for beautification. As the gods Savitar and Bhaga decorated Sūryā (the daughter of the Sun) with the garments, similarly may both of them decorate the bride and bless her with the progeny.

अनुशीलन—इस मन्त्र में वस्त्र का महत्त्व बताया गया है और कहा गया है कि शोभा के लिए वस्त्र धारण करें। शिल्पी (त्वष्टा) ने मनुष्य के सौन्दर्य के लिए वस्त्र की रचना की है। वस्त्र कैसा हो? इसका निर्णय विद्वान् करते हैं। वे जैसा आदेश देते हैं, वैसा शिल्पी वस्त्र तैयार करते हैं। वस्त्र अपने हाथों का बुना हुआ हो या शिल्पियों द्वारा बनाया गया हो, स्वदेशी वस्त्र ही पहनना सर्वथा उपयुक्त है। मन्त्र में इसकी ओर संकेत किया गया है। स्त्री सुन्दर वस्त्र पहने। सुन्दर वस्त्रों से स्त्री के सौन्दर्य की वृद्धि होती है।

टिप्पणी—(१) त्वष्टा—देवशिल्पी, निर्माता, शिल्पी, कारीगर। त्वष्टृ + प्र० १। तक्षन् शब्द भी इसी प्रकार शिल्पी के लिए है। (२) व्यदधात्—बनाया। वि + धा (करना, बनाना, जुहोत्यादि, पर०) + लङ् प्र० १। (३) शुभे कम्—वस्तुतः सौन्दर्य या कान्ति के लिए। शुभ्+च० १। शुभ् के अर्थ हैं—सौन्दर्य, कान्ति, चमक। शुभ् शुभ अर्थ में भी आता है। कम् वस्तुतः अर्थ में अव्यय है। इसके साथ चतुर्थी विभक्ति आती है। यह शब्द के बाद में लगता है। (४) प्रशिषा—आज्ञा से। प्रशिष् + तृ० १। (५) सूर्याम् इव—जैसे सविता और भग देवों ने सूर्या देवी को सजाया था। सूर्या सूर्य की पुत्री है। (७) परिधत्ताम्—ढकें, पहनावें, युक्त करें। परि + धा (चारों ओर से ढकना, जुहोत्यादि, पर०) + लोट् + प्र० २।

९९. दूसरे के वस्त्र न पहनें

अश्लीला तनूर्भवति, रुशती पापयामुया।
पतिर्यद् वध्वो वाससः, स्वमङ्गमभ्यूर्णुते॥

अथर्व० १४-१-२७

अन्वय—यत् वध्वः वाससः पतिः स्वम् अङ्गम् अभि ऊर्णुते, अमुया पापया रुशती तनूः अश्लीला भवति।

शब्दार्थ—(यत्) जो कि, जब, (वध्वः) वधूके, पत्नी के, (वाससः) वस्त्र से, (पतिः) पति, (स्वम् अङ्गम्) अपने अंगों को, अपने शरीर को, (अभि ऊर्णुते) ढकता है, आच्छादित करता है। (अमुया) इस, (पापया) पापवृत्ति से, निकृष्ट कर्म से, (रुशती) कान्तियुक्त, चमकती हुई, (तनूः) शरीर, (अश्लीला) अशोभनीय, निन्द्य, भद्दा, (भवति) हो जाता है।

हिन्दी अर्थ—यदि पत्नी के वस्त्र से पति अपने शरीर को ढकता है तो इस निन्द्य कार्य से उसका सुन्दर शरीर भद्दा हो जाता है, अर्थात् भद्दा दिखाई पड़ता है।

Eng. Tr.—A husband spoils his beauty and grace by putting on the garments of his wife.

अनुशीलन—इस मन्त्र में शिक्षा दी गई है कि पति पत्नी के वस्त्र न पहने। इससे उसकी निकृष्टता और नीचता प्रकट होती है। दूसरे के वस्त्र पहनना स्वास्थ्य की दृष्टि से भी अनुचित है। स्त्री और पुरुष के शरीर से निकलने वाला पसीना आदि वस्त्रों में लग जाता है। इस पसीने के साथ शरीर का दूषित अंश भी बाहर आता है, जो कि वस्त्रों में लग जाता है। जो इस वस्त्र को पहनेगा, उसे वे दोष लग जाएँगे। अधिकांशतः दूसरों के वस्त्रादि पहने से चर्मरोग आदि बहुत सरलता से लग जाते हैं। अतएव मन्त्र में शिक्षा दी गई है कि दूसरे के वस्त्र न पहनें।

टिप्पणी—(१) **अश्लीला**—भद्दा, अशोभनीय, कुरूप। अ + श्री + र + टाप्। शोभा-रहित। (२) **रुशती**—चमकती हुई, कान्तियुक्त। रुश् (चमकना) + शतृ + ङीप् (ई)। (३) **पापया**—निकृष्ट कार्य, निन्दनीय प्रवृत्ति। पापा (पापवृत्ति) + तृ० १। (४) **अमुया**—इस। अदस् (वह, स्त्री०) + तृ० १। (५) **वध्वः**—वधू के। वधू + ष० १। (६) **वाससः**—वस्त्र से। वासस् + पं० १। (७) **अभि ऊर्णुते**—ढकता है, आच्छादित करता है। ऊर्णु (ढकना, अदादि, आ०) + लट् प्र० १।

१००. वरदा वेदमाता

स्तुता मया वरदा वेदमाता
प्र चोदयन्तां पावमानी द्विजानाम् ।
आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्ति
द्रविणं ब्रह्मवर्चसम् ।
मह्यं दत्त्वा व्रजत ब्रह्मलोकम् ॥

अथर्व० १९-७१-१

अन्वय—(हे देवाः,) मया द्विजानां पावमानी वरदा वेदमाता स्तुता । प्र चोदयन्ताम् । आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्ति द्रविणं ब्रह्मवर्चसं मह्यं दत्त्वा ब्रह्मलोकं व्रजत ।

शब्दार्थ—(हे देवाः) हे देवो, (मया) मैंने, (द्विजानाम्) द्विजों को, ब्राह्मणादि को, (पावमानी) पवित्र करने वाली, (वरदा) वर देने वाली, अभीष्ट-साधक, (वेदमाता) वेदमाता की, (स्तुता) स्तुति की । (प्र चोदयन्ताम्) आप सब हमें सत्कर्म में प्रेरित करें । (आयुः प्राणं प्रजाम्) आयु, जीवन, सुसन्तान, (पशुं कीर्ति द्रविणम्) पशुधन, यश, धन, (ब्रह्म-वर्चसम्) ब्रह्मतेज, (मह्यम्) मुझे, (दत्त्वा) देकर, (ब्रह्मलोकम्) ब्रह्मलोक को, (व्रजत) आप सब जाइए ।

हिन्दी अर्थ—हे देवो ! मैंने द्विजों को पवित्र करने वाली, वरदा (अभीष्ट-साधक) वेदमाता की स्तुति की है । आप सब मुझे प्रेरणा दें । दीर्घ आयु, जीवन शक्ति, सुसन्तान, पशुधन, यश, वैभव और ब्रह्मतेज मुझे देकर ब्रह्मलोक को जाइए ।

Eng. Tr.—O Gods ! I have worshipped the boon-giver mother-like *Knowledge* (Vedamata), who makes pure and pious all consecrated beings. Inspire me. Give me long and energetic life, good family, animals, fame, riches and divine glory, before departing to the heaven.

अनुशीलन—वेदों की महिमा अपार है। वेद ज्ञान के स्रोत हैं। विश्व को सर्वप्रथम ज्ञान देने का श्रेय वेदों को है। वेद मानव-मात्र के लिए प्रकाश-स्तम्भ हैं। जहाँ वेदों की ज्योति है, वहाँ प्रकाश है, उन्नति है, सुख है, शान्ति है और सतत विकास है। इस मन्त्र में वेद को माता कहा गया है। जिस प्रकार माता सन्तान की रक्षा करती है, उसी प्रकार वेद सारे संसार की रक्षा के साधन हैं। माता अपने दूध से बालक को पुष्ट करती है, इसी प्रकार वेद ज्ञानरूपी दूध मिलाकर संसार में सुख की वृद्धि करते हैं। वेदमाता की सेवा से ही आर्यों का वंश अक्षय रहा है। वेदमाता वरदा है।

वेदों का स्वाध्याय प्रत्येक व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और विश्व की उन्नति का साधन है, विश्व-बन्धुत्व का प्रेरक है और विश्व-धर्म का संस्थापक है।

टिप्पणी--(१) **स्तुता**--स्तुति की। स्तु (स्तुति करना, अदादि) + क्त (त) + टाप् (आ)। (२) **वरदा**--वर देने वाली, अभीष्ट को पूरा करने वाली। (३) **वेदमाता**--वेद माता के तुल्य रक्षक हैं, पूज्य हैं। (४) **प्र चोदयन्ताम्**--प्रेरित करें, प्रेरणा दें। प्र + चुद् (प्रेरणा देना, भ्वादि) + णिच्+लोट् प्र० ३। प्र० पु० बहुवचन है, अतः देवाः का अध्याहार है। प्रचोदयन्ती पाठ मानने पर अर्थ होगा--प्रेरणा देने वाली वेदमाता। (५) **व्रजत**--जाओ। हे देवो, ब्रह्मलोक को जाओ। तुम वेद-पारायणकर्ता का उद्धार करने वाले हो, उसे आयु आदि देकर अपने स्थान ब्रह्मलोक को जाओ। व्रज् (जाना, भ्वादि) + लोट् म० ३।

॥ इति शम् ॥

परिशिष्ट

सुभाषित-संग्रह (सुखी-गृहस्थ)

सूचना—कोष्ठ में मंत्र-संख्या दी गई है। शब्दार्थ, विवरण आदि के लिए संबद्ध मंत्र देखिए।

१. अक्षस्याहमेकपरस्य हेतोः,
अनुव्रतामप जायामरोधम्। (८९)
[मैंने केवल जुए के कारण अपनी पतिव्रता स्त्री को छोड़ा है।]

२. अक्ष्यौ नौ मधुसंकाशे। (६६)
[हमारी आंखें मधु के तुल्य मधुर हों।]

३. अग्निर्नारीं वीरकुक्षिं पुरन्धिम्। (४९)
[परमात्मा नारी को वीर पुत्र वाली और विदुषी करे।]

४. अघोरचक्षुरपतिघ्न्येधि। (४४)
[स्त्री कोमल-दृष्टि वाली और पति-हितचिन्तक हो।]

५. अदेवृघ्न्यपतिघ्न्येधि। (४२)
[स्त्री देवर और पति के साथ अच्छा व्यवहार रखे।]

६. अधः पश्यस्व मोपरि, संतरां पादकौ हर। (४८)
[स्त्री नीचे देखे, ऊपर नहीं। पैरों को मिलाकर रखे।]

७. अध स्याम सुरभयो गृहेषु। (१२)
[घर में यशस्वी होकर रहें।]

८. अधा जिव्री विदथमा वदाथः। (३५)
[जीवन भर ज्ञान-चर्चाओं में भाग लें।]

९. अनृक्षरा ऋजवः सन्तु पन्थाः। (७०)
[दम्पती का मार्ग निष्कंटक और सरल हो।]

१०. अन्वारभेथाम् अनुसंरभेथाम्। (९६)
[दम्पती नया काम प्रारम्भ करें और उसे आगे बढ़ावें।]

११. अभिवर्धतां पयसाऽभि राष्ट्रेण वर्धताम् । (७५)
[दम्पती दुग्धादि से और राष्ट्रीय उन्नति से बढ़ें ।]

१२. अमोऽहमस्मि सा त्वम् । (६३)
[मैं प्राणरूप हूँ और तू शक्तिरूप है ।]

१३. अया धिया वामभाजः स्याम । (९३)
[हम सद्बुद्धि से ऐश्वर्य प्राप्त करें ।]

१४. अरिष्टां त्वा सह पत्या दधामि । (७१)
[स्त्री पति के साथ सकुशल रहे ।]

१५. अश्मन्वती रीयते सं रभध्वम् । (८०)
[कठोर संसाररूपी नदी बह रही है, इसे पार करो ।]

१६. अश्रमदियमर्यमन्, अन्यासां समनं यती । (३०)
[सार्वजनिक कार्यों में स्त्री परिश्रम करे ।]

१७. अस्मिन् गृहे गार्हपत्याय जागृहि । (३५)
[स्त्री पतिगृह में गृहस्थधर्म के लिए जागरूक रहे ।]

१८. अहं केतुरहं मूर्धाऽहमुग्रा विवाचनी । (३७)
[स्त्री ज्ञानी, मूर्धन्य और उत्तम वक्ता हो ।]

१९. आत्मन्वत्युर्वरा नारीयमागन् । (४०)
[स्त्री स्वाभिमानिनी और सन्तानोत्पादक हो ।]

२०. आयुर्दधानाः प्रतरं नवीयः । (१२)
[स्त्रियां अत्यन्त नवीन जीवन धारण करें ।]

२१. आयुष्मतीदं परि धत्स्व वासः । (१३)
[स्त्री सुन्दर वस्त्र धारण करे ।]

२२. आ रोह चर्मोप सीदाग्निम् । (५२)
[स्त्री मृगचर्म पर बैठकर यज्ञ करे ।]

२३. आ रोहन्तु जनयो योनिमग्रे । (१५)
[स्त्रियां यज्ञशाला में सबसे पहले प्रवेश करें ।]

२४. इषमूर्जं यजमानाय धेहि। (६८)
[परमात्मा यज्ञकर्ता को अन्न और बल दे।]
२५. इह रतिरिह रमध्वम्। (९५)
[इस परिवार में प्रेम है, यहां प्रेम से रहें।]
२६. इहैव स्तं मा वि यौष्टम्। (७४)
[दम्पती एक स्थान पर रहें, वियुक्त न हों।]
२७. ईशा वास्यमिदं सर्वम्। (३)
[परमात्मा सारे संसार में व्याप्त है।]
२८. उताहमस्मि वीरिणीन्द्रपत्नी। (२६)
[मैं वीर स्त्री हूँ और वीर की पत्नी हूँ।]
२९. उत्तिष्ठत प्र तरता सखायः। (८०)
[मित्रो, उठो और भवसिन्धु को पार करो।]
३०. उर्वारुकमिव बन्धनात्, प्रेतो मुञ्चामि नामुतः। (१०)
[वधू पितृकुल से मुक्त और पतिकुल से बद्ध होती है।]
३१. ऋतं वदन्तावृतोद्येषु। (७८)
[सभी अवसरों पर दम्पती सत्य ही बोलें]
३२. एतं लोकं श्रद्दधानाः सचन्ते। (९६)
[श्रद्धालु ही इस संसार का सुख भोगते हैं।]
३३. कल्याणीर्जाया सुरणं गृहे ते। (२०)
[परिवार में सुशील स्त्री और संगीत की ध्वनि हो।]
३४. गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तम्। (६)
[मैं (पति) सौभाग्य के लिए वधू का हाथ पकड़ता हूँ।]
३५. जायेदस्तम्। (१८)
[पत्नी ही घर है।]
३६. जायेव पत्य उशती सुवासाः। (८४)
[अलंकृत स्त्री पति को अपना स्वरूप प्रकट करती है।]

३७. ज्योतिरग्रा उषसः प्रति जागरासि । (४३)
[स्त्री उषाकाल से पहले जागे ।]

३८. तत्रोपविश्य सुप्रजा, इममग्निं सपर्यतु । (५५)
[स्त्री सपरिवार यज्ञ करे ।]

३९. तिस्रो मात्रा गन्धर्वाणां, चतस्रो गृहपत्न्याः । (१९)
[गन्धर्वों में तीन विशेषताएं है, गृहपत्नी में चार ।]

४०. तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः । (३)
[परमात्मा के द्वारा दिए हुए को त्यागभाव से भोगो ।]

४१. त्वं सम्राज्ञ्येधि पत्युरस्तं परेत्य । (२४)
[पति के घर पहुँच कर तू गृह-स्वामिनी होना ।]

४२. दंपते, रथं तिष्ठा हिरण्ययम् । (९)
[हे दम्पती, तुम सोने के रथ पर बैठो ।]

४३. दीर्घं त आयुः सविता कृणोतु । (३६)
[परमात्मा तुम्हें दीर्घायु करे ।]

४४. दीर्घायुरस्तु मे पतिः । (१७)
[मेरा पति दीर्घायु हो ।]

४५. धियो यो नः प्रचोदयात् । (१)
[परमात्मा हमारी बुद्धि को सन्मार्ग पर ले चले ।]

४६. ननान्दरि सम्राज्ञी भव । (२३)
[वधू ननंद की स्वामिनी होकर रहे ।]

४७. न मत् स्त्री सुभसत्तरा । (१६)
[कोई स्त्री मुझसे अधिक सौभाग्यशालिनी नहीं है ।]

४८. न स्तेयमद्मि । (६४)
[छिपाकर पति-पत्नी कोई वस्तु न खावें ।]

४९. न ह्रास्या अपरं चन, जरसा मरते पतिः । (२८)
[सती स्त्री का पति बुढ़ापे से नहीं मरता है ।]

५०. पत्युरनुव्रता भूत्वा, सं नह्यस्वामृताय कम् । (३१)
[पतिव्रता होकर अमरत्व को प्राप्त करो ।]

५१. पिता नोऽसि, पिता नो बोधि । (६९)
[परमात्मन्, हमारे पिता हो, हमें ज्ञान दो ।]

५२. पितृभ्यश्च नमस्कुरु । (४६)
[वधू बड़ों को प्रणाम करे ।]

५३. पुमान् पुत्रो जायते विन्दते वसु ।]
[यज्ञ करने से पुत्र पैदा होता है और वह धनी होता है ।]

५४. प्रजयैनौ स्वस्तकौ, विश्वमायुर्व्यश्नुताम् । (६२)
[दम्पती सन्तान और दीर्घ आयु को प्राप्त करें ।]

५५. प्र बुध्यस्व सुबुधा बुध्यमाना । (३९)
[स्त्री सदा प्रबुद्ध और जागरूक हो ।]

५६. प्रेतो मुञ्चामि नामुतः, सुबद्धाममुतस्करम् । (२५)
[पत्नी पितृकुल से मुक्त और पतिकुल से संयुक्त होती है ।]

५७. ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम् । (४)
[ब्रह्मचारिणी कन्या योग्य पति को पाती है ।]

५८. ब्रह्मापरं युज्यतां ब्रह्म पूर्वम् । (२७)
[परमात्मा को सदा आगे और पीछे रखो ।]

५९. भर्गो देवस्य धीमहि । (१)
[परमात्मा के दिव्य तेज को धारण करते हैं ।]

६०. मयेयमस्तु पोष्या । (७)
[पत्नी मेरे द्वारा पोष्य है ।]

६१. मया पत्या प्रजावति, सं जीव शरदः शतम् । (७)
[पत्नी मेरे साथ सौ वर्ष तक जीवित रहे ।]

६२. मह्यं त्वादुर्गार्हपत्याय देवाः । (६)
[गृहस्थधर्म के लिए पत्नी मुझे प्राप्त हुई है ।]

६३. मा गृधः कस्यस्विद् धनम् । (३)
[दूसरे के धन को लालच से न देखो ।]

६४. मा शिश्नदेवा अपि गुर्ऋतं नः । (८१)
[कामदेव हमारी शक्ति को नष्ट न करे ।]

६५. मूषो न शिश्ना व्यदन्ति माध्यः । (८२)
[विषयभोग-जन्य चिन्ताएं मनुष्य को खा जाती हैं ।]

६६. मृदुर्निमन्युः केवली, प्रियवादिन्यनुव्रता । (३२)
[पत्नी सुशील, अक्रोधी, पतिव्रता और मधुरभाषिणी हो ।]

६७. यद् भद्रं तन्न आसुव । (२)
[परमात्मन्, सद्गुण हमें दीजिए ।]

६८. यद् भद्रस्य पुरुषस्य, पुत्रो भवति दाधृषिः । (९१)
[तेजस्वी पिता का पुत्र भी तेजस्वी होता ।]

६९. या अकृन्तन्नवयन् याश्च तत्निरे । (१३)
[स्त्रियां सूत कातती हैं और बुनाई करती हैं ।]

७०. या दम्पती समनसा, सुनुत आ च धावतः । (६७)
[सहृदय और परिश्रमी दम्पती सदा सुखी रहते हैं ।]

७१. युवं भगं सं भरतं समृद्धम् । (७८)
[दम्पती सौभाग्य और समृद्धि को प्राप्त करें ।]

७२. यो भद्रो रोचनस्तमुदचामि । (३८)
[शुभ लक्षणों को निरन्तर बढ़ावें ।]

७३. वशिनी त्वं विदथमा वदासि । (२१)
[स्त्री ज्ञानचर्चाओं में भाग ले ।]

७४. विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः । (१६)
[परमात्मा सबसे श्रेष्ठ है ।]

७५. शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे । (४४)
[स्त्री परिवार और पशुओं के लिए सुखद हो ।]

७६. शतहस्त समाहर, सहस्रहस्त सं किर। (९२)
[सौ हाथों से कमाओ, हजार हाथों से दान करो।]

७७. शत्रूयतामभि तिष्ठा महांसि। (७२)
[शत्रुओं के तेज को नष्ट कर दो।]

७८. शिवा स्योना पतिलोके वि राज। (२७)
[पत्नी पति के परिवार में कुशलतापूर्वक रहे।]

७९. श्रिया समानानति सर्वान् स्याम। (८६)
[ऐश्वर्य में सबसे आगे बढ़ जाएं।]

८०. सं जास्पत्यं सुयममस्तु देवाः। (७०, ७२)
[हे देवो, हमारा दाम्पत्य जीवन सुखमय हो।]

८१. सं वां मनांसि सं व्रता, समु चित्तान्याकरम्। (६८)
[दम्पती के मन, कर्म और चित्त समान हों।]

८२. संहोत्रं स्म पुरा नारी, समनं वाव गच्छति। (५३)
[पहले स्त्रियां यज्ञों और युद्धों में जाती थीं।]

८३. समजैषमिमा अहं सपत्नीरभिभूवरी। (४७)
[विजयशील मैंने सौतों को जीत लिया है।]

८४. समानं हृदयं कृधि। (६१)
[दम्पती का हृदय समान हो।]

८५. समापो हृदयानि नौ। (६५)
[पति-पत्नी के हृदय जल के तुल्य मिले हों।]

८६. समितं संकल्पेथाम्। (९४)
[दम्पती मिलकर चलें। दोनों के समान विचार हों।]

८७. सम्राज्ञी अधि देवृषु। (२३)
[वधू देवरों की स्वामिनी हो।]

८८. सम्राज्ञी श्वशुरे भव, सम्राज्ञी श्वश्र्वां भव। (२३)
[वधू सास और ससुर की स्वामिनी हो।]

८९. सा मा सत्योक्तिः परि पातु विश्वतः । (७९)
[सत्यभाषण चारों ओर से रक्षा करता है ।]

९०. सुमङ्गली प्रतरणी गृहाणाम् । (४१)
[पत्नी परिवार के लिए मंगलकारी और दुःखहारक हो ।]

९१. सुमङ्गलीरियं वधूरिमां समेत पश्यत । (१४)
[नववधू अलंकृत है । इसे सभी लोग देखें ।]

९२. सुमङ्गल्युप सीदेममग्निम् । (५४)
[अलंकृत वधू पति के साथ यज्ञ करे ।]

९३. सुशेवा पत्ये श्वशुराय शंभूः । (४१)
[वधू पति और ससुर की सेवा करे, सुख दे ।]

९४. स्तुता मया वरदा वेदमाता,
प्रचोदयन्तां पावमानी द्विजानाम् । (१००)
[मैंने द्विजों को पवित्र करने वाली वरदा वेदमाता की स्तुति की है । हे देवो, मुझे प्रेरणा दो ।]

९५. स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ । (४८)
[स्त्री ही आचार-शिक्षक ब्रह्मा है ।]

९६. स्योनं कृण्मो वधूपथम् । (५९)
[वधू का मार्ग सुखमय हो ।]

९७. स्योना पत्ये गृहेभ्यः । (४५)
[वधू पति और पति-गृह के लिए सुखद हो ।]

९८. स्योना भव श्वशुरेभ्यः । (४५)
[वधू ससुर को सुख दे ।]

९९. स्योनास्यै सर्वस्यै विशे । (४५)
[वधू सभी परिजनों के लिए सुखद हो ।]

१००. हंसामुदो महसा मोदमानौ । (७३)
[दम्पती ... प्रसन्नचित्त और तेजस्वी हों ।]

डा० कपिल देव द्विवेदी

कुलपति, गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर (हरिद्वार)।

निदेशक, विश्वभारती अनुसन्धान परिषद्, ज्ञानपुर (वाराणसी)।



जन्म—गहमर (गाजीपुर) उ० प्र०, तिथि—१६-१२-१९१९ ई०, पिता—श्री बलरामदास जी। शिक्षा—गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर (हरिद्वार), लाहौर, इलाहाबाद। उपाधियां—एम० ए० (संस्कृत, हिन्दी), डी० फिल्० (इलाहाबाद), व्याकरणाचार्य (वाराणसी)। जर्मन, फ्रेंच, रूसी, चीनी भाषाओं में विशेष योग्यता। यू० पी० ई० एस० (प्रथम श्रेणी)। अवकाश प्राप्त प्राचार्य, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय उ० प्र०। प्रकाशन—३५ से अधिक ग्रन्थ। विशिष्ट ग्रन्थ—१. अर्थविज्ञान और व्याकरणदर्शन, २. भाषाविज्ञान एवं भाषाशास्त्र, ३. संस्कृत-व्याकरण, ४. संस्कृत-निबन्धशतकम्, ५. प्रौढ रचनानुवाद-कौमुदी, ६. रचनानुवाद-कौमुदी, ७. राष्ट्र-गीतांजलिः। ४ ग्रन्थों पर [illegible] सरकार से पुरस्कार प्राप्त।

वेदामृतम् ग्रन्थमाला के नवीन प्रकाशनः—(४० भागों में प्रकाश्य)—
१. सुखी-जीवन, २. सुखी-गृहस्थ, ३. सुखी-परिवार, ४. सुखी-समाज।